“અહો ! શ્રુતજ્ઞાનમ્” ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર ૧૬૩

પ્રશ્નોત્તર સાર્ધ શતક

: દ્રવ્ય સહાયક :

પૂ. આ. શ્રી નીતિસૂરીશ્વરજી મ.સા. સમુદાયના
પૂ. સાધ્વી શ્રી વિશ્વપૂર્ણાશ્રીજી મ.સા. ની પ્રેરણાથી
લલિતવિશ્વ આરાધના ભવન, સાબરમતી, અમદાવાદના
જ્ઞાનખાતાની ઉપજમાંથી

: સંયોજક :

શાહ બાબુલાલ સરેમલ બેડાવાળા
શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર
શા. વિમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન
હીરાજૈન સોસાયટી, સાબરમતી, અમદાવાદ-૫
(મો.) 9426585904 (ઓ.) 22132543

સંવત ૨૦૬૯ ઈ. ૨૦૧૩

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६५ (ई. 2009) सेट नं.-१

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

ક્રમાંક	પુસ્તકનું નામ	કર્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
001	श्री नंदीसूत्र अवचूरी	पू. विक्रमसूरिजी म.सा.	238
002	श्री उत्तराध्ययन सूत्र चूर्णी	पू. जिनदासगणि चूर्णीकार	286
003	श्री अर्हद्गीता-भगवद्गीता	पू. मेघविजयजी गणि म.सा.	84
004	श्री अर्हच्चूडामणि सारसटीकः	पू. भद्रबाहुस्वामी म.सा.	18
005	श्री यूक्ति प्रकाशसूत्रं	पू. पद्मसागरजी गणि म.सा.	48
006	श्री मानतुङ्गशास्त्रम्	पू. मानतुंगविजयजी म.सा.	54
007	अपराजितपृच्छा	श्री बी. भट्टाचार्य	810
008	शिल्प स्मृति वास्तु विद्यायाम्	श्री नंदलाल चुनिलाल सोमपुरा	850
009	शिल्परत्नम् भाग-१	श्रीकुमार के. सभात्सव शास्त्री	322
010	शिल्परत्नम् भाग-२	श्रीकुमार के. सभात्सव शास्त्री	280
011	प्रासादतिलक	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	162
012	काश्यशिल्पम्	श्री विनायक गणेश आपटे	302
013	प्रासादमञ्जरी	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	156
014	राजवल्लभ याने शिल्पशास्त्र	श्री नारायण भारती गोंसाई	352
015	शिल्पदीपक	श्री गंगाधरजी प्रणीत	120
016	वास्तुसार	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	88
017	दीपार्णव उत्तरार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	110
018	જિનપ્રાસાદ માર્તણ્ડ	શ્રી નંદલાલ ચુનીલાલ સોમપુરા	498
019	जैन ग्रंथावली	श्री जैन श्वेताम्बर कोन्फ्रन्स	502
020	હીરકલશ જૈન જ્યોતિષ	શ્રી હિમ્મતરામ મહાશંકર જાની	454
021	न्यायप्रवेशः भाग-१	श्री आनंदशंकर बी. ध्रुव	226
022	दीपार्णव पूर्वार्ध	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	640
023	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-१	पू. मुनिचंद्रसूरिजी म.सा.	452
024	अनेकान्त जयपताकाख्यं भाग-२	श्री एच. आर. कापडीआ	500
025	प्राकृत व्याकरण भाषांतर सह	श्री बेचरदास जीवराज दोशी	454
026	तत्त्पोपप्लवसिंहः	श्री जयराशी भट्ट, बी. भट्टाचार्य	188
027	शक्तिवादादर्शः	श्री सुदर्शनाचार्य शास्त्री	214
028	क्षीरार्णव	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	414
029	वेधवास्तु प्रभाकर	श्री प्रभाशंकर ओघडभाई	192

030	**शिल्परत्नाकर**	**श्री नर्मदाशंकर शास्त्री**	**824**
031	**प्रासाद मंडन**	**पं. भगवानदास जैन**	**288**
032	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-१**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**520**
033	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-२**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**578**
034	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-३ (१)**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**278**
035	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-3 (२) (३)**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**252**
036	**श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहन्न्यास अध्याय-५**	**पू. लावण्यसूरिजी म.सा.**	**324**
037	વાસ્તુનિઘંટુ	પ્રભાશંકર ઓઘડભાઈ સોમપુરા	302
038	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૧	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	196
039	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૨	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	190
040	તિલકમઞ્જરી ભાગ-૩	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	202
041	સપ્તસન્ધાન મહાકાવ્યમ્	પૂ. વિજયઅમૃતસૂરિશ્વરજી	480
042	સપ્તભઙ્ગીમિમાંસા	પૂ. પં. શિવાનન્દવિજયજી	228
043	ન્યાયાવતાર	સતિષચંદ્ર વિદ્યાભૂષણ	60
044	વ્યુત્પત્તિવાદ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	218
045	સામાન્યનિર્યુક્તિ ગુઢાર્થતત્ત્વાલોક	શ્રી ધર્મદત્તસૂરિ (બચ્છા ઝા)	190
046	સપ્તભઙ્ગીનયપ્રદીપ બાલબોધિનીવિવૃત્તિઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	138
047	વ્યુત્પત્તિવાદ શાસ્ત્રાર્થકલા ટીકા	શ્રીવેણીમાધવ શાસ્ત્રી	296
048	નયોપદેશ ભાગ-૧ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	210
049	નયોપદેશ ભાગ-૨ તરઙ્ગિણીતરણી	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	274
050	ન્યાયસમુચ્ચય	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	286
051	સ્યાદ્યાર્થપ્રકાશઃ	પૂ. લાવણ્યસૂરિજી	216
052	દિન શુદ્ધિ પ્રકરણ	પૂ. દર્શનવિજયજી	532
053	બૃહદ્ ધારણા યંત્ર	પૂ. દર્શનવિજયજી	113
054	જ્યોતિર્મહોદય	સં. પૂ. અક્ષયવિજયજી	112

શ્રી આશાપૂરણ પાર્શ્વનાથ જૈન જ્ઞાનભંડાર

સંયોજક – બાબુલાલ સરેમલ શાહ

શાહ વીમળાબેન સરેમલ જવેરચંદજી બેડાવાળા ભવન

હીરાજૈન સોસાયટી, રામનગર, સાબરમતી, અમદાવાદ-૦૫.

(મો.) ૯૪૨૬૫૮૫૯૦૪ (ઓ) ૨૨૧૩૨૫૪૩ (ઇ-મેલ) ahoshrut.bs@gmail.com

અહો શ્રુતજ્ઞાનમ્ ગ્રંથ જીર્ણોદ્ધાર – સંવત ૨૦૬૬ (ઈ. ૨૦૧૦) – સેટ નં-૨

પ્રાયઃ જીર્ણ અપ્રાપ્ય પુસ્તકોને સ્કેન કરાવીને ડી.વી.ડી. બનાવી તેની યાદી.

આ પુસ્તકો www.ahoshrut.org વેબસાઇટ પરથી પણ ડાઉનલોડ કરી શકાશે.

ક્રમ	પુસ્તકનું નામ	ભાષા	કર્ત્તા-ટીકાકાર-સંપાદક	પૃષ્ઠ
055	श्री सिद्धहेम बृहद्वृत्ति बृहद्न्यास अध्याय-६	सं	पू. लावण्यसूरिजी म.सा.	296
056	विविध तीर्थ कल्प	सं	पू. जिनविजयजी म.सा.	160
057	ભારતીય જૈન શ્રમણ સંસ્કૃતિ અને લેખનકળા	ગુજ.	पू. पूण्यविजयजी म.सा.	164
058	सिद्धान्तलक्षणगूढार्थ तत्त्वलोकः	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	202
059	व्याप्ति पञ्चक विवृत्ति टीका	सं	श्री धर्मदत्तसूरि	48
060	જૈન સંગીત રાગમાળા	ગુ.	श्री मांगरोळ जैन संगीत मंडळी	306
061	चतुर्विंशतीप्रबन्ध (प्रबंध कोश)	सं	श्री रसिकलाल एच. कापडीआ	322
062	व्युत्पत्तिवाद आदर्श व्याख्यया संपूर्ण ६ अध्याय	सं	श्री सुदर्शनाचार्य	668
063	चन्द्रप्रभा हेमकौमुदी	सं	पू. मेघविजयजी गणि	516
064	विवेक विलास	सं/ગુ.	श्री दामोदर गोविंदाचार्य	268
065	पञ्चशती प्रबोध प्रबंध	सं	पू. मृगेन्द्रविजयजी म.सा.	456
066	सन्मतितत्त्वसोपानम्	सं	पू. लब्धिसूरिजी म.सा.	420
067	ઉપદેશમાલા દોઘટ્ટી ટીકા ગુર્જરાનુવાદ	ગુજ.	पू. हेमसागरसूरिजी म.सा.	638
068	मोहराजापराजयम्	सं	पू. चतुरविजयजी म.सा.	192
069	क्रियाकोश	सं/हिं	श्री मोहनलाल बांठिया	428
070	कालिकाचार्यकथासंग्रह	सं/ગુ.	श्री अंबालाल प्रेमचंद	406
071	सामान्यनिरुक्ति चंद्रकला कलाविलास टीका	सं.	श्री वामाचरण भट्टाचार्य	308
072	जन्मसमुद्रजातक	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	128
073	मेघमहोदय वर्षप्रबोध	सं/हिं	श्री भगवानदास जैन	532
074	જૈન સામુદ્રિકનાં પાંચ ગ્રંથો	ગુજ.	श्री हिम्मतराम महाशंकर जानी	376

075	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	374
076	જૈન ચિત્ર કલ્પદ્રૂમ ભાગ-૨	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	238
077	સંગીત નાટ્ય રૂપાવલી	ગુજ.	**श्री विद्या साराभाई नवाब**	194
078	ભારતનાં જૈન તીર્થો અને તેનું શિલ્પસ્થાપત્ય	ગુજ.	**श्री साराभाई नवाब**	192
079	શિલ્પ ચિન્તામણિ ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री मनसुखलाल भुदरमल**	254
080	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૧	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	260
081	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૨	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	238
082	બૃહદ્ શિલ્પ શાસ્ત્ર ભાગ-૩	ગુજ.	**श्री जगन्नाथ अंबाराम**	260
083	આયુર્વેદના અનુભૂત પ્રયોગો ભાગ-૧	ગુજ.	**पू. कान्तिसागरजी**	114
084	કલ્યાણ કારક	ગુજ.	**श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री**	910
085	**विश्वलोचन कोश**	**सं./हिं**	**श्री नंदलाल शर्मा**	436
086	કથા રત્ન કોશ ભાગ-1	ગુજ.	**श्री बेचरदास जीवराज दोशी**	336
087	કથા રત્ન કોશ ભાગ-2	ગુજ.	**श्री बेचरदास जीवराज दोशी**	230
088	હસ્તસઞ્જીવનમ્	સં.	**पू. मेघविजयजीगणि**	322
089	ઐન્દ્રચતુર્વિંશતિકા	સં.	**पू.यशोविजयजी, पू. पुण्यविजयजी**	114
090	સમ્મતિ તર્ક મહાર્ણવાવતારિકા	સં.	**आचार्य श्री विजयदर्शनसूरिजी**	560

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com
शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६७ (ई. 2011) सेट नं.-३

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टीकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
91	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-१	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	272
92	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-२	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	240
93	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-३	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	254
94	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-४	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	282
95	स्याद्वाद रत्नाकर भाग-५	वादिदेवसूरिजी	सं.	मोतीलाल लाघाजी पुना	118
96	पवित्र कल्पसूत्र	पुण्यविजयजी	सं./अं	साराभाई नवाब	466
97	समराङ्गण सूत्रधार भाग-१	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	342
98	समराङ्गण सूत्रधार भाग-२	भोजदेव	सं.	टी. गणपति शास्त्री	362
99	भुवनदीपक	पद्मप्रभसूरिजी	सं.	वेंकटेश प्रेस	134
100	गाथासहस्त्री	समयसुंदरजी	सं.	सुखलालजी	70
101	भारतीय प्राचीन लिपीमाला	गौरीशंकर ओझा	हिन्दी	मुन्शीराम मनोहरराम	316
102	शब्दरत्नाकर	साधुसुन्दरजी	सं.	हरगोविन्ददास बेचरदास	224
103	सुबोधवाणी प्रकाश	न्यायविजयजी	सं./गु	हेमचंद्राचार्य जैन सभा	612
104	लघु प्रबंध संग्रह	जयंत पी. ठाकर	सं.	ओरीएन्ट इन्स्टीट्युट बरोडा	307
105	जैन स्तोत्र संचय-१-२-३	माणिक्यसागरसूरिजी	सं,	आगमोद्धारक सभा	250
106	सन्मति तर्क प्रकरण भाग-१,२,३	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	514
107	सन्मति तर्क प्रकरण भाग-४,५	सिद्धसेन दिवाकर	सं.	सुखलाल संघवी	454
108	न्यायसार – न्यायतात्पर्यदीपिका	सतिषचंद्र विद्याभूषण	सं.	एसियाटीक सोसायटी	354
109	जैन लेख संग्रह भाग-१	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	337
110	जैन लेख संग्रह भाग-२	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	354
111	जैन लेख संग्रह भाग-३	पुरणचंद्र नाहर	सं./हि	पुरणचंद्र नाहर	372
112	जैन धातु प्रतिमा लेख भाग-१	कांतिविजयजी	सं./हि	जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार	142
113	जैन प्रतिमा लेख संग्रह	दौलतसिंह लोढा	सं./हि	अरविन्द धामणिया	336
114	राधनपुर प्रतिमा लेख संदोह	विशालविजयजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	364
115	प्राचिन लेख संग्रह-१	विजयधर्मसूरिजी	सं./गु	यशोविजयजी ग्रंथमाळा	218
116	बीकानेर जैन लेख संग्रह	अगरचंद नाहटा	सं./हि	नाहटा ब्रधर्स	656
117	प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग-१	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	122
118	प्राचिन जैन लेख संग्रह भाग-२	जिनविजयजी	सं./हि	जैन आत्मानंद सभा	764
119	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-१	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
120	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-२	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	404
121	गुजरातना ऐतिहासिक लेखो-३	गिरजाशंकर शास्त्री	सं./गु	फार्बस गुजराती सभा	540
122	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-१	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	274
123	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-४	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	414
124	ऑपरेशन इन सर्च ऑफ संस्कृत मेन्यु. इन मुंबई सर्कल-५	पी. पीटरसन	अं.	रॉयल एशियाटीक जर्नल	400
125	कलेक्शन ऑफ प्राकृत एन्ड संस्कृत इन्स्क्रीप्शन्स	पी. पीटरसन	अं.	भावनगर आर्चीऑलॉजीकल डिपा.	320
126	विजयदेव माहात्म्यम्	जिनविजयजी	सं.	जैन सत्य संशोधक	148

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com

शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६८ (ई. 2012) सेट नं.-४

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / संपादक	भाषा	प्रकाशक	पृष्ठ
127	महाप्रभाविक नवस्मरण	साराभाई नवाब	गुज.	साराभाई नवाब	754
128	जैन चित्र कल्पलता	साराभाई नवाब	गुज.	साराभाई नवाब	84
129	जैन धर्मनो प्राचीन इतिहास भाग-२	हीरालाल हंसराज	गुज.	हीरालाल हंसराज	194
130	ओपरेशन इन सर्च ओफ सं. मेन्यु. भाग-६	पी. पीटरसन	अंग्रेजी	एशियाटीक सोसायटी	171
131	जैन गणित विचार	कुंवरजी आणंदजी	गुज.	जैन धर्म प्रसारक सभा	90
132	दैवज्ञ कामधेनु (प्राचिन ज्योतिष ग्रंथ)	शील खंड	सं.	ब्रज. बी. दास बनारस	310
133	करण प्रकाशः	ब्रह्मदेव	सं./अं.	सुधाकर द्विवेदि	276
134	न्यायविशारद महो. यशोविजयजी स्वहस्तलिखित कृति संग्रह	यशोदेवसूरिजी	गुज.	यशोभारती प्रकाशन	69
135	भौगोलिक कोश-१	डाह्याभाई पीतांबरदास	गुज.	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी	100
136	भौगोलिक कोश-२	डाह्याभाई पीतांबरदास	गुज.	गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी	136
137	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-१ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	266
138	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-१ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	244
139	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-२ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	274
140	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-२ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	168
141	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-३ अंक-१, २	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	282
142	जैन साहित्य संशोधक वर्ष-३ अंक-३, ४	जिनविजयजी	हिन्दी	जैन साहित्य संशोधक पुना	182
143	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-१	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	384
144	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-२	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	376
145	नवपदोनी आनुपूर्वी भाग-३	सोमविजयजी	गुज.	शाह बाबुलाल सवचंद	387
146	भाषवति	शतानंद मारछता	सं./हि	एच.बी. गुप्ता एन्ड सन्स बनारस	174
147	जैन सिद्धांत कौमुदी (अर्धमागधी व्याकरण)	रत्नचंद्र स्वामी	प्रा./सं.	भैरोदान सेठीया	320
148	मंत्रराज गुणकल्प महोदधि	जयदयाल शर्मा	हिन्दी	जयदयाल शर्मा	286
149	फक्कीका रत्नमंजूषा-१, २	कनकलाल ठाकूर	सं.	हरिकृष्ण निबंध	272
150	अनुभूत सिद्ध विशायंत्र (छ कल्प संग्रह)	मेघविजयजी	सं./गुज	महावीर ग्रंथमाळा	142
151	सारावलि	कल्याण वर्धन	सं.	पांडुरंग जीवाजी	260
152	ज्योतिष सिद्धांत संग्रह	विश्वेश्वरप्रसाद द्विवेदी	सं.	ब्रीजभूषणदास बनारस	232
153	ज्ञान प्रदीपिका तथा सामुद्रिक शास्त्रम्	रामव्यास पान्डेय	सं.	जैन सिद्धांत भवन	160
	नूतन संकलन				
१	आ. चंद्रसागरसूरिजी ज्ञानभंडार – उज्जैन	हस्तप्रत सूचीपत्र	हिन्दी	श्री आशापुरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार	
२	श्री गुजराती श्वे.मू. जैन संघ-हस्तप्रत भंडार – कलकत्ता	हस्तप्रत सूचीपत्र	हिन्दी	श्री आशापुरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार	

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543 - ahoshrut.bs@gmail.com

शाह वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-05.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०६९ (ई. 2013) सेट नं.-५

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की स्केन डीवीडी बनाई उसकी सूची। *यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।*

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / संपादक	विषय	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
154	उणादि सूत्रो ओफ हेमचंद्राचार्य	पू. हेमचंद्राचार्य	व्याकरण	संस्कृत	जोहन क्रिष्टे	304
155	उणादि गण विवृत्ति	पू. हेमचंद्राचार्य	व्याकरण	संस्कृत	पू. मनोहरविजयजी	122
156	प्राकृत प्रकाश-सटीक	भामाह	व्याकरण	प्राकृत	जय कृष्णदास गुप्ता	208
157	द्रव्य परिक्षा और धातु उत्पत्ति	ठक्कर फेरू	धातु	संस्कृत /हिन्दी	भंवरलाल नाहटा	70
158	आरम्भसिध्धि – सटीक	पू. उदयप्रभदेवसूरिजी	ज्योतीष	संस्कृत	पू. जितेन्द्रविजयजी	310
159	खंडहरो का वैभव	पू. कान्तीसागरजी	शील्प	हिन्दी	भारतीय ज्ञानपीठ	462
160	बालभारत	पू. अमरचंद्रसूरिजी	काव्य	संस्कृत	पं. शीवदत्त	512
161	गिरनार माहात्म्य	दौलतचंद परषोत्तमदास	तीर्थ	संस्कृत /गुजराती	जैन पत्र	264
162	गिरनार गल्प	पू. ललितविजयजी	तीर्थ	संस्कृत/गुजराती	हंसकविजय फ्री लायब्रेरी	144
163	प्रश्नोत्तर सार्ध शतक	पू. क्षमाकल्याणविजयजी	प्रकरण	हिन्दी	साध्वीजी विचक्षणाश्रीजी	256
164	भारतिय संपादन शास्त्र	मूलराज जैन	साहित्य	हिन्दी	जैन विद्याभवन, लाहोर	75
165	विभक्त्यर्थ निर्णय	गिरिधर झा	न्याय	संस्कृत	चौखम्बा प्रकाशन	488
166	व्योम वती-१	शिवाचार्य	न्याय	संस्कृत	संपूर्णानंद संस्कृत युनिवर्सिटी	226
167	व्योम वती-२	शिवाचार्य	न्याय	संस्कृत	संपूर्णानंद संस्कृत विद्यालय	365
168	जैन न्यायखंड खाद्यम्	उपा. यशोविजयजी	न्याय	संस्कृत /हिन्दी	बद्रीनाथ शुक्ल	190
169	हरितकाव्यादि निघंटू	भाव मिश्र	आयुर्वेद	संस्कृत /हिन्दी	शीव शर्मा	480
170	योग चिंतामणि-सटीक	पू. हर्षकीर्तिसूरिजी	आयुर्वेद	संस्कृत /हिन्दी	लक्ष्मी वेंकटेश प्रेस	352
171	वसंतराज शकुनम्	पू. भानुचन्द्र गणि टीका	ज्योतिष	संस्कृत	खेमराज कृष्णदास	596
172	महाविद्या विडंबना	पू. भुवनसुन्दरसूरि टीका	ज्योतिष	संस्कृत	सेन्ट्रल लायब्रेरी	250
173	ज्योतिर्निबन्ध	शिवराज	ज्योतिष	संस्कृत	आनंद आश्रम	391
174	मेघमाला विचार	पू. विजयप्रभसूरिजी	ज्योतिष	संस्कृत/गुजराती	मेघजी हीरजी	114
175	मुहूर्त चिंतामणि-सटीक	रामकृत प्रमिताक्षय टीका	ज्योतिष	संस्कृत	अनूप मिश्र	238
176	मानसोल्लास सटीक-१	भुलाकमल्ल सोमेश्वर	ज्योतिष	संस्कृत	ओरिएन्ट इन्स्टीट्यूट	166
177	मानसोल्लास सटीक-२	भुलाकमल्ल सोमेश्वर	ज्योतिष	संस्कृत	ओरिएन्ट इन्स्टीट्यूट	368
178	ज्योतिष सार प्राकृत	भगवानदास जैन	ज्योतिष	प्राकृत/हिन्दी	भगवानदास जैन	88
179	मुहूर्त संग्रह	अंबालाल शर्मा	ज्योतिष	गुजराती	शास्त्री जगन्नाथ परशुराम द्विवेदी	356
180	हिन्दु एस्ट्रोलोजी	पिताम्बरदास त्रीभोवनदास	ज्योतिष	गुजराती	पिताम्बरदास टी. महेता	168

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543. E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com
शाह विमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-380005.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०७१ (ई. 2015) सेट नं.-६

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की डिजिटाइझेशन द्वारा डीवीडी बनाई उसकी सूची।

यह पुस्तके www.ahoshrut.org वेबसाइट से भी डाउनलोड कर सकते हैं।

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टिकाकार	विषय	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
181	काव्यप्रकाश भाग-१	पूज्य मम्मटाचार्य कृत		संस्कृत	पूज्य जिनविजयजी	364
182	काव्यप्रकाश भाग-२	पूज्य मम्मटाचार्य कृत		संस्कृत	पूज्य जिनविजयजी	222
183	काव्यप्रकाश उल्लास-२ अने ३	उपा. यशोविजयजी		संस्कृत	यशोभारति जैन प्रकाशन समिति	330
184	नृत्यरत्न कोश भाग-१	श्री कुम्भकर्ण नृपति		संस्कृत	श्री रसीकलाल छोटालाल	156
185	नृत्यरत्न कोश भाग-२	श्री कुम्भकर्ण नृपति		संस्कृत	श्री रसीकलाल छोटालाल	248
186	नृत्याध्याय	श्री अशोकमलजी		संस्कृत /हिन्दी	श्री वाचस्पति गैरोभा	504
187	संगीरत्नाकर भाग-१ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	448
188	संगीरत्नाकर भाग-२ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	444
189	संगीरत्नाकर भाग-३ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	616
190	संगीरत्नाकर भाग-४ सटीक	श्री सारंगदेव		संस्कृत/अंग्रेजी	श्री सुब्रमण्यम शास्त्री	632
191	संगीत मकरन्द	नारद		संस्कृत	श्री मंगेश रामकृष्ण तेलंग	84
192	संगीत नृत्य अने नाट्य संबंधी जैन ग्रंथो	श्री हीरालाल कापडीया		गुजराती	मुक्ति-कमल-जैन मोहन ग्रंथमाला	244
193	न्यायबिंदु सटीक	पूज्य धर्मोतराचार्य		संस्कृत	श्री चंद्रशेखर शास्त्री	220
194	शीघ्रबोध भाग-१ थी ५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	422
195	शीघ्रबोध भाग-६ थी १०	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	304
196	शीघ्रबोध भाग-११ थी १५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	446
197	शीघ्रबोध भाग-१६ थी २०	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	414
198	शीघ्रबोध भाग-२१ थी २५	पूज्य ज्ञानसुन्दरजी		हिन्दी	सुखसागर ज्ञान प्रसारक सभा	409
199	अध्यात्मसार सटीक	पूज्य गंभीरविजयजी		संस्कृत/गुजराती	नरोत्तमदास भानजी	476
200	छन्दोनुशासन	एच. डी. वेलनकर		संस्कृत	सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ	444
201	मग्गानुसारिया	श्री डी. एस शाह		संस्कृत/गुजराती	ज्ञातपुत्र भगवान महावीर ट्रस्ट	146

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

संयोजक – शाह बाबुलाल सरेमल - (मो.) 9426585904 (ओ.) 22132543. E-mail : ahoshrut.bs@gmail.com
शाह विमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन
हीराजैन सोसायटी, रामनगर, साबरमती, अमदावाद-380005.

अहो श्रुतज्ञानम् ग्रंथ जीर्णोद्धार – संवत २०७२ (ई. 201६) सेट नं.-७

प्रायः अप्राप्य प्राचीन पुस्तकों की डिजिटाइझेशन द्वारा डीवीडी बनाई उसकी सूची।

क्रम	पुस्तक नाम	कर्त्ता / टिकाकार	भाषा	संपादक / प्रकाशक	पृष्ठ
202	आचारांग सूत्र भाग-१ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	285
203	आचारांग सूत्र भाग-२ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	280
204	आचारांग सूत्र भाग-३ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	315
205	आचारांग सूत्र भाग-४ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	307
206	आचारांग सूत्र भाग-५ निर्युक्ति+टीका	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	361
207	सुयगडांग सूत्र भाग-१ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	301
208	सुयगडांग सूत्र भाग-२ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	263
209	सुयगडांग सूत्र भाग-३ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	395
210	सुयगडांग सूत्र भाग-४ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	386
211	सुयगडांग सूत्र भाग-५ सटीक	श्री शीलंकाचार्य	गुजराती	श्री माणेक मुनि	351
212	रायपसेणिय सूत्र	श्री मलयगिरि	गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	260
213	प्राचीन तीर्थमाळा भाग-१	आ.श्री धर्मसूरि	सं./गुजराती	श्री यशोविजयजी ग्रंथमाळा	272
214	धातु पारायणम्	श्री हेमचंद्राचार्य	संस्कृत	आ. श्री मुनिचंद्रसूरि	530
215	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-१	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	648
216	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-२	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	510
217	सिद्धहेम शब्दानुशासन लघुवृत्ति भाग-३	श्री हेमचंद्राचार्य	सं./गुजराती	श्री बेचरदास दोशी	560
218	तार्किक रक्षा सार संग्रह	आ. श्री वरदराज	संस्कृत	राजकीय संस्कृत पुस्तकालय	427
219	वादार्थ संग्रह भाग-१ (स्फोट तत्त्व निरूपण, स्फोट चन्द्रिका, प्रतिपादिक संज्ञावाद, वाक्यवाद, वाक्यदीपिका)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	88
220	वादार्थ संग्रह भाग-२ (षट्कारक विवेचन, कारक वादार्थ, समासवादार्थ, वकारवादार्थ)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	78
221	वादार्थ संग्रह भाग-३ (वादसुधाकर, लघुविभक्त्यर्थ निर्णय, शाब्दबोधप्रकाशिका)	विविध कर्ता	संस्कृत	महादेव शर्मा	112
222	वादार्थ संग्रह भाग-४ (आख्यात शक्तिवाद छः टीका)	रघुनाथ शिरोमणि	संस्कृत	महादेव शर्मा	228

ॐ

श्री पुण्य सुवर्ण स्मारक ग्रन्थमाला

पुष्प नं० ३३

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी महाराज रचित

प्रश्नोत्तर सार्द्धशतक

हिन्दी अनुवाद

अनुवादिका—

प्र० विचक्षणश्री

द्रव्य सहायक—

इन्दौर श्राविका मंडल

प्रकाशक—

श्री पुण्य सुवर्ण ज्ञानपीठ

जयपुर

प्रथमावृत्ति १०००] मूल्य २) रु० [वि. सं. २०२४

Aho ! Shrutgyanam

मुद्रक :
पं० ईश्वरलाल जैन
आनन्द प्रिंटिंग प्रेस, गोपालजी का रास्ता,
जयपुर - ३.

Aho ! Shrutgyanam

Aho ! Shrutgyanam

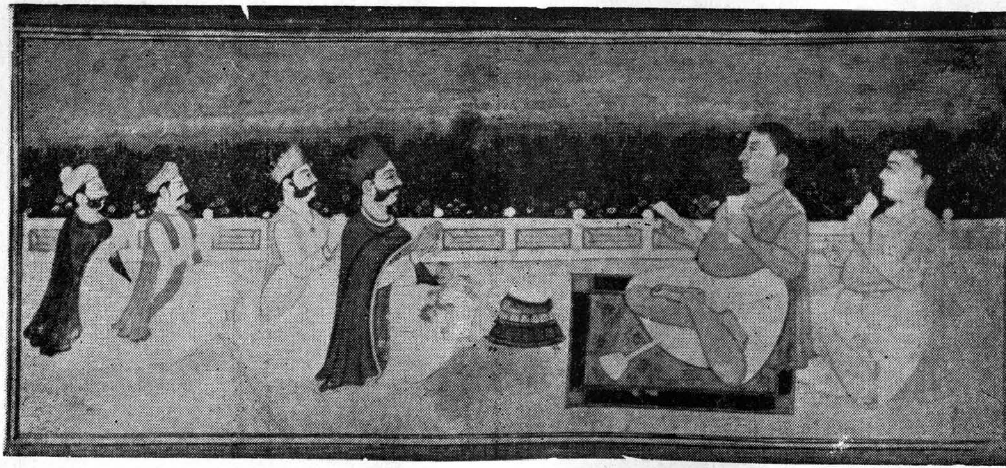

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी शिष्य व श्रावकों सहित

Aho ! Shrutgyanam

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी

ले०-अगरचन्द नाहटा

श्वे० जैन संघ में खरतर गच्छ की सेवाएं चिरस्मरणीय रहेंगी। समय समय पर अनेक आचार्यों, मुनियों व श्रावकों आदि ने जैन शासन की विविध प्रकार की महान् उल्लेखनीय सेवायें की हैं। १९वीं शताब्दी में खरतर गच्छ में एक गीतार्थ विद्वान् ऐसे हो गए हैं जिनकी समाज एवं साहित्य को विशिष्ट देन रही है। उनका नाम है उपाध्याय क्षमाकल्याण जी।

जन्म—

पं० नित्यानंदजी विरचित क्षमाकल्याण चरित (संस्कृत पद्य) के अनुसार आपने बीकानेर के समीपवर्ती गांव केसरदेसर के ओसवाल वंशीय मालू गोत्र में सं० १८०१ में जन्म ग्रहण किया था। जन्म नाम खुशालचन्द था।

दीक्षा ग्रहण—

नित्यानन्दजी के लिखित चरितानुसार आपने संवत् १८१२ में अमृतधर्मजी से दीक्षा ग्रहण की। पर दीक्षानंदी सूची के अनुसार सं० १८१५-१६ के वैशाख वदी ३ फलोधी या असाढ़ बदी २ जैसलमेर में खरतर गच्छाचार्य श्री जिनलाभ सूरिजी के समीप आपने दीक्षा ग्रहण की थी। आपके धर्म-प्रतिबोधक और गुरुवाचक श्री अमृतधर्मजी थे। अतः उनके शिष्य से आप प्रसिद्ध हैं।

Aho ! Shrutgyanam

गुरु परम्परा—

श्री जिनभक्ति सूरिजी के प्रीतिसागरजी नामक सुशिष्य थे, उनके विद्वान शिष्य अमृतधर्मजी थे जिनका उसमें वर्णन किया जा चुका है। क्षमाकल्याणजी उन्हीं के सुशिष्य थे। अब उपरोक्त तीनों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

(१) जिन भक्ति सूरि—

जिनसुखसूरि के पट्ट पर श्री जिनभक्ति सूरि आसीन हुये। इनके पिता सेठ गोत्रीय साह हरिचन्द्र थे, जो इन्द्रपालसर नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी माता थी हीरसुख-देवी। सम्बत् १७७० ज्येष्ट सुदी तृतीया को आपका जन्म हुआ था। जन्म नाम आपका भीमराज था और सम्बत् १७७९ माघ शुक्ला नवमी को दीक्षाग्रहण करने के बाद दीक्षा नाम भक्ति क्षेम डाला गया। सम्बत् १७८० ज्येष्ट वदी तृतीया के दिन रिणीपुर में श्रीसंघ कृत महोत्सव से गुरुदेव ने अपने हाथ से इन्हें पट्ट पर बैठाया था। तदनन्तर आपने अनेक देशों में विचरण किया। सादड़ी आदि नगरों में विरोधियों को (हस्तिचालनादि प्रकार से [!]) परास्त करके विजय लक्ष्मी को प्राप्त करने वाले, सब शास्त्रों में पारंगत, श्री सिद्धाचल आदि सब महातीर्थों की यात्रा करने वाले और श्री गूढानगर में अजित-जिन-चैत्य के प्रतिष्ठापक, महा तेजस्वी, सकल विद्वज्जन शिरोमणि आचार्य श्री जिन भक्ति सूरि के (श्री राजसोमोपाध्याय श्री रामावजयोपाध्याय) और श्री प्रीतिसागरोपाध्याय आदि कई शिष्य हुये। आप कच्छ देश मंडन श्री मांडवीबिंदर में संवत् १८०४ में ज्येष्ठ सुदी चतुर्थी को दिवंगत हुये। उस रात्रि को आपके अग्नि-संस्कार की भूमि (श्मशान) में देवों ने दीपमाला की।

Aho ! Shrutgyanam

(२) प्रीतिसागरजी—

कहा जाता है कि आप संविग्न पक्षो (वैराग्यवान यति) थे। दीक्षानंदी सूची के अनुसार सं० १७८८ में आपकी दीक्षा हुई थी। आपका जन्म नाम प्रेमचन्द था। सं० १८०१ राधनपुर जिनभक्ति सूरि के साथ, श्री जिनलाभसूरि जी के सं० १८०४ में भुजनगर, सं० १८०५ में गूढा, सं० १८०६ में जैसलमेर मे आप भी साथ थे। संवत् १८०८ काती वदी १३ बीकानेर में आप स्वर्ग सिधारे। आपको पादुकाएं जैसलमेर की अमृत धर्म स्मृतिशाला में प्रतिष्ठित हैं (दे. हमारा बीका. ने जैन लेख संगह २ (४४) इसके अतिरिक्त आपके सम्बन्ध में ज्ञातव्य अन्य कोई प्रमाण नहीं मिला। सं० १७९५ मिगसर वदी १४ का आपको लिखित प्रति क्षमा कल्याण भंडार में है।

(३) वाचक अमृतधर्म जी—

कच्छ देश के ओशवंशीय वृद्ध शाखा में आपका जन्म हुआ था। आपका जन्म नाम अर्जुन था। दीक्षा सं० १८०४ फागण सुदी १ में जिनलाभ सूरिजी ने भुज में दी। शत्रुंजयादि तीर्थों की आपने यात्रा की थी। सिद्धान्तों के योगोद्वहन किये थे। आपका चित्त संवेग रंग मे आपूरित था, फलतः आपने कुछ नियम ग्रहण किये थे जिसका विवरण नियम पत्र में मिलता है। उसके अन्त में लिखा है कि सम्वत् १८३८ माघ सुदि ५ को आपने सर्वथा परिग्रह का त्याग कर दिया था।

सम्वत् १८२६ में श्री जिनलाभसूरिजो ने अपने पास बुलाकर सं० १८२७ में आपको वाचनाचार्य पद से विभूषित किया था। इसके बाद यानि सं० १८२६ से १८४० तक आप गच्छनायक

Aho ! Shrutgyanam

श्री जिनलाभसूरि और श्री जिनचन्द्रसूरि के साथ रहे थे। संवत् १८४३ में आप पूर्व प्रान्त में पधारे और वहां के पवित्र तीर्थों को यात्रा की एवं धर्म-प्रचार किया। वहां आपके उपदेश से कई नवीन प्रासाद बने थे। कइयों पर स्वर्ण के दंड-ध्वज-कलशादि चढाये गये थे। सम्वत् १८४८ में पटना में सुदर्शन श्रेष्ठि के देहरे के समीप (कोशा वेश्या की) जगह २००) में जमीदार से खरीद की हुई जगह में स्थूलिभद्रजी को देहरो भी आपके उपदेश से बनो थी। और आपने ही उसकी प्रतिष्ठा को थी। सम्वत् १८५० में बीकानेर चौमासा किया। सम्वत् १८५१ में जैसलमेर चतुर्मास किया और वहीं माघ सुदि ८ को आपका स्वर्गवास हुआ। आपका रचित 'विशेष संग्रह संक्षेप' व कई स्तवनादि और कई लिखित प्रतियां बीकानेर के ज्ञान भंडारों में प्राप्त हैं।

जैसलमेर में 'श्री अमृतधर्म स्मृति-शाला' है। उसमें जिनभक्ति सूरि, प्रीतिसागरजी व अमृतधर्मजी की पादुकाएं हैं। अमृतधर्मजी सम्बन्धी क्षमा कल्याण रचित व लिखित 'अष्टक' वाला लेख विशेष महत्व का है (देखिये हमारा 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' लेखांक २८४१) उपरोक्त अष्टक हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह के पृ ३०७ पर भी छप चुका है।

विद्या गुरु—

आपका विद्याध्ययन उपाध्याय राजसोम और उपाध्याय रूपचन्द (रामविजयजी) के तत्वावधान में हुआ था। उस समय ये दोनों पाठक बड़े प्रख्यात विद्वान थे इनका यथा ज्ञात संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

Aho ! Shrutgyanam

(१) उपाध्याय राजसोमजी—

खरतरगच्छ की क्षेमकीर्तिशाखा में १८ वीं शताब्दी में उ० लक्ष्मीवल्लभ अच्छे विद्वान और सुकवि हो गये हैं। उनके गुरू भ्राता वाचक सोमहर्षजो के शिष्य वाचक लक्ष्मीसमुद्र के शिष्य उ० कपूरप्रियजी के आप शिष्य थे। सम्वत् १७५४ में आप दीक्षित हुए। जन्म नाम राजू था। सम्वत् १८०१ के पूर्व आपको गच्छनायक की ओर से उपाध्याय पद प्रदान किया गया था। सम्वत् १८२५ में आप तत्कालीनगच्छ के समस्त उपाध्यायों में वृद्ध होने के कारण 'महोपाध्याय' पद से समलंकृत थे।

आपकी शिष्य परम्परा १९८० तक अविछिन्न चलो आ रही थी, अब कोई विद्यमान नहीं रहा। आपके रचित कृतियें इस प्रकार है—

१) श्रुतज्ञान पूजा (संस्कृत)
२) सिद्धाचल स्तवन, गा० ४८ सं० १७६७ फा० व० ७
३) नवकर वाली (१०८ गुण) स्तवन
४) सांगानेर पद्मप्रभ स्तवन, गा. २२
५) उंदर रासो, गाथा ३४.
६) ग्रहलाघव सारणी टिप्पण (पत्र ६)

सम्वत् १७६४-१८०४ में लिखित आपकी प्रतियें भी बीकानेर भंडारो में है।

(२) उपाध्याय रामविजयजी (रूपचन्द)—

खरतरगच्छ की क्षेमकीर्ति शाखा में कविवर जिनहर्ष १८वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। उनके शिष्य समाचंद (सुख-

Aho ! Shrutgyanam

वर्द्धन) के शिष्य दयासिंहजी के आप सुशिष्य थे। संस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी एवं हिन्दी भाषा के आप सुकवि और मर्मज्ञ विद्वान् थे। आपके रचित कृतियों की संक्षिप्त सूची इस प्रकार है—

(१) भर्तृहरि शतक त्रय बालावबोध-संवत् १७८८ काती वदि १३ सोजत में रचित (अभयसिंह राजा के मंत्री छाजेड़ गोत्रीय जीवराज के पुत्र मनरूप के आग्रह से)

(२) अमरू शतक बालावबोध-संवत् १७८१ आश्विन शुक्ला १५ (उपरोक्त मंत्री पुत्र आग्रहात्) अभयसिंह राज्ये।

(३) समयसार (नाटक) बालावबोध-सम्वत् १७९८ आश्विन, स्वर्णगिरी [गणधर (चोपड़ा) गोत्रीय जगन्नाथ हेतवे] प्रकाशित

(४) गौतमीय महाकाव्य (११ सर्ग) सं० १८०७ जोधपुर (रामसिंह राज्ये) प्रकाशित।

(५) गुणमाला प्रकरण-संवत् १८१४ (जिनलाभ सूरि की आज्ञा से)

(६) चित्रसेन पद्मावती चौपाई-संवत् १८१४ पो० सु० १०

(७) चतुर्विंशति जिन स्तुति पंचाशिका (गाथा ५०) संवत् १८१४ भाद्रवा वदी ३ बीकानेर।

(८) भक्तामर टबा—संवत् १८११ जेठ सुदी ८, काला ऊना (शिष्य पुण्यशील* विद्याशीलके आग्रह से)

---

*संवत् १८३३ आ० म० ५ मुनरा बंदरा में क्षमाकल्याणजी के पास कई नियम ग्रहण किये थे।

Aho ! Shrutgyanam

(९) नवतत्व टबा--संवत् १८३४, अजीमगंज, सबलसिंह पठनार्थ।

(१०) आबू यात्रा स्तवन-सम्वत् १८२१ (जिनलाभ सूरि और ८५ यतियों के साथ)

(११) फलौधी पार्श्व स्तवन-संवत् १८२३ मिगसर बदि ८ (जिनलाभ सूरि साथ)

(१२) साधु समाचारी-सं० १८१६, (शिष्य विद्याशील पठनार्थ)

(१३) नेमि नव रसो।

(१४) सिद्धांत चंद्रिका वृत्ति •(सुबोधिनी पूर्वार्द्ध) ग्र० ६०००

(१५) अल्पाबहुत्व स्तवन गाथा १४

(१६) साध्वाचार षट्त्रिंशिका

(१७) विवाह पडल भाषा (पत्र २)

(१८) वीरायु ७२ वर्ष स्पष्टीकरण सं० १८३७ आ० सुदि ६ मेड़ता नागोर (?)

(१९) पार्श्वस्तवन सटीक (पत्र १ महिमा भक्ति भंडार— गाथा ८)

(२०) नेमि नाम माला भाषा टीका सं० १८२२ स्थान-काला ऊना

(२१) लघुस्तव टब्बा, सं० १७९८

(२२) सप्तश्लोकी टबा, सं० १८३१, पाली

•जयदत्त के पत्र में:-अभप्रस्थेन श्रीपाठकैः रूपचंद्रारकैः कृता षट् सहस्र प्रमिता चंद्रिका वृति लिख्यते ।। बिकानेर से वेनातट से पं० देवचंद लि० ।

Aho ! Shrutgyanam

(२३) सन्निपातकलिका टबा, सं० १८३१, पाली
(२४) कल्पसूत्र बालावबोध सं० १८११, बीदासर
(२५) मुहूर्त मणिमाला सं० १८०१ (?)
(२६) समुद्रबद्ध कवित, सं० १७६७, बीह्लाबास
(२७) गौड़ो पार्श्व छन्द गाथा ११३
(२८) जिन सुख सूरि मजलस-सं० १७७२
(२९) कल्याण मन्दिर टब्बा, सं० १८११ काला ऊना
(३०) दुरियर स्तोत्र टबा सं १८१३ बिलाड़ा

रूपचन्दजी के सम्बन्ध में मेरा स्वतन्त्र लेख अनेकान्त व सप्तसिंधु में छप चुका है।

अन्य साधनों से ज्ञात होता है कि सम्वत् १८१० से पूर्व आपको वाचक पद प्राप्त था और सम्वत् १८२३ में आप उपाध्याय पद से अलंकृत हो चुके थे। सम्वत् १८१८ से २५ तक आप जिनचन्द्रसूरिजी के साथ ही विहार में रहे थे।

विद्याध्ययन—

मेरे अनुमान से सम्वत् १८१८–२२ तक आपने उपाध्याय राजसोमजी के पास विद्याध्ययन किया। फिर राम विजय जो श्री जिनलाभसूरि के साथ थे उनके पास संवत् १८२५ तक या पीछे भो विद्याध्ययन किया होगा।

विहार—

सम्वत् १८२६ से १८४० तक वाचक अमृतधर्मजी श्री जिनलाभ सूरिजी एवं श्री जिनचन्द्र सूरिजी के साथ विचरे हैं। यथा सम्भव आप उस समय भी अपने गुरु के साथ थे।

Aho ! Shrutgyanam

जिनलाभ सूरि के बिहार स्थानों के लिये "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" में ३४ दोहे पृ० ४१४–१६ में छप चुके हैं।

सम्वत् १८२४ में बीकानेर में थे। तदनन्तर १८२६ से १८३३ तक गुजरात–काठियावाड़ घूमे। सम्वत् १८३४ आबू व मारवाड़ के तीर्थों की यात्रा करके सं० १८३८ से ४० तक आप जैसलमेर में रहे। विद्याध्ययन के अनन्तर आप अधिकांश अपने गुरु वाचक अमृतधर्म जी के साथ ही विहार करते थे। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। सम्वत् १८४३ में पूर्व देश की ओर विहार भी आपने अपने गुरु श्री के साथ ही किया था। सम्वत् १८४३ में बालूचर में आपका चौमासा हुआ। और वहां भगवती जैसे महान गम्भीर सूत्र की वाचना (व्याख्यान) की थी। सम्वत् १८४८ तक आप अपने गुरु श्री के साथ पूर्व प्रांत में ही विहार करते हुए धर्मोपदेश व धर्म प्रचार करते रहे। पूर्व प्रदेश में विहार करने से आपकी भाषा में हिन्दी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसके पश्चात् वहां से विहार कर बीकानेर (सम्वत् १८५० में) पधार गये थे। सम्वत् १८५० का चातुर्मास बीकानेर कर सम्वत् १८५१ का चातुर्मास अपने गुरु श्री के साथ ही जैसलमेर किया और वहीं सम्वत् १८५१ माघ शुक्ला ८ को वाचक अमृतधर्मजी का स्वर्गवास हुआ। इसके पहले और पश्चात् आपने अनेकों स्थानों में विहार कर धर्म प्रचार किया, ग्रन्थ निर्माण किया, तीर्थों की यात्राएं की, जिनालय, जिनबिम्बों की प्रतिष्ठायें की। उनका संवतानुक्रम से भिन्न भिन्न सूचि-मय निर्देश किया गया है। अतः यहां समुच्चय आदि से आपके विहार की सम्वतानुक्रम से यथाज्ञात सूचि दी जाती है जिससे आपके उद्यत विहार का भली-भांति परिचय मिल जायगा।

अब सं० १८२४ से आपके विहारानुक्रम की सूचि नीचे दी जाती है—

Aho ! Shrutgyanam

सम्वत् १८२४ बीकानेर (क्षमाकल्याण लिखित प्रति)
सम्वत् १८२५ पार्श्वनाथ यमक बद्ध स्तव
सम्वत् १८२६ माधव वदि ३ शंखेश्वर यात्रास्तवन
सम्वत् १८२७ माधव सु० १२ सूरत, शीतल जिन स्तवन
सम्वत् १८२८ (सत्यपुर), तर्क संग्रह फक्किका
सम्वत् १८२९ चैत्र बहुल, राजनगर, भू धातु वृति
सम्वत् १८२९ राजनगर, गौतमीय काव्यवृति प्रारम्भ।
सम्वत् १८३० फागण सुदि ९, जीर्णगढ़, खरतरगच्छ पट्टावली।

" १८३० पो० घोघा स्तवन
" १८३१ मांडवी
" १८३३ सावण सुदि ५, मुनराबंदिर, क्षमाकल्याण पार्श्वे पुण्यधीर नियम ग्रहण
" १८३३ कातो सुदि ५, मनराबंदर, में स्वयं लिखित प्रति
" १८३४ जेठ सुदि १ आबू यात्रा स्तवन
" १८३४ वैशाख वदि ५ महेवा यात्रा स्तवन
" १८३५ नभ—सुदि ५, पाटोधी, चौमासी व्याख्यान
" १८३६ फागण वदि ९, लौद्रवा स्तवन
" १८३८ जैसलमेर श्रावक विधि प्रकाश साधु विधि प्रकाश
" १८३९ नभ सुदि ५, यशोधर चरित्र, जैसलमेर,
" १८४२ बालूचर चौमासा, भगवती सज्भाय
" १८४३ फागण वदि ११, समेत शिखर यात्रा स्तवन
" १८४४ वैशाख सुदि ५, बालोचर, सम्भव जिनालय प्रतिष्ठा
" १८४४ भादवा वदि ७ बालोचर, अमृतक्षमा
" १८४५ माघ सुदि ११ महिमापुर, सुविधि स्तवन

Aho ! Shrutgyanam

,, १८४७ माघ वदि २ पावापुरी यात्रा स्तवन
,, १८४७ माधव सुदि ५ महाजन टोलो, पार्श्व स्तवन
,, १८४७ विजय दसमो महिमापुर, थावच्चा चौपई
,, श्रु० बहुल ११ मकसूदाबाद, सुक्त रत्नावली
,, १८४८ चै. सुदि पाडलोपुर तीर्थयात्रा स्तव श्लो० ३२
,, १८४८ पाडलीपुर, स्थूलिभद्र थापना सभाय गाथा १३
,, १८४८ कातो वदो ५ पटना, अमृत धर्म क्षमाकल्याण
,, १८४८ पो. सुदि १५ पावापुरो हरजीलाल मूलचन्द सह यात्रा स्तवन
,, १८४८ विपुलाचं‌ल अहमता स्थापना सयुक्त ७
,, १८५० माघ सुदि १, बीकानेर पत्र
,, १८५० भादवा वदि ५, बीकानेर ,,
,, १८५० नभ सुदि ७, बीकानेर, जीव विचार वृति
,, १८५१ असाढ वदि २ जेसलमेर के लिये आदेश पत्र
,, १८५२ नभ सुदि ११, जेसलमेर, गौतमीय काव्य टोका
,, १८५३ श्रावण सुदि १, बीकानेर पत्र
,, १८५३ वैशाख वदि १२, बोकानेर, प्रश्नोतर सार्द्ध शतक भाषा
,, १८५४ मिगसर सुदि ६, गिरनारस्तव, घाणेराव संघ सह
,, १८५४ चैत्र सुदि ८. शत्रुंजय स्तवन
,, १८५४ आ० सुदि ३, पाली ताणा, अम्बड चरित्र
,, १८५५ भादवा सुदि ११, सूरत पत्र
,, १८५५ फागण वदि १२ श्रीपुर अंतरिक्ष स्तवन
,, १८५६ जेठ सुदि १३, नागपुर, चैत्य वंदन चौवीसी
,, १८५६ भादवा सुदि १५, नागपुर से वाचक क्षमाकल्याणजी का पत्र।

Aho ! Shrutgyanam

,, १८५८ जेठ वदि ४, जैसलमेर, जिनहर्ष सूरि पत्र
,, १८५८ भादवा सुदि १०, बीकानेर,
,, १८५८ चैत वदि १, लोद्रवा स्तवन,
,, १८५६ जैसलमेर, विज्ञान चन्द्रिका
,, १८६० श्रावण सुदि २ बीकानेर, जैसलमेर अष्टाह्निका व्याख्यान
,, १८६० फा० सु० ७, बीकानेर, जैसलमेर आवेदन पत्र
,, १८६० पो० वदि ११, जैसलमेर।
,, १८६० वैशाख सुदि ७, देवीकोट स्तवन,
,, १८६१ आषाढ़ सुदि ६, बीकानेर
,, १८६१ माघ वदि ११, देसणोक, प्रतिष्ठा
,, १८६१ फागण सुदि २, जयपुर, सुपार्श्व स्तवन
,, १८६२ आ० सुदि १५, जयनगर, पत्र में उल्लेख
,, १८६२ चैत सुदि ८, जयपुर, क्षमाकल्याण लिखित पत्र
,, १८६६ फाल्गुण सुदि १५, शंखेश्वर, मारवाड़ के संघ सह यात्रा स्तवन
,, १८६६ चैत सुदि १५, गिरनार स्तवन,
,, १८६६ काती जयनगर (श्रा० व्रत ग्रहण)
,, १८६६ वैसाख सुदि २, शत्रुंजय यात्रा स्तवन
,, १८६७ फागण वदि १३, कृष्णगढ़। १८६७ आश्विन सुदि ५, पाली, पत्र
,, १८६७ माघव ६ मंडोर प्रतिष्ठा स्तवन
,, १८६७ आश्विन , पत्र,
,, १८६७ फागण सुदि ६, कृष्णगढ़, पत्र
,, १८६८ चैत्त सुदि ८ किशनगढ
,, १८६८ भादवा व. ३ किशनगढ

Aho ! Shrutgyanam

,,	१८६८	वैशाख वदि १४, जोधपुर गोडा दुखने का पत्र		
,,	१८६९	जेठ वदि ३, देसणोक		पत्र
,,	१८६९	पो वदि ८, बीकानेर		,,
,,	१८६९	माघ वदि ८, देसणोक,		,,
,,	१८६९	मिगसर वदि १०, बीकानेर,		,,
,,	१८७०	श्रांवण सुदि ११, बीकानेर,		,,
,,	१८७०	फागण सुदि १०, देसणोक		,,
,,	१८७०	वैशाख सुदी ८, अजमेर,		,,
,,	१८७०	भादवा सुदि ७, बीकानेर		,,
,,	१८७१	माघ सुदि ७, बीकानेर		,,
,,	१८७१	भादवा वदि, २, बीकानेर		,,
,,	१८७१	मिगसर वदि ८, बाकानेर		,,
,,	१८७२	भादवा वदि १२, बीकानेर		,,
,,	१८७२	मिगसर वदि १४, बीकानेर		,,
,,	१८७३	मि० व० ८, बीकानेर		,,
,,	१८७३	जेठ वदि २,		,,
,,	१८७३	आ० वदि १४,		,,

वाचक पद प्राप्तिः—

सम्वत् १८५५ में गच्छनायक जिनचन्द सूरिजी ने आपको अपने निकट बुलाकर 'वाचक' पद प्रदान किया था।

उपाध्याय पद प्राप्ति—

जिनचन्द सूरिजो का सम्वत् १८५६ में स्वर्गवास होने के अनन्तर श्री जिनहर्ष सूरि उनके पद पर स्थापित किये गये। उन्होंने गच्छ में आपको योग्यता सविशेष देख (सम्वत् १८५८

Aho ! Shrutgyanam

के पूर्व) आपको उपाध्याय पद से अलंकृत किया। सम्वत् १८५८-५९ में आप गच्छ नायक के साथ जैसलमेर में ही थे।

ग्रन्थ निर्माण—

व्याकरण, न्याय आदि में आपका अच्छा पांडित्य था ही पर जैन सिद्धांतों (आगमों) के गूढ़ रहस्यों को भी जानने में आपकी असाधारण गति थी। खरतर गच्छ में उस समय आप सर्वोपरि गीतार्थ माने जाते थे। अनेकों विद्वान् अपने प्रश्नों या सन्देहों का समाधान आपसे करते थे। गच्छनायक आचार्य भी आपकी सैद्धान्तिक सम्मति का बहुमूल्य समझते थे। कई यतियों ने आपके पास विद्याध्ययन कर पांडित्य और गीतार्थता प्राप्त की थी। प्रश्नों के सप्रमाण उत्तर देने में या निराकरण करने में आप सिद्धहस्त थे। 'प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक' के अतिरिक्त छुटकर सैंकड़ों प्रश्नों के उत्तर आपके लिखित यहां के महिमा भक्ति भण्डार आदि में विद्यमान हैं। उनमें कई-कई प्रश्न तो इतने जटिल जौर विचारणीय हैं कि उनका समुचित उत्तर देने वाले अब बहुत ही कम मिलेंगे।

आपके रचित ग्रन्थों की सूची सम्वतानुक्रम से इस प्रकार है—

सम्वत् १८२६ माधव ३, शंखेश्वर स्तवन प्र०
१८२७ वैशाख शुक्ल १२, सूरत, शीतल, सहसफणा पार्श्व स्त० गाथा ११ प्र०
१८२८ सूरत, तर्क संग्रह फक्किका प्र०
१८२९ चैत्र वदि १, राजनगर, भु धातु वृति
१८२९ राजनगर, गौतमीय काव्य वृति प्रारम्भ प्र०

Aho ! Shrutgyanam

१८३० पौष, घोघा, नवखंडा पार्श्व स्तवन प्र०
१८३० फाल्गुन शुक्ला ६, जीर्णगढ़, खरतरगच्छ पट्टावली प्र०
१८३३ कार्तिक शुक्ला ५, मनराबंदिर, आत्मप्रबोध*,प्र०
१८३४ वैशाख कृष्णा ५, महेवा, पार्श्व स्तवन प्र०
१८३४ ज्येष्ठ शुक्ला १, आबू, ऋषभ जिनस्तवन प्र०
१८३५ श्रावण शुक्ला ५, पाटोधी, चातुर्मासिक व्याख्यान। प्र.
१८३६ फाल्गुण कृष्णा ६, लोद्रवा, सहसफणा पार्श्व-स्तवन प्र
१८३८ जैसलमेर, श्रावक विधि प्रकाश प्र.
साधु विधि प्रकाश प्र.
१८३९ श्रावण शुक्ला ५, जैसलमेर, यशोधर चरित्र प्र.
१८४३ (४२) चातुर्मास, बालूचर, भगवती सूत्र सभाय प्र.
१८४३ फाल्गुण कृष्णा ११, सम्मेत शिखर, तीर्थयात्रा स्तवन गा० ७ प्र.
१८४४ वैशाख शुक्ला ५, अजीमगंज, संभव (प्रतिष्ठा स्त० प्र.
१८४५ माघ शुक्ला ११, महिमापुर, सुविधि (प्रतिष्ठा) स्त० गा० ७ प्र.
१८४७ वैशाख शुक्ला ५, महाजन टोली, पार्श्व (प्रतिष्ठा) स्त० गा० ५ प्र.
१८४७ विजयदसमी,महिमापुर, थावच्चा चौपई गा०५३प्र.

---

* वैसे इसके रचयिता जिनलाभ सूरि होने का उल्लेख प्रशस्ति में है पर क्षमाकल्याणजी की रचनाओं की जो सूची ज्ञान भंडार में मिली है उसमें इसका भी नाम है।

Aho ! Shrutgyanam

१८४७ श्रु० बहुल ११, मकसुदाबाद, सूक्त रत्नावली वृति प्र०

१८४७ माघ कृष्णा २ पावापुरी, महावीर स्तवन प्र०

१८४७ पाड़लीपुर, स्थूलिभद्र स्थापना स्तवन प्र०

१८४८ पोष शुक्ला १५, पावापुरी, महावीर स्तवन प्र० (हरजीमल सुत मुलचन्द संघ सह यात्रा) गा० ५

१८५० श्रावण शुक्ला ७, बीकानेर, जीव विचार वृत्ति प्र०

१८५१ ज्येष्ठ शुक्ला ५, जैसलमेर प्रश्नोतर-सार्द्ध शतक प्र०

१८५१ भाद्रवा शुक्ला ५. , पार्श्वस्तवावचूरि

१८५२ श्रावण शुक्ला ११, जैसलमेर, गौतमीय काव्य वृति समाप्ति प्र०

१८५३ वैशाख वदि १२, बीकानेर, प्रश्नोतर सार्द्ध-शतक भाषा

१८५४ मार्गशीर्ष शुक्ला ६. गिरनार, नेमिस्तवन (घाणेराव संघ सहयात्रा) प्र०

१८५४ चैत्र शुक्ला ८, शत्रुंजय—स्तवन गा० ११ प्र०

१८५४ आषाढ सुदि ३. कुजवार. पालीताणा, अम्बड चरित्र

१८५५ फाल्गुन कृष्णा १२, श्रीपुर, अंतरिक्ष पार्श्व स्तवन गाथा ७ प्र०

१८५६ ज्येष्ठ शुक्ला १३, नागपुर, चैत्यवंदन चौवीशी जिन नमस्कार प्र०

१८५८ चैत्र वदि १, लोद्रवा, पार्श्वनाथ स्तवन प्र०

१८५९ , जैसलमेर, बिज्ञान चन्द्रिका

Aho ! Shrutgyanam

१८६० सुचि (श्रावण) सुदि २, जैसलमेर, अष्टान्हिका व्याख्यान प्र०

१८६० फाल्गुन शुक्ला ११, बीकानेर, मेरू त्रयोदशी अक्षय तृतीया होरिका व्याख्यान, प्र०

१८६० वैशाख शुक्ला ७, देवीकोट, ऋषभ (प्रतिष्ठा) स्तवन प्र०

१८६१ माघ शुक्ला ५, देशणोक, सुविधि (प्रतिष्ठा) स्तवन प्र०

१८६१ फाल्गुन शुक्ला २, जयपुर, सुपार्श्वनाथ स्तव प्र०

१८६६ फाल्गुन शुक्ला १५, शंखेश्वर, पार्श्वस्तवन, मरुधर संघ महयात्रा प्र०

१८६६ चैत्री पूनम, गिरनार, नेमिस्तवन प्र०
(संघवी गिड़ोया राजाराम
तिलोकचंद लूणीया संघ सह यात्रा

१८६६ वैशाख सुदि २, शत्रुञ्जय स्तवन गाथा १५ प्र०

१८६७ माघ वदि ६, मंडोवर, पार्श्व प्रतिष्ठा स्तवन प्र०

१८६९ विजयदशमी, बीकानेर, श्रीपाल चरित्र वृत्ति ग्र० ५०२२ प्र०

१८६९ माघ शुक्ला १३, अजमेर, संभव (प्रतिष्ठा) स्तवन प्र०

१८७१ माघ शुक्ला १, बीकानेर, सुपार्श्व (प्रतिष्ठा) स्तवन प्र०

१८७३ , बीकानेर, समरादित्य चरित्र (अपूर्ण)

क्षमाकल्याणजी के रचित संस्कृत और राजस्थानी की अनेक लघु रचनायें महिमा भक्ति ज्ञान भण्डार में है इनमें से

Aho ! Shrutgyanam

स्तवनादि का एक संग्रह ४० वर्ष पूर्व श्री हरिसागरजी ने चैत्य वन्दन स्तवन संग्रह के नाम से प्रकाशित किया था।

बिना संवत के उल्लेखनीय ग्रन्थ

१) जिन स्तुति श्लोक ७७ ग्रन्थाग्रन्थ १४८
२) चतुर्विंशति चैत्यवंदन (श्लोक ७३) २
३) प्रतिक्रमण हेतवा भाषा, विक्रमपुर
४) श्राद्ध प्रायश्चित विधि, बालूचर
५) पर समयसार विचार संग्रह (?)
६) विचार शतक बीजक
७) जयतिहुउण भाषा बद्धकाव्य, पद्य ४१, महिमापुर, (कातेला सोभाचन्द सुत गूजरमल भ्राता तनसुख आग्रहे)
८) हित शिक्षा द्वात्रिंशिका (स. १८६८ पूर्व)
९) संग्रहणी सपर्याय (प्रति महिमा भक्ति भंडार)
१०) पार्श्व स्तोत्रवृति आदि

अनुपलब्ध

१ चौबीसी काव्य की गेय पद्धति
२ पंच तीर्थी स्तोत्र
३ प्रश्नोतर शतक
४ नग्न पाखण्ड मत स्वरूपाष्टक
५ मुक्तावलि फक्किका प्रश्न
६ समाप्ततंत्र सेग
७ सूक्ति रत्नावली भाषा
८ आलोयणा विधि भाषा
९ चौबीसी वृत्ति

(उल्लेख पुरानी ग्रन्थ सूची में)

Aho ! Shrutgyanam

प्रतिष्ठाएं

आपने अनेक जिनालय व जिन-बिम्बों को प्रतिष्ठा कराई थी उनमें कतिपय ये हैं—

१) सं० १८४४ वैशाख सुदी ५, अजीमगंज, संभव
२) सं० १८४५ माघ सुदि ११, महिमापुर, सुविधि
३) सं० १८४७ वैशाख सुदि ५, महाजन टोली, पार्श्व
४) सं० १८४८ पाडलीपुर, स्थूलिभद्र स्थान
५) सं० १८६० वैशाख सुदि ७, देवीकोट, ऋषभ
६) सं० १८६१ माघ सुदि ५, देशणोक, सुविधि
७) सं० १८६९ माघ सुदि १३, अजमेर, संभव
८) सं० १८७१ माघ सुदि ११, बीकानेर, सुपार्श्व
९) सं० १८६८ वैशाख सुदि १२, जोधपुर,
१०) सं० १८६७ माघव ९, मंडोवर, पार्श्व,

आपके प्रतिष्ठित यन्त्र और पट्ट भी अनेक प्राप्त हैं।

व्रत ग्रहण—

आपके पास अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने व्रत ग्रहण किये थे जिनमें से कुछ ये हैं—

१) संवत् १८३३ श्रावण सुदि ४, मनरावंदिर, पं० पुण्य धीर गणि नियम पत्र
२) संवत् १८४७ मिगसर बुदि ५, श्रावक मुलचंदादि ने आपका नित्य स्मरण करने का नियम
३) संवत् १८५० आषाढ़ बदि १३, श्राविका लालां बाइ

Aho ! Shrutgyanam

४) संवत् १८५० फाल्गुरा बदि ३ , श्राविका फूलां बाइ
५) संवत् १८५६ असाढ़ सुदि ५ , श्राविका चंपेली
१८५४ अ० व० जयनगर सुराणा मगनीराम व्रत ग्रहण
६) संवत् १८६६ काती जयनगरे, बाफणा गौडीदास पुत्र परमानंद
१२ व्रत ।
१८६६ जे० व० ३ सिद्ध क्षेत्र लूणिया तिलोकचंद १२ व्रत ग्र०
७) संवत् १८६६ मिगसर वदि १०, बीकानेर, श्राविका चांपाबाई

तीर्थ यात्रा—

आपके रचित स्तवनादि से आपने अनेक तीर्थों की यात्रा की, ज्ञात होता है। जिनमें मुख्य ये हैं—

१) शत्रुंजय सम्वत् १८५४ चैत्र सुदि ८, सं० १८६६ वै. सु. २
२) गिरनार संवत् १८५४ मिगसर सुदि ६, संवत् १८६६ चैत्री पूनम
३) आबू, सं० १८३४ जेठ सुदि १
४) संखेश्वर, सं० १८६६ फाल्गुण सुदि १५, सं० १८२६ माघ वदि ३
५) नाकोड़ा (महेवा) संवत् १८३४ बैशाख वदि ५
६) घोघा नवखंड पार्श्वनाथ संवत् १८३०
७) लोद्रवा, संवत् १८३६ फाल्गुन वदि ६, संवत् १८५८
८) पावापुरी, संवत् १८४७ माघ वदि २, संबत् १८४८ पौ सुदि १५
९) सम्मेत शिखर, संबत् १८४३फाल्गुण वदि ११
१०) श्रीपुर अंतरिक्ष पार्श्वनाथ, संवत् १८५५ फाल्गुन वदि १२
११) जैसलमेर, देवीकोट, जोधपुर, अहमदाबाद, सूरत, बालुचर, महिमापुर, पाडलीपुर, महाजनटोली, मकसूदावाद, देसगोक, बुरहानपुर, अजमेर, दिल्ली, अजीमगंज, फलवद्धी,

Aho ! Shrutgyanam

खंभात, गौड़ो, जीरावली पार्श्व, क्षत्रियकुंड, राजगृही आदि स्थानों की यात्रा भी स्तवनों से भलीभांति सिद्ध है।

गिड़िये राजाराम व संघवी तिलोकचन्द लूणीया का संघ—

रेल्वे द्वारा पर्यटन प्रारम्भ होने के पूर्व शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रायें करना अति-दुष्कर था। जब कभी कोई धनाढ्य लाखों रुपयों का खर्च व मार्ग का पूर्ण प्रबन्ध करने की योजना करता तभी ये यात्रायें की जा सकती थी। ऐसा सुअवसर बहुत समय के पश्चात् और महान् पुण्य से ही प्राप्त होता था। अतः उस समय सभी धार्मिक संघ में सम्मिलित होकर यात्रा का परमलाभ प्राप्त करने को उत्सुक रहा करते थे। महीनों के महीनों मार्ग में व्यतीत हो जाते। उस समय के धार्मिक जनों के तीर्थ यात्रा के भावोल्लास की आज कल्पना करना भी कठिन हो गया है।

संघपति शुभ मुहूर्त निश्चित करने के बाद आस-पास एवं दूरवर्ती स्थानों में आमन्त्रण पत्रिकायें भेजते और आस-पास के भावुक जन हजारों की ही नहीं पर लाखों की संख्या में वहां एकत्र हो जाते। साधु-साध्वियां भी सैंकड़ों और हजारों की संख्या में एकत्र होते। दूरवर्ती (साधु एवं श्रावक संघ) अपने वहां से एक छोटा संघ लेकर मार्ग में अनुकूलतानुसार बड़े संघ के साथ सम्मिलित होते। इस प्रकार एक बड़े संघ के साथ अनेकों स्थानों के सैंकड़ों या बहुत से छोटे छोटे संघ मार्ग में आकर सम्मिलित हो जाते।

संवत् १८६६ में भी ऐसा ही विशाल संघ संघवी तिलोकचन्द लुणीया और जोधपुर निवासी राजाराम गिड़िये के संघपतित्व में निकला था। उसका ज्ञातव्य संक्षिप्त वृतांत इस प्रकार है :—

Aho ! Shrutgyanam

जयपुर से पं. चारित्र विजय पं. चारित्र नंदन आदि ने मिरज़ापुर के वाचनाचार्य चन्द्रभाणजी को (संवत् १८६५) काती बदि १ को पत्र दिया उसमें लिखा है कि—

"तथा इहां थी श्री सिद्धाचलजी की यात्रा निमित्त संघ जावसो हजार १० या १५ लोक हुसी। उपाध्याय श्री क्षमा कल्याणजी जावसी और पिण बीकानेर रा साधु वर्ग जावसीजी। अर म्हारे पिण परिणाम छै जी। पर तुम्हारे पत्र आयां निश्तूक पड़सीजी। अर आपरे पिण यात्रा रा परिणाम होय तो मगसर सुदि ८ ताईं तथा ११ तांइ आया रहिज्यो जी। साथ हगांम रो छै जी। सिंघवी तिलोकचन्द लुणीया राजाराम गिड़ोया जोधपुर वालो एवं दोय जणा सिंघ निकालसैं। लाख ६ रुपीया तेवड्या छै जात्रा निमतें, सो मिगसर वदी २ कै रोज तो सर्व सहर निजीक निजीक है तिहां कंकोत्री मेलसी अर पोह सुदो १५ किसनगढ़ सुं चालसी सर्व भेला पाली होसी तिहां सुं माह सुदी ५ मी पाली सुं सिद्धाचलजी नैं गिरनारजी प्रमुख कुं विदा होसी जो। और पिण श्रावक श्राव-(क)णी घणा साथ होसी जी।

(पत्र के ऊपर)

उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजो गणि की वंदना वाचज्यौ अर कह्यो छै श्री सिद्धगिरिजी रा यात्रा सारू वेगा आवेज्यो।"

(पत्र हमारे संग्रह में)

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी रचित शत्रुञ्जय स्तवनों से ज्ञात होता है कि—

Aho ! Shrutgyanam

जयपुर के बोहरा धर्मसी के पुत्र कपूरचन्द ने अपने परिवार एवं स्वधर्मियों के संघ साथ प्रयाण कर किशनगढ़ वाले विशाल संघ के साथ आ मिले, मार्ग में श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ एवं फलवर्द्धी पार्श्वनाथजी की यात्रा की एवं १७ भेदी पूजा की।

मरुधर प्रान्त के फलवर्द्धि नगर निवासी राज सभा शृंगार गिड़ोया राजाराम एवं संघवी तिलोकचन्द लुणीया ने संघ निकाला। कुकमपत्री भेज संघ को आमन्त्रित किया, पाली में प्रथम रथ जात्रा की वहां मिरजापुर, जयपुर, किशनगढ़, बीकानेर, मेड़ता, सोभत, नागोर, जैसलमेर, जोधपुर, पाली जालोर, पालणपुर, भिनमाल के संघ सम्मिलित हुए। मार्ग में जिनदर्शन, चैत्योद्धार, देव द्रव्य वृद्धि, धर्म प्रभावना करते हुए पाटण आये। वहां के संघ मुख्य आपके संघ सन्मुख आये और संघ ने वहां चैत्य-वंदन, देव-द्रव्य-वृद्धि का। वहां से शंखेश्वर पार्श्वनाथजी की (फागुण सुदि १५) यात्रा की। पाटण, राधनपुर, अहमदाबाद, का संघ भी साथ हो गया। और गिरनार पर जाकर सम्वत् १८६६ के चैत्र शुक्ला १५ को सर्व संघ ने यात्रा की। इस संघ में खरतर भट्टारक श्री जिनहर्ष सूरिजी, खरतराचार्य श्री जिनचंद सूरिजी, (उपकेश) कंवले श्री पूज सिद्धिसूरि और १ सम्भवतः पाली के खरतर श्री पूज्य कुल ४ आचार्य एवं उ० क्षमाकल्याण जी मुनि साथ थे। हाथी, घोड़े, रथ, पैदल अनेक साथ थे और संघ की रक्षा के लिए सैनिकों का पूरा प्रबन्ध था।

मार्ग के जिन मन्दिरों के दर्शन और धर्म प्रभावना करता हुआ संघ शत्रुञ्जय के समीप आया। गिरिराज को दूर से दर्शन होने मात्र पर माणिक मोतियों से बधाया, तलहटी आने पर खूब महोत्सव हुआ और वैशाख शुक्ला २ को संघ ने श्री शत्रुञ्जय तीर्थधिराज की यात्रा कर अपने को कृत कृत्य माना।

Aho ! Shrutgyanam

इस संघ का वर्णन जसराज भाटने निनाणी में किया है

दे० मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ

इन दोनों संघवियों के विषय में ओसवाल जाति के इतिहास में लिखा है कि

राजाराम गिडीया

(पृ० ६५३)" गडिया परिवार में सेठ राजा रामजी गडिया जोधपुर में बहुत नामी साहुकार हुए। इन्होंने संवत् १८७२ में मोरखां को चिट्ठा चुकाने के समय महाराजा मानसिंहजी को बहुत बडी इमदाद दी थी। तथा आपने शत्रुञ्जय का विशाल संघ भी निकलवाया था।"

पत्र में इनको जोधपुर निवासी और स्तवन में फलौधी निवासी लिखा है जिसका कारण यह जान पड़ता है कि इनका मूल निवास फलौधी था और व्यापार आदि जोधपुर में था। और पीछे अधिकांश वहीं रहने लगे। मंडोवर-जोधपुर में आपने नवीन पार्श्व जिनालय भी बनाया है और उसकी प्रतिष्ठा भी उपाध्यायजी के हाथ से ही सम्वत् १८६७ माघव ९ को कराई थी। यह उन्हीं के रचित स्तवन से स्पष्ट है। सम्वत् १८६८ के वैशाख शुक्ला को जोधपुर में उपाध्यायजी ने प्रतिष्ठा कराई थी वह भी सम्भवतः इन्हीं के निर्मित जिनालय की होगी। यथा स्मरण इन्होंने गिरनार के पगत्थिये भी बनवाये थे जिसका शिलालेख वहां रास्ते में लगा हुआ है।

संघवी तिलोकचन्दजी लूणीया

आपके विषय में ओसवाल जाति के इतिहास में लिखा है कि–

Aho ! Shrutgyanam

(पृ० ३३४) "सेठ तिलोकचन्दजी ने अजमेर से शत्रुञ्जय का संघ निकाला। यह संघ हजारों श्रावक, सैंकड़ों साधु-साध्वियों तथा फौज पल्टन इत्यादि से सुशोभित था। इस संघ के निकालने में आपने हजारों-लाखों रुपये खर्च किये थे। उस समय शत्रुञ्जयजी के पहाड़ पर अगार-शाह पीर का बहुत उपद्रव था जिससे शत्रुञ्जय की यात्रा बन्द हो गई थी। आपने ही सबसे पहले इस यात्रा को पुनः चालू किया। इसके स्मारक में आज भी उनके लूणीया वंशज इस पीर के नाम की एक सफेद चादर चढ़ाते हैं। सेठ तिलोकचन्दजी लूणीया के हिम्मतरामजी तथा सुखरामजी नामक २ पुत्र हुये। इनमें सेठ हिम्मतरामजी, चांदमलजी, तथा जेठमलजी नामक ३ पुत्र हुये। इन बन्धुओं में, सेठ चांदमलजी अपने काका सुखरामजी के नाम पर दत्तक गये। सेठ चांदमलजी लूणीया के पुत्र दीवान बहादुर सेठ थानमलजी लूणीया थे।"

विद्यादान—

आपके शिष्य प्रशिष्य तो आपके पास पढ़ते ही थे पर अन्य शाखा के यति गण भी आपके तत्वाधान में अध्ययन कर विद्वान हुये थे। जिनमें से सुमतिवर्द्धन व उमेदचन्द विशेष उल्लेखनीय हैं—

सुमति वर्द्धन—

आप जैन तत्वज्ञान के विशिष्ट ज्ञाता थे। आपकी रचनाएं निम्नलिखित हैं—

१. समरादित्य चरित्र, संवत् १८७४ माघ सुदि १३, जयमेरु नगरे।

Aho ! Shrutgyanam

२. उत्तमकुमार चरित्र।

३. नवतत्व स्वरूप यंत्र।

४. कर्म ग्रन्थ यंत्र।

५. चैत्यवंदन भाष्य यंत्र

६. जीव विचार यंत्र।

७. दंडक यंत्र।

८. संघयणी यंत्र।

६. क्षेत्र समास यंत्र।

१०. नवकार मंत्र।

इनके शिष्य चारित्र सागर ने क्षमाकल्याणजी रचित साधु विधि प्रकाश का भाषानुवाद संवत् १८६६ में नागोर में बनाया।

(उपाध्याय क्षमाकल्याणजी समरादित्य चरित्र की अपूर्ण रचना कर स्वर्ग सिधारे अतः आपने उक्त ग्रंथ को संवत् १८७४ माघ शुक्ला ३ को पूर्ण किया)

उमेदचन्द–

श्री जिनभक्ति सूरि शाखा के रामचन्दजी के आप शिष्य थे। आपने भी उपाध्यायजी के पास विद्याध्यन किया था अतः अपने ग्रन्थ में विद्यागुरू रूप से उनकी प्रशंसा की है। आपके रचित ग्रंथ द्वय और एक स्तवन प्राप्त हैं–

Aho ! Shrutgyanam

१. प्रश्नोत्तर सार शतक संवत् १८८४ (?), जयपुर।

२. दीवाली व्याख्यान, संवत् १८६६ ज्येष्ठ शुक्ला १३, अजीमगंज।

३. सम्मेत शिखर स्तवन, गा० १० संवत् १८७६ माघ बदि ७।

स्वर्गवास—

संवत् १८६८ में आपको वृद्धावस्था के कारण शारीरिक अस्वस्थता का विशेषतः अनुभव होने लगा, इस संवत् के चैत्र शुक्ला ८ को कृष्णगढ़ से बीकानेर की आर्या खुस्याल श्री को पत्र में लिखा है, कि—"शरीर की शिथिलता है। राजाराम ने प्रतिष्ठार्थ बुलाया है।" फिर वैशाख वदि १४ जोधपुर से उन्हीं को पत्र दिया है उसमें लिखा है कि "वैशाख बदि १ को पिछले पहर विहार कर अजमेर, मेड़ता, बडलू होते हुए १२ (द्वादशी) को यहां आये हैं, सुदि १२ को प्रतिष्ठा है। ज्येष्ठ तक यहां रह फिर बीकानेर आने का परणाम है, गोडों में बहुत दर्द है। शारीरिक शिथिलता (बहुत) है" इत्यादि।

संवत् १८६९ में आप बीकानेर पधार गये थे। सवत् १८६९ में आपको हरस रोग को बहुत अशाता उत्पन्न हुई। पर आपको शारीरक महत्व नहीं था। अत औषधादि उपचार विशेष नहीं किया करते और शरीर के ऐसी अस्वस्थना (वेदना) पर भी नित्य भांडासरजी नेमिनाथजी के मन्दिर (दूर होने पर भी) दर्शनार्थ जाया करते थे। इसके सम्बन्ध लिये संवत् १८७१ के कार्तिक कृष्णा ३ को देशनोक से पं० ज्ञानै ने पत्र दिया है उसमैं लिखा है—

Aho ! Shrutgyanam

"आपके हरस को तकलीफ असाता घणी सुणी सो दुखी भया। सरीर का जतन मूल करावो नहीं सो ठीक नहीं, **बगसी रामजी** बठै है उनां पासे जतन करावसी। सरीर वृद्ध है आप भांडासरजी नेमिनाथजी पधारा सो भली न छै। चोत्रोसढा, आदिसरजी प्रमुख देहरा सोइ नेमिनाथ है, आप उतनो खेचल न करावसो।" इत्यादि

संवत् १८७३ के श्रावण कृष्णा ६ को आपने जैसलमेर ज्ञानानंदादि को पत्र दिया था उसमें लिखते हैं—

"हमारे फोडा-फुन्सी की अशाता बहुत रहती है. मुकीम ! भीखणदास हर्षोपशमन की पुड़िया देते हे अब लेहु नहीं जाता है। अब हरस की साता है पुडी २१ ली, फोडों की कुछ कसर है सो (ठीक) हुय जासी" इत्यादि । मिति भाद्रव कृष्ण ५ को उपरोक्त स्थान और मुनियों को दिये पत्र में—

"हरस का लेहु बंध हुआ को दिन १०-१२ हुए, फोडा-फुन्सी २/३ रहा है सो मिट जासी। पिड को दरद तथा दमको आ जा (जो ?) र तो सागी तरै है लेहु बहुत गया। सरीर सुस्त है, व्याख्यान उत्तराध्ययन १४ वां अध्ययन बांचें है, समरादित्य चरित्र पाना ८५ भया, चोथे भव के १ पानो बाकी है" इत्यादि ।

इन पत्रों से आपकी शारीरिक परिस्थिति पर काफी प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार शारीरिक अस्वस्थता वश सं० १८७३ के पौष कृष्णा १४ मंगलवार को बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। दादाजी के स्थान में आपकी चरण पादुकायें और श्रीमंधर स्वामी मंदिर में आपकी मूर्ति है। जिनके लेख हमारे

Aho ! Shrutgyanam

Aho ! Shrutgyanam

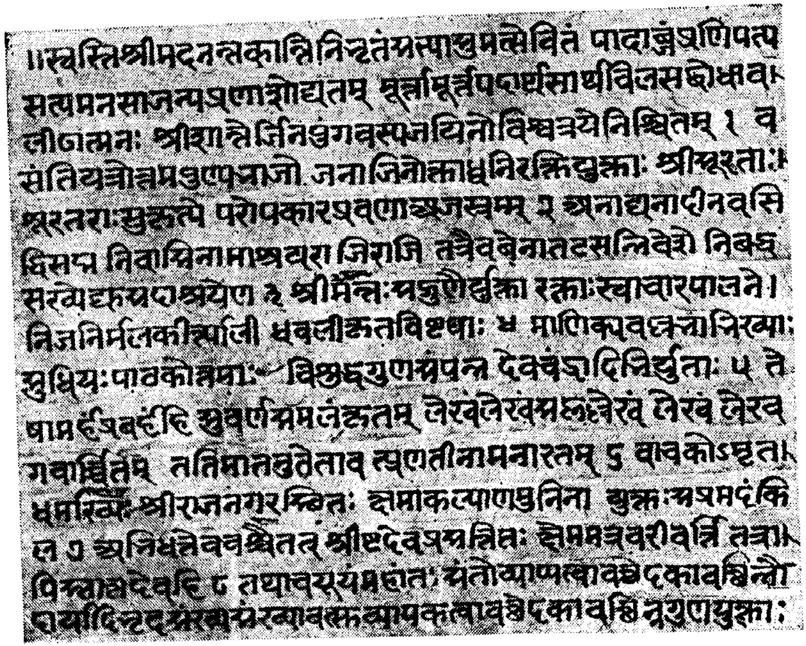

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी का स्वहस्तलिखित पत्र

Aho ! Shrutgyanam

बीकानेर जैन लेख संग्रह के लेखांक ११८२, २०२१ में छप चुके हैं। आपकी एक सुन्दर मूर्ति सुगनजी के उपासरे में भी है।

चित्र—

आपके कई तत्कालीन चित्र भी प्राप्त हैं।

१. बृहत् ज्ञान भंडार में समुदाय-सह—इसका ब्लाक "तर्क-संग्रह-फक्किका" में छपवा दिया है।

२. दिल्ली से आपके रचित "सुमतिनाथ स्तवन" पुस्तक में बहुत वर्ष पूर्व रंगीन चित्र छपा था जिसका छोटा ब्लाक हमारे "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" में छापा गया है।

३. नवपद यंत्र व क्षान्तिरत्न के साथ आपका एक चित्र प्राप्त है जिसमें से आपके चित्र का ब्लाक 'सूक्तरत्नावली' ग्रन्थ में छप चुका है।

४. तरुण वय का एक चित्र मुनि मंगलसागर जी से देखने को मिला है।

हस्ताक्षर—

आपकी लिखी हुई अनेकों प्रतियां बीकानेर व जैसलमेर आदि में प्राप्त हैं। जैसलमेर के अमृत-धर्म-स्मृति-शाला का लेख भी आपके हस्ताक्षरों पर खुदा हुआ है।

आपके लिखित कई पत्र भी हमारे संग्रह एवं ज्ञान-भंडार में हैं। उनमें से एक पत्र का ब्लाक इस ग्रंथ में दिया जा रहा है।

प्रतिष्ठा लेख—

आपने कई मंदिर, मूर्तियों, यंत्रों आदि की प्रतिष्ठा की थी

Aho ! Shrutgyanam

जिनके लेख नाहरजी के 'जैसलमेर जैन लेख संग्रह' व हमारे "बीकानेर जैन लेख संग्रह" आदि में छप चुके हैं। कई अप्रकाशित भी हैं।

उपाश्रय—

बीकानेर में आपने एक उपाश्रय व ज्ञान भंडार स्थापित किया जो अभी सुगनजी के उपासरे के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें आपके नाम से क्षमाकल्याण ज्ञान-भंडार भी है।

श्रीसिद्धचक्राय नमः श्रीपुंडरीकादिगौतमगणधरेभ्यो नमः "श्रीबृहत्खरतरगणाधीश्वर--भट्टारक--श्रीजिनभक्ति सूरिशिष्य प्रीतसागर गणिशिष्य वाचनाचार्य संविग्न श्रीमदमृतधर्मगणि शिष्योपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणगणिनामुपदेशात् श्री संघेन पुण्यार्थे, श्री बीकानेर नगरे इयं पौषधशाला कारिता संवत् १८५८। इस पोषधशाला मांहे शुद्ध समाचारी धारक संवेगी साधु साध्वी श्रावक श्राविका धर्म ध्यान करे और कोई उजर करण पावे नहीं सही ।२।। लिखितं उपाध्याय श्रीक्षमाकल्याण गणिभिः संवत् १८६१ मिती मार्गशीर्ष सुदि ३ दिने संघ-समक्षम् ।।

उपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणगणि स्वनिश्रा को पुस्तक भंडार स्थापन कीयो उसकी विगति लिखै है—

"ए ग्यान भंडार कौ पुस्तक कोई चोर लेवे अथवा बेचे सो देवगुरु धर्म कौ विराधक होय भवोभव महादुःखी होय।"

क्षमाकल्याणजी के प्रशिष्य महिमाभक्ति जी का पुस्तक संग्रह काफी अच्छा था, जो बड़े उपाश्रय के बृहद् ज्ञान भंडार में सुरक्षित है।

Aho ! Shrutgyanam

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी के सम्बन्ध में अष्टक और एक परलोकगतानां गुरूणां स्तवः नामक रचना हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है। इनके अतिरिक्त कुछ फुटकर पद्य भी मिले हैं जिन्हें नीचे दे दिया जा रहा है।

अथान्य पंडित कृत गुरुजी महाराज के काव्य—

क्षमाकल्याणार्हाः प्रवरगुणवंतश्शमधरा-
स्सदाचारा धारास्सकलशुभ राव वृततु च ॥
वरोपाध्यायास्सजिजनवचनपूतास्यकमला ।
विरागार्हाः पूज्याः कुमतिमतमेघौघपवनाः ॥१॥

श्रीपूज्यपादकमलाय भुवि **क्षमादिः**।
कल्याणनामललिताय सुवंदनालिः ॥
छंदो विधायि मथुरेश कृताऽर्थवेत्रे ।
स्तात्ते जनप्रियकराय नृपार्चिताय ॥१॥

(वैदेशिक-द्विज-कवि मथुरानाथ-कृतं पद्यमिदम्—)

वानी मैं अमृत श्रवै, मत खंचन करै और ।
देखे **क्षमाकल्याण** जू, सब पंडित सिर मौर ॥१॥

(नागोर वास्तव्य भंडारी फतेहचन्दजी कृत दोहा।)

शिष्य परम्परा—

बीकानेर के बृहद् ज्ञान भण्डार में आपके गुरु और शिष्य परम्परा की विस्तृत नामावली वाला पत्र प्राप्त है। उससे यह ज्ञात होता है कि क्षमाकल्याणजी के ४ शिष्य थे। (१) केसरीचन्द

Aho ! Shrutgyanam

(कल्याणविजय) (२) विजयचन्द (विवेकविजय) (३) विनयचन्द (विद्यानन्दन) (४) धर्मानन्द (धर्मविशाल)। इनमें से कल्याण-विजय के शिष्य गुणानन्द (गोविन्द) हुये जिनके शिष्य मोतीचन्द (महिमाभक्ति) और उनके शिष्य शिवचन्द (सत्यसोम) और मुकनचन्द हुये। मुकनचन्दजी का शिष्य जयकरण अभी विद्यमान है।

दूसरे शिष्य विवेकविजय के शिष्य ज्ञानानन्द (ज्ञानचन्द) हुये। उनके शिष्य मयाचन्द (मेरुधर्म) और ठाकुरसी (दयाराज) हुये। इनमें से मयाचन्द के शिष्य लक्ष्मण (लाभराज) और नन्दराम (नयसुन्दर) हुये तथा ठाकुरसी के शिष्य का नाम सिरदारा था।

धर्मानन्दजी के शिष्य सुगनजी (सुमतिविशाल) हुये जिनके रचित अनेक पूजायें और चौवीसी आदि प्राप्त हैं। उपरोक्त परम्परा यति समाज को ही समझनी चाहिये।

खरतरगच्छ में जो अभी साधु-साध्वी समुदाय है उनमें क्षमाकल्याणजी की परम्परा के ही साधु-साध्वी अधिक हैं। साधु परम्परा सम्बन्धी 'सुख-चरित्र' आदि ग्रंथों द्वारा विशेष जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

Aho ! Shrutgyanam

भूमिका

विश्व में जड़ और चेतन ये दो ही प्रमुख पदार्थ हैं। अर्थात् सारी सृष्टि जड़ और चेतनमय है। जीव चैतन्य-स्वरूप है और पुद्गल आदि जड़ पदार्थ हैं। जीव का लक्षण है-'ज्ञान'। प्रत्येक आत्मा में थोड़ा या बहुत ज्ञान है ही। ज्ञान का विकास प्रथमतः इन्द्रियों एवं बुद्धि आदि से संबंधित है अतः एकेन्द्रिय आदि जीवों का ज्ञान बहुत ही सीमित होता है और मनुष्य में ही ज्ञान का अधिकाधिक विकास हो सकता है। मन-पर्यव-ज्ञान और कैवल्य-ज्ञान मनुष्य के सिवाय अन्य किसी प्राणी को नहीं हो सकता। कैवल्यज्ञान ही ज्ञान की परिपूर्णता है।

जहां तक मनुष्य को पूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता वहां तक जिज्ञासायें और सन्देह बने रहते हैं। समय-समय पर स्वतः या दूसरे किसी से कुछ जानकर या सुनकर मानव मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उठते हैं। उनमें से कईयों का समाधान तो स्वतः हो जाता है पर कई प्रश्नों का समाधान दूसरे अनुभवी एवं ज्ञानी पुरुषों से भी प्राप्त हो सकता है। स्वयं ज्ञानी पुरुष भी अनेक बार दूसरों के मन में उठने वाले प्रश्नों को स्वतः उठाकर उनका समाधान कर दिया करते हैं।

प्रश्नोत्तर शैली द्वारा ज्ञान के विकास की प्रणाली बहुत प्राचीन है। प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि इस

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्नोत्तर शैली से जन साधारण को बहुत लाभ हुआ है। बौद्धिक विकास के लिये प्रश्नों का उत्पन्न होना और उनके उत्तरों को प्राप्त करना बहुत ही आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। प्राचीन जैनागमों में से भगवती सूत्र में तो गणधर गौतम आदि ने भगवान महावीर से समय-समय पर अनेक प्रकार के प्रश्न किये और भगवान महावीर ने उन प्रश्नों का उत्तर देकर प्रश्नकर्ता के मन का समाधान किया। अर्थात् प्रश्नोत्तर शैली में ही भगवती सूत्र की रचना हुई है। इसी तरह और भी अनेक ग्रन्थों में इस शैली को अपनाया गया है। जहां तक संस्कृत में स्वतन्त्र प्रश्नोत्तर-ग्रन्थ के रचे जाने का सवाल है मेरी जानकारी में १२ वीं शती में नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि के शिष्य हरिश्चन्द्र गणि ने 'प्रश्न-पद्धति' नामक ग्रन्थ बनाया है वही संस्कृत भाषा में सबसे पहला प्रश्नोत्तर-ग्रन्थ है। मूल ग्रन्थ पहले प्रकाशित हो चुका था। उसका गुजराती अनुवाद भी आ० विजयमहेन्द्रसूरि का किया हुआ अहमदाबाद से प्रकाशित हो चुका है।

उपरोक्त 'प्रश्न-पद्धति' में ६९ प्रश्नों के उत्तर हैं। इनमें से कई तो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। प्रश्न नं० ३० और ७० मांडुक के निवासी देवसी दोशी और चन्द्रावती के निवासी पोरवाड़ सागर-चन्द्र नामक श्रावकों के पूछे हुये हैं। इस प्रश्नोत्तर-ग्रन्थ में गीतार्थ पद्धति नामक ग्रन्थ की ३ गाथायें उद्धृत हैं, ग्रन्थ अभी तक कहीं देखने में नहीं आया है। प्रश्न नं० ७० के उत्तर में हरिश्चन्द्र गणि ने अपनी बनाई हुई "संसारदावा' स्तुति की टीका का उल्लेख किया है वह भी अब प्राप्त नहीं है। प्रश्न नं० २८ के उत्तर में 'वसुदेवहिन्डी' के वीरचरित्र अधिकार का उल्लेख है शायद वह भी अब अप्राप्त है। इस तरह प्रश्नोत्तर ग्रन्थों में कई अलभ्य ग्रन्थों के उल्लेख व उद्धरण प्राप्त हो जाते हैं।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न-पद्धति के बाद तो अनेक प्रश्नोत्तर शैली के ग्रन्थ रचे गये और उनके द्वारा जिज्ञासुओं के प्रश्नों का समाधान होने के साथ-साथ अन्य अनेक व्यक्तियों की भी ज्ञान वृद्धि हुई। प्रस्तुत क्षमाकल्याणजी रचित प्रश्नोत्तर-सार्धशतक ग्रन्थ भी इस परम्परा का महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

प्रश्नोत्तर-सार्धशतक में १५१ प्रश्नों का उत्तर दिया गया है। इसके रचयिता क्षमाकल्याणजी अपने समय के बहुश्रुत और गीतार्थ विद्वान थे। समय-समय पर उनको अनेक यति और श्रावकादि प्रश्न करते रहते थे। दूर-दूर से भी पत्र द्वारा उन्हें प्रश्न पूछे जाते रहते थे और वे उन सबका सप्रमाण उत्तर देते हुये समाधान किया करते थे। हमारे संग्रह में और बीकानेर के बृहद् ज्ञान भण्डार में ऐसे कई पत्र एवं प्रतियां प्राप्त हैं। प्रस्तुत प्रश्नोत्तर-सार्धशतक में उठाये हुये प्रश्न, किसने और कब किये इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस ग्रन्थ की रचना का उद्देश्य जैसा कि रचयिता ने अन्त में स्वयं स्पष्ट किया है कि अपनी स्मृति के लिये इस ग्रन्थ की रचना की गई है। ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है, पूर्वार्द्ध में ७५ और उत्तरार्द्ध में ७६ प्रश्नोत्तर हैं। अन्तिम प्रशस्ति से विदित होता है कि इसकी रचना जैसलमेर में प्रारम्भ हुई, फिर कुछ बीकानेर में रचा गया और पूर्ण जैसलमेर में ही हुआ। संवत् १८५१ के जेठ सुदी ५ को यादव (भाटी) नरेश मूलराज के राज्यकाल में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ।

प्रस्तुत ग्रन्थ को सर्व प्रथम पत्राकार रूप में संवत् १९७३ काती सुदी ५ को बम्बई के निर्णय सागर प्रेस में छपवाकर सूरत निवासी फकीरचन्द घेलाभाई ने प्रकाशित किया। खरतरगच्छ के आचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी के शिष्य मुनि सुखसागरजी ने इसका संशोधन किया है।

Aho ! Shrutgyanam

इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद श्री विजय महेन्द्र सूरिजी ने सं० २०१४ माघ सुदि ५ पाटड़ी में पूर्ण किया और वह संवत् २०१५ श्री वर्द्धमान सत्य नीति हर्ष सूरि ग्रन्थ माला, अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ। उसकी भूमिका में प्रस्तुत ग्रन्थ और उसके रचयिता के संबंध में लिखा है–कि "इस ग्रन्थ में आगम, प्रकरण तत्वज्ञान, और अनुष्ठान गत अनेकविध रहस्य प्रश्नोत्तर के रूप में उपस्थित किये गये हैं। ऐसे प्रश्नोत्तर खूब चिन्तनशील और धर्मग्रंथों का गम्भीर अभ्यासी ही उपस्थित कर सकता है। इस ग्रंथ के रचयिता महामहोपाध्याय क्षमाकल्याणगणि उनके ग्रंथों के आधार से आगम, प्रकरण, और तत्वज्ञान के गम्भीर अभ्यासी होने के साथ ही सतत् चिन्तनशील महापुरुष ज्ञात हैं। इस ग्रंथ में उन्होंने आगम, तथा अन्यानेक (करीब ६०) ग्रंथों के प्रमाण एवं उदाहरण देने के साथ अपना अनुभव भी समावेशित कर दिया है। इस ग्रन्थ के कई प्रश्न तो ऐसे हैं कि उनका उत्तर देने में बड़े एवं अच्छे विद्वान भी विचार में पड़ सकते हैं। कई प्रश्नों का समाधान तो वास्तव में ही आज के जिज्ञासुओं के लिए भी बहुत उपयोगी एव आवश्यक है।"

प्रश्नोत्तर सार्धशतक मूल ग्रंथ तो संस्कृत में रचा गया है, पर इसका राजस्थानी भाषा में सारांश भी क्षमाकल्याणजी ने स्वयं ही लिखा है। "प्रश्नोत्तर सार्धशतक भाषा" के नाम से उस सार या बीजक की रचना सम्वत् १८५३ के बैशाख बदि १२ बुधवार आर्या खुस्याल श्री के लिए बीकानेर में की गई है। इसकी हस्तलिखित प्रतियां बीकानेर अहमदाबाद आदि के ज्ञान भण्डारों में प्राप्त हैं। उसकी भाषा और शैली का परिचय कराने के लिए आदि और अन्त का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है।

Aho ! Shrutgyanam

अथ प्रश्नोत्तर सार्धशतक नौ बीजक लिखीयै छै—

(१) पहलै बोलै–तीर्थंकर देव समवसरण में देशना अवसरैं पाद पीठ ऊपर चरण राखी बैसे, हाथ दोनु जोग मुद्रायें राखै, आचार्य पण प्रायैं इन मुद्रायैं करीने व्याख्यान करै। भगवान मुखैं मुहपत्ती न राखैं, आचार्य राखैं, इत्तरो विशेष छै। ए अधिकार 'चैत्य वन्दन बृहद् भाष्य' में कह्यौ छै।१।

(२) दूजैं बोलैं–भगवान देशनां प्रारंभतां चतुर्विध संघ रूप तीर्थ ने 'नमो तित्थस्स' इण वचने नमस्कार करी देशनां देवैं। ए अधिकार 'आवश्यक निर्युक्ति' प्रमुख में तथा 'चैत्य वन्दन बृहद् भाष्य' में कह्यौ छै।२।

(३) तीजै बोलैं भगवान दीक्षा लेतां सिद्ध भगवान ने नमस्कार करै। ए अधिकार 'आचारांग सूत्रैं दूजै श्रुत स्कन्धे छठे अध्ययनै छै।३।।

अन्त—

तथा निश्चय नय मतें शैलेसी ने चरम समयें जीवनें धर्म नी प्राप्ति हुवै तेह थी पूठलां समयां मांहे सम्यक्त्वादिक छै तेह सर्व धर्म नौं साधन थीज जाणेवौ। ईत्थं एवं भूत रूप निश्चय नय छैं। धर्म संग्रहणी शास्त्र में कह्यो छै।१५१।

इति श्री वाचनाचार्य श्री मद्अमृत धर्म गणि विनेय वाचक क्षमा कल्याण गणि विनिर्मित प्रश्नोत्तर सार्धशतकस्य सूचीनाम् भाषाया मुत्तरार्धम्।

Aho ! Shrutgyanam

श्लोक—निष्पन्नमानन्दमयैर्जिनाद्यैः समाग्रिमैः शुद्ध पदैरवक्रम् ।
ह्रींकार दीप्रंश्रित सर्वशक्रं श्री सिद्धचक्रं शरण ममास्तु ।

दोहा—सय अठार तेपन समै, वदि वैशाख सुमास ।
बुधवार संपूरन रच्यौ, बीकानेर सुवास ।।१।

आर्या उत्तम धर्म रुचि, पुत्री सम सुविनीत ।
नाम खुस्याल श्री निमित्त, यह कीनौं धरि चीत ।।२।।

भणसाली संघजी वधू, मोतू नाम उदार।
ताकौ पुन आग्रह भयौ, जैसलमेर मझार ।।३।।

इति वाचक क्षमा कल्याणगणि कृत संक्षिप्त भाषामय प्रश्नोत्तर सार्धशतकम् ।

लेखकपाठकयो ।। श्रीरस्तु श्री ।।

(पत्र १९. महिमा भक्ति भण्डार बन्डल नं० ५७ प्रति नं० १०१० से उपरोक्त विवरण दिया गया है)

इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करना आर्यारत्न श्री विचक्षण श्री जी को आवश्यक प्रतीत हुआ और हिन्दी अनुवाद उन्हीं के प्रयत्न से प्रकाशित हो रहा है। आशा है जिज्ञासुओं को इससे काफी लाभ होगा। पूज्या साध्वी जी और प्रकाशन सहायक व्यक्तियों का यह प्रयत्न बहुत ही उपयोगी और सराहनीय है।

बीकानेर

२२-१०-६५ — अगरचन्द नाहटा

Aho ! Shrutgyanam

ॐ

श्री अर्हन्नमः

मङ्गलाचरण

श्री सर्वज्ञं नत्वा, स्मृत्वा, पञ्चम गणेशितुर्वाचः ।
प्रश्नोत्तरसार्द्धशतं, वक्ष्ये सिद्धान्तसम्बद्धम् ।। १ ।।

प्राचीनेषु प्रायः शतकादिषु सन्ति केऽपि ये नार्थाः ।
सद्यः स्वपरस्मृतये, संगृह्यन्तेऽत्र ते लेशात् ।। २ ।।

श्री सर्वज्ञ भगवान् को नमस्कार कर एवं पञ्चम गणधर श्री सुधर्मा स्वामी की वाणी का स्मरण करते हुए, सिद्धान्तों से सम्बन्ध रखने वाले "प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक" नामक ग्रन्थ की रचना करता हूँ।

प्रायः समय सुन्दर उपाध्याय विरचित विशेष शतक, समाचारी शतक, विशेष संग्रह आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों में जिन अर्थों का संग्रह नहीं किया गया है, उनका संग्रह संक्षेप में इस उद्देश्य से किया गया है कि जिससे तत्काल ही वे सैद्धान्तिक विषय (अर्थ) अपने एवं अन्य व्यक्तियों की स्मृति में रहें।

इस शुभ भावना से पाठक प्रवर श्री क्षमाकल्याण जी महाराज ने मङ्गलाचरण पूर्वक ग्रन्थ रचना का कारण बतलाया है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रसन्नाः सन्तु गुरवो, बुद्धिं दिशतु भारती।
येन सम्यक् प्रजायेत, प्रयासः सफलो मम ॥

सद्‌गुरुदेव मुझ पर प्रसन्न रहें! सरस्वती देवी मुझे बुद्धि प्रदान करे, जिससे मेरा यह शुभ प्रयत्न भली प्रकार सफल हो!

प्रश्नावली

प्रश्नः—१. समवसरण स्थित भगवान् किस आसन से विराजमान होकर देशना देते हैं? पद्मासन से अथवा अन्य आसन से?

उत्तर :— इस विषय में कई आचार्यों का कहना है कि चैत्य-गृह (जिन मन्दिर) में जिनेश्वर भगवान् के आसन का जो स्वरूप है, उसी आसन से देशना देते हैं। किन्तु यह कथन तो लोक-व्यवहार की दृष्टि से कहा गया प्रतीत होता है। निश्चयात्मक रूप से तो भगवान् पाद-पीठ पर चरण स्थापित कर, सिंहासन पर विराजमान होने के पश्चात् योग मुद्रा से हाथ धारण कर धर्म देशना करते हैं। इसी कारण से भगवान् के प्रतिरूप के समान होने से आचार्यगण भी प्रायः इसी मुद्रा से व्याख्यान देते हैं। केवल इनमें यह विशेषता रहती है कि ये मुखवस्त्रिका धारण करते हैं।

इस सम्बन्ध में "चैत्य वन्दन महाभाष्य" में भी कहा है कि :—

जं पुण भणंति केई, ओसरणे जिणसरूवमेयं तु।
जणववहारो एसो परमत्थो, एरिसो एत्थ ॥५३॥

Aho ! Shrutgyanam

सिंहासणे निसन्नो, पाए ठविउण पाय पीढंमि ।
कर धरिय जोग मुद्दो, जिणनाहो देसणं कुणइ ॥५४॥
तेणं चिय सूरिवरा, कुणंति वक्खाण मेय मुद्दाए ।
जं ते जिणपडिरूवा, धरंतिमुह पोत्तियं नवरं ॥५५॥

इस प्रमाण से समवसरण में भगवान के आसन की विवेचना की गई है ॥ १ ॥

प्रश्न—२. भगवान् धर्मदेशना के प्रारम्भ में किसको प्रणाम करते हैं ?

उत्तर :— साधु, साध्वी, श्रावक एवं श्राविका के चतुर्विध संघ रूप तीर्थ को "नमो तित्थस्स" यह कह कर प्रणाम करते हैं ॥ २ ॥

प्रश्न :–३. भगवान् दीक्षाग्रहण करते समय किसको नमस्कार करते हैं ?

उत्तर :— भगवान् दीक्षा ग्रहण करते समय सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करते हैं ! उस समय उनके लिये यही योग्य होता है । आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के छठे अध्याय में कहा भी है :—

तओणं से समणे भगवं महावीरे पंच मुट्ठियं ।
लोयं करेत्ता सिद्धाणं नमोक्कारं करेइ इत्यादि ॥

उसके पश्चात् वे श्रमण भगवान् महावीर पञ्चमुष्टि लोच करके सिद्धों को नमस्कार करते हैं ॥ ३ ॥

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न :-४. महावीर भगवान् की प्रथम देशना में किसी को भी प्रतिबोध नहीं हुआ तो क्या उस समय वहाँ चार निकाय के देवता ही आये थे या मनुष्यादि भी ?

उत्तर :— श्री कल्पवृत्ति, स्थानाङ्गवृत्ति एवं प्रवचन सारोद्धार की वृहद् वृत्ति के प्रामाणिक अभिप्राय के आधार पर महावीर भगवान् की प्रथम देशना में देवताओं के अतिरिक्त मनुष्य एवं तिर्यञ्च भी थे।

तद्वृत्ति पाठ में इस का उल्लेख इस प्रकार है :—

"दशाश्चर्यद्वारे, श्रूयते हि भगवतः श्री वर्द्धमान स्वामिनो जृम्भिकग्रामाद्बहिः समुत्पन्न निस्सपत्न—केवला-लोकस्य तत्काल समागत संख्याऽतीत सुर विरचित चारु समवरणस्य भूरि भक्ति कुतूहलाकुलित मिलिताऽपरिमिता-ऽमरनर तिरश्चां स्वस्वभाषानुसारिणा महाध्वनिना धर्म-कथां कुर्वाणस्यापि न केनचिद् विरतिः प्रतिपन्ना केवलं स्थिति परिपालनायैव धर्मकथाऽभूदित्यादि... ।

—"भगवान् वर्धमान स्वामी को जृम्भिका ग्राम के बाहर असाधारण, अद्वितीय एवं लोकोत्तर केवल ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न हुआ। उस समय आये हुए असंख्य देवों ने सुन्दर समव-सरण की रचना की। ऐसे अवसर पर अत्यन्त भक्ति एवं कुतूहल के साथ मिले हुए अपरिमित देवों, मनुष्यों तथा तिर्यञ्चों ने अपनी अपनी भाषा का अनुसरण करने वाली गम्भीर ध्वनि से धर्म कथा सुनी, परन्तु उस देशना से किसी ने भी विरति प्राप्त नहीं की। केवल स्थिति आचार का पालन करने के लिये ही वह धर्म देशना हुई थी।

Aho ! Shrutgyanam

इसी प्रकार श्री अभयदेवसूरि कृत स्थानाङ्गसूत्र की टीका में भी कहा है।

"श्री हरिभद्र सूरिकृताऽऽवश्यक वृहद्वृत्त्यभिप्रायेण नु तदा देवा एवाजग्मुर्नतु मनुष्यादयस्तथा च संक्षेप-तस्तत्पाठः—

भगवतो ज्ञानरत्नोत्पत्ति समनन्तरमेव देवाश्चतुर्विधा उपागता आसन् तत्र प्रव्रज्यादि प्रतिपत्ता न कश्चिद्विद्यते, इति भगवान् विज्ञाय विशिष्ट धर्म कथनाय न प्रवृत्तवान्। इत्यादि यावत् ततो ज्ञानोत्पत्तिस्थाने मुहूर्त्तमात्रं देवपूजां जीतमिति' कृत्वाऽनुभूय देशनामात्रं कृत्वा असंख्य कोटि परिवृतो रात्रौ एव विहृत्य द्वादश योजनान्यतिक्रम्याऽपापा-पुर्याः समीपे महसेन वनं प्राप्त इत्यादिः।

—"श्री हरिभद्र सूरि कृत आवश्यक सूत्र की वृहद् टीका के आधार पर तो उस समय भगवान के समीप देवता ही आये थे मनुष्यादि नहीं। इस सम्बन्ध में संक्षिप्त पाठ इस प्रकार है कि भगवान को केवल ज्ञान होने के पश्चात् तत्काल ही चार प्रकार के देव ही आये थे। उनमें दीक्षादि व्रत ग्रहण करने वाला कोई नहीं है, ऐसा जानकर भगवान् ने विशिष्ट धर्मोपदेश नहीं दिया। इसके पश्चात् ज्ञानोत्पत्ति के स्थान पर एक मुहूर्त्त मात्र "देवपूजां जीतमिति" समवसरण की रचना यह देवों की पूजा है, ऐसा कहकर एवं अनुभव कर असंख्य देवों से परिवृत्त भगवान् रात्रि में ही बारह योजन का विहार करके अपापा नगरी के निकट महसेन वन में पधारे।

Aho ! Shrutgyanam

श्री मद् आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुत स्कन्ध के छठे अध्ययन में भी इसी प्रकार का पाठ उपलब्ध होता है :—

"तओणं भगवं महावीरे, उत्पन्न नाण दंसणधरे० पुव्वं देवाणं धम्ममाइक्खइ तओ पच्छा मणुस्साणं तओणं० गोयमाईणं समणाणं-- इत्यादि ।

—"तत्पश्चात उत्पन्न ज्ञान दर्शन को धारण करने वाले श्रमण भगवान् महावीर ने प्रथम देवताओं को पश्चात् मानवों को एवं उसके पश्चात् गौतम आदि मुनिराजों को धर्मोपदेश प्रदान किया।"

इसका वास्तविक रहस्य क्या है, यह तो बहुश्रुत अथवा केवली भगवान् ही जाने ?

शङ्का—यदि भगवान् की प्रथम देशना में देवता ही आये थे तो इसमें आश्चर्य जैसी क्या बात है ? क्यों कि मनुष्यादि के अभाव में विरति कौन ग्रहण कर सकता है ?

समाधान—भगवान् की देशना में केवल देवों का ही आगमन तो आश्चर्यजनक ही है। इसलिये कि देवों में भी मिथ्यात्व की विरति एवं सम्यक्त्व की प्राप्ति तो होती ही है। उस समय तो वह भी नहीं हुई अतः आश्चर्य होना उचित है। इसके सम्बन्ध में आवश्यक सूत्र की बृहद् टीका में कहा है कि भगवान के धर्म देशना देने पर मनुष्य, सर्व विरति, देश विरति, सम्यक्त्व, सामयिक, श्रुतसामयिक, में से किसी भी विरति को ग्रहण करते हैं। तिर्यञ्च सर्व विरति को छोड़कर सम्यक्त्व सामयिक एवं श्रुतसामयिक को ग्रहण करते हैं। यदि मनुष्य अथवा तिर्यञ्चों

Aho ! Shrutgyanam

में से कोई भी विरति को ग्रहण करने वाला नहीं हो तो देवताओं में अवश्य ही सम्यक्त्व के ग्रहण करने वाले होते हैं।"

इस प्रकार वीर प्रभु की प्रथम देशना में मनुष्यादि के आगमन एवं अनागमन पर विचार जानना चाहिये।

प्रश्न :-५. समवसरण में भगवान् को वन्दन करने के लिये आये हुए देवों के वाहन तीसरे गढ़ की भूमि से संलग्न रहते हैं अथवा असंलग्न ?

उत्तर :— समवसरण में देवों के वाहन तीसरे गढ़ की भूमि से संलग्न नहीं रहते ऐसा पाठ श्री भगवती सूत्र के तृतीय शतक के प्रथम उद्देश की वृत्ति में तामलीतापस के अधिकार में आया है :—

"समवसरणे देवयानानि, भूमावलग्नानि स्युरित्यादि।"

प्रश्न :-६. समवसरण में केवली, भगवान्, तीर्थङ्कर को तीन प्रदक्षिणा करके "नमो तीर्थाय" ऐसा कहकर बैठते हैं। अतः यहाँ तीर्थ शब्द से चतुर्विध-संघ का बोध होता है अथवा प्रथम गणधर भगवान का ?

उत्तर :— यहाँ तीर्थ-शब्द से प्रथम गणधर भगवान् का ही बोध करना चाहिये, चतुर्विध संघ का नहीं। आचार्य श्री मलयगिरि सूरजी ने भी बृहत्कल्पवृत्ति में इस प्रकार कहा है। जिसका उल्लेख आगे आने वाले प्रश्नोत्तरों में किया गया है। इस प्रमाण से केवली भगवान् भी वचन से गणधर भगवान् को नमस्कार करते हैं।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न :-७. समवसरण में गणधर एवं केवली मुनि आदि किस क्रम से बैठते हैं एवं इनमें से कौन खड़े हो कर सुनते हैं।

उत्तर :— बृहत्कल्प के प्रथम खण्ड में समवसरण के अधिकार में विस्तार पूर्वक इसका विवेचन किया गया है। जो इस प्रकार है :—

आयाहिण पुव्वमुहो, तिदिसिं पडिरूवगा उ देवकया।
जेट्ठगणी अण्णो वा, दाहिणपुव्वे अदूरंमि॥

—भगवान् चैत्यवृक्ष की प्रदक्षिणा करके पूर्वाभिमुख हो, सिंहासन पर विराजते हैं एवं जिन दिशाओं में भगवान् का मुख नहीं होता है, उन तीनों दिशाओं में देवताओं द्वारा रचे गये तीर्थ-करों के आकार को धारण करने वाले, सिंहासन, चामर, छत्र, एवं धर्मचक्रादि से अलंकृत प्रतिबिम्ब होते हैं। इससे चारों दिशाओं के लोगों को यह ज्ञान होता है भगवान् हमारे ही सामने विराजमान होकर धर्मोपदेश प्रदान कर रहे हैं। भगवान् के चरणों के समीप एक गणि एवं प्रथम गणधर ही होते हैं। वे गणधर पूर्वद्वार से प्रवेशकर भगवान को वन्दना करके अग्नि-कोण में भगवान् के समीप ही बैठते हैं एवं अन्य गणधर भी इसी प्रकार वन्दन कर प्रथम गणधर के पास अथवा पीछे बैठते हैं।

शङ्का—त्रिभुवन गुरु भगवान् तीर्थङ्कर का रूप तो तीनों भुवनों में सर्वाधिक विशिष्ट अतिशायी होता है तो देवों द्वारा निर्मित प्रतिबिम्बों की प्रभु के रूप के साथ समानता होती है या असमानता ?

समाधान— इसके सम्बन्ध में यह प्रमाण है :—

Aho ! Shrutgyanam

जे ते देवेहिं कया तिदिसिं पडिरूवगा जिणवरस्स ।
तेसिं पि तप्पभावा तयाणुरूवं हवइ रूवं ॥

—जिन तीनों दिशाओं में देव रचित भगवान् जिनेश्वर देव के प्रतिबिम्ब स्थापित हैं उनका रूप भी तीर्थङ्कर देव के प्रभाव से तदनुरूप ही हो जाता है ।

भगवान् के समवसरण में जो जिस प्रकार बैठते हैं वह क्रम गाथाओं के आधार पर कहा जाता है ।

गाथा—तित्थाइ से स संजय देवी वेमाणियाण समणीओ ।
भवणवइ वाणवंतर—जोइसियाण च देवीओ ॥

—तीर्थ अर्थात् गणधर के बैठने के बाद अतिशय ज्ञानी साधु बैठते हैं । इसके पश्चात वैमानिक देवों की देवियां, बाद में साध्वियां एवं इसके पश्चात भवनपति, व्यन्तर एवं ज्योतिषी देवों की देवियां बैठती हैं । इसी प्रसङ्ग को और भी स्पष्ट इस प्रकार किया गया है :—

केवलिणो तिउणं जिणं तित्थपणामंच मग्गतो तस्स ।
मणमादी विणमंता वयंति सट्ठाण सट्ठाणं ॥

—केवली पूर्वद्वार से प्रवेश करके जिनेश्वर देव की तीन प्रदक्षिणा कर "नमस्तीर्थाय" इस वचन से तीर्थ को प्रणाम करते हुए प्रथम गणधार रूपी तीर्थ के एवं अन्य गणधरों के पीछे अग्निकोण के जाकर बैठते हैं उनके पश्चात् मनःपर्याय-ज्ञानी तथा आदि शब्द से अवधिज्ञानी, चतुर्दशपूर्वी, दशपूर्वी,

Aho ! Shrutgyanam

नवपूर्वी एवं आमर्ष औषध्यादि विविध लब्धि सम्पन्न मुनिगण पूर्व दिशा के द्वार से प्रवेश कर त्रिप्रदक्षिणा के साथ यथाक्रम, नमस्तीर्थाय, नमो गणधरेभ्यः, नमः केवलिभ्यः इन शब्दों के साथ नमस्कार करके केवलियों के पीछे बैठते हैं। शेष मुनिगण भी पूर्वदिशा के द्वार से समवसरण में प्रवेश करके त्रिप्रदक्षिणा भगवान को वन्दन कर "नमस्तीर्थाय, नमोगणभृद्भ्यः, नमः केवलिभ्यः, नमोऽतिशय ज्ञानिभ्यः" ऐसा कहते हुए अतिशय धारी मुनियों के पीछे बैठते हैं। इसी प्रकार मनः पर्याय ज्ञानी आदि मुनिगण नमस्कार करते हुए अपने अपने स्थान पर चले जाते हैं।

इसके पश्चात् वैमानिक देवों की देवियां पूर्वद्वार से प्रवेशकर भगवान को त्रिप्रदक्षिणा पूर्वक "नमःतीर्थाय, नमः सर्वसाधुभ्यः" ऐसा कहती हुई अनुक्रम से वन्दन करके सामान्य साधुओं के पीछे खड़ी हो जाती हैं, बैठती नहीं। साध्वियां भी पूर्वद्वार से प्रवेश कर तीर्थंकर को प्रदक्षिणा पूर्वक प्रणाम करती हुई तीर्थ एवं साधुओं को नमस्कार करके वैमानिक देवियों के पीछे खड़ी हो जाती हैं, बैठती नहीं। भवनपति की देवियां, ज्योतिष्क देवियां एवं व्यन्तर देवियां दक्षिण दिशा से प्रवेश कर तीर्थंकरादिकों को नमस्कार करती हुई नैऋत्य कोण में यथानुक्रम खड़ी हो जाती हैं।

भवणवई जोइसिया बोद्धव्वा वाणमन्तर सुराय।
वेमाणिया य मणुया पयाहिणं जं च निस्साए॥

—भवनपति, ज्योतिष्क, वानव्यन्तरादि देव भगवान् को वन्दन कर वायव्यकोण में पीछे खड़े रहते हैं। वैमानिक देव, मनुष्य एवं

Aho ! Shrutgyanam

मनुष्य स्त्रियाँ प्रदक्षिणा पूर्वक तीर्थङ्करादिकों को नमस्कार करके ईशान्य कोण में यथानुक्रम से खड़ी रहती हैं।

"जं च निस्साए त्तिय परिवारो"

—जो देव अथवा मनुष्य जिसके परिवार का होता है वह उसी के समीप खड़ा रहता है। इसके सम्बन्ध में आवश्यक सूत्र की टीका में भी कहा है, परन्तु उसमें इतना पाठ विशेष है :—

"अत्र च मूल टीकाकारेण भवनपति ज्योतिष्क-व्यन्तर देवीनां भवनपति ज्योतिष्क—व्यन्तर—वैमानिक देवानां मनुष्याणां मनुष्य स्त्रीणां च स्थानं निषीदनं वा स्पष्टाक्षरै-र्नोक्तं स्थान मात्रमेव प्रतिपादितम् ॥"

इस प्रसङ्ग में मूल टीकाकार ने भवनपति, ज्योतिष्क, एवं व्यन्तर, देवों की देवियों के लिये, तथा भवनपति, ज्योतिष्क, व्यन्तर एवं वैमानिक देवों और मनुष्यों तथा मनुष्यस्त्रियों के लिये खड़ा रहना या बैठना ऐसा स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कहा है, केवल स्थान मात्र का उल्लेख किया गया है।

पूर्वाचार्यों के उपदेशों से लिखी गई पट्टिकाओं एवं चित्रों के देखने से यह मालूम होता है कि सभी देवियाँ बैठती नहीं हैं, खड़ी रहती हैं एवं देव, मनुष्य तथा स्त्रियाँ बैठती हैं।

श्री आचाराङ्ग सूत्र की वृत्ति के छठे अध्ययन के प्रथम उद्देश्य में भी यह अधिकार संक्षिप्त में इस प्रकार है :—

"उत्थिता द्रव्यतो भावतश्च तत्र द्रव्यतः शरीरेण भावतो ज्ञानादिभिः तत्र स्त्रियः समवसरणस्था उभयथा—

Aho ! Shrutgyanam

प्युत्थिताः शृण्वन्ति पुरुषास्तु द्रव्यतो भाज्या भावोत्थितानां तु धर्ममावेदयत्युत्तिष्ठासूनां च देवानां तिरश्चां च येऽपि कौतुकादिना शृण्वन्ति तेभ्योऽप्याचष्टे, इत्यादि ।"

—उठना दो प्रकार से होता है, १ द्रव्य से तथा २ भाव से। द्रव्य से उठना शरीर के द्वारा होता है तथा भाव से उठना ज्ञानादि से युक्त होने पर होता है। समवसरण में स्त्रियाँ दोनों ही प्रकार से उठकर धर्म सुनती हैं।

पुरुषों के लिये यह बताया गया है कि वे द्रव्य से उठें या न उठें परन्तु भाव से अवश्य उठे होने चाहिये। ऐसे भावोत्थित पुरुषों को ही भगवान् धर्मोपदेश सुनाते हैं। परन्तु धर्म सुनने के लिये खड़े रहने की इच्छा रखने वाले देवों और तिर्यञ्चों को तथा जो कौतुकवश सुनते हैं, उनको भी भगवान् धर्मोपदेश सुनाते हैं, जिससे ये जीव भी सुनते सुनते कभी भाव से उठ सकते हैं।

प्रश्न :–८. समवसरण में द्वितीय पौरुषी के अन्तर्गत जब भगवान् देवछन्दक में चले जाते हैं तब कौन किस स्थान पर बैठकर धर्मोपदेश देता है ?

उत्तर :— प्रथम गणधर अथवा अन्य गणधर राजा के द्वारा लाये गये सिंहासन पर या भगवान के पाद पीठ पर विराजमान हो धर्मोपदेश देते हैं। जैसा कि बृहत्कल्प वृत्ति के प्रथम खण्ड में कहा है :—

"इत्थं बलौ प्रक्षिप्ते भगवानुत्थाय प्रथमप्रकारान्तरादुत्तर द्वारेण निर्गत्य पूर्वस्यां दिशि स्फटिकमये देवछन्दके

Aho ! Shrutgyanam

यथासुखं समाधिना व्यवतिष्ठते। अथोपरि तीर्थमिति द्वारं–भगवत्युत्थिते उपरि द्वितीय पौरुष्यां तीर्थं प्रथम-गणधरोऽपरो वा धर्ममाचष्टे।"

—"इस प्रकार बलि डालने के पश्चात् भगवान् उठ करके प्रथमगढ़ के उत्तर दिशा के द्वार से निकलकर पूर्व दिशा में स्थित स्फटिक मणिमय देव छन्दक में सुख समाधि पूर्वक विराजमान होते हैं। भगवान् के उठ जाने के पश्चात् दूसरी पौरुषी में ज्येष्ठ गणधर अथवा दूसरे गणधर धर्मोपदेश देते हैं।

शङ्का—भगवान् उपदेश क्यों नहीं देते? क्या गणधर के उपदेश देने में कुछ गुण हैं?

समाधान—गणधर के उपदेशों में कुछ गुण होते हैं, वे इस प्रकार हैं:—

"खेय विणोओ सीसगुणादीवणा पच्चओ उभयओ वि।
सीसायरियकमो वि य गणहर कहणे गुणा होंति॥

भगवान का परिश्रम दूर हो, शिष्यों के गुण भी प्रकाश में आवें, श्रोताओं में गुरु-शिष्य दोनों के प्रति श्रद्धा-विश्वास उत्पन्न हो, आचार्य एवं शिष्य का क्रम भी बना रहे। इस दृष्टि से गणधर महाराज के द्वारा दिये गये धर्मोपदेश में कई गुण होते है।

शङ्का—वे गणधर महाराज कहाँ बैठकर धर्मोपदेश देते हैं?

Aho ! Shrutgyanam

समाधान—

राओवणीय सींहासणो वनिविट्टो व पायपीढं मि ।
जिट्टो अन्नयरो वा गणहारि कहइ बीयाए ॥

—राजाओं के द्वारा लाये गये सिंहासन पर अथवा उसके अभाव में भगवान के पाद पीठ पर बैठकर मुख्य अथवा अन्य गणधर दूसरी पौरुषी में धर्मदेशना देते हैं ।

प्रश्न :–९. समवसरण ।में भगवान के सन्मुख अल्प ऋद्धि वाले देव एवं मनुष्य महर्द्धिक देव तथा मनुष्यों का प्रणामादि से सत्कार करते हैं या नहीं ?

उत्तर :— समवसरण में अल्पर्द्धि वाले देव तथा मनुष्य महर्द्धिक देवों एवं मनुष्यों का प्रणामादि से सत्कार करते हैं । यदि वे नहीं करते हैं तो आज्ञा भंग का दोष प्रसंग आता है ।

इस के सम्बन्ध में वृहत्कल्प भाष्य एवं आवश्यकसूत्र को वृहद्-वृत्ति में इस प्रकार कहा है :—

ए'तं महड्ढियं पणिवयंति, ठियमवि वयंति पणमंता ।
ण वि जंतणा ण विकहा ण परोप्पर मच्छरो ण भयं ॥

—अल्प ऋद्धि वाले देव भगवान के समवसरण में चाहे पूर्व से ही बैठे हों, फिर भी वे बाद में आये हुए महर्द्धिक देवों को प्रणाम करते हैं तथा महर्द्धिक देव यदि पूर्व स्थित हों तो भी जो अल्प ऋद्धि वाले बाद में आते हैं वे पूर्वस्थित महर्द्धिक देव यदि पूर्व स्थित हों तो भी जो अल्प ऋद्धि वाले बाद में आते हैं वे पूर्वस्थित महर्द्धिक देवों को प्रणाम करते हुए पुनः अपने स्थान पर जाते हैं ।

Aho ! Shrutgyanam

इसी प्रकार का आदर सत्कार मय सद्व्यवहार अल्पऋद्धि वाले विवेकी मनुष्यों को जिन मन्दिर एवं उपाश्रय में महर्द्धिक मनुष्यों के साथ करना चाहिये। क्यों कि जैनधर्म का मूल विनय है। अन्यथा जो विनय नही करता है तो जिस प्रकार गृहस्थ जोवन में रहते हुए एक बार विद्वानों की सभा में आर्यरक्षित सूरिकी अज्ञता प्रगट हुई उसो प्रकार अविनयवश उसकी अज्ञानता दिखाई देती है।

इस सम्बन्ध में विशेष आवश्यकवृति में उल्लेख किया गया है। पौषध विधि प्रकरण की टीका में तो वृहच्चैत्य वन्दन के अधिकार में यहां तक लिखा है कि चैत्यवन्दन के लिये आये हुए गुरुओं को भो नमस्कार करें। योगशास्त्र की टीका में तो "विस्तार विधिना चैत्ये सांधुवन्दनाधिकारी ज्ञातव्य :- ऐसा कहा है। इसी प्रकार सिद्धान्त में भी कहा है कि श्री कृष्ण वासुदेव श्री नेमिनाथ स्वामो के समक्ष- "सव्वेसाहू वार सावत्त वंदरणेरण वंदत्ति" समस्त साधुओं को द्वादशावर्त वन्दन करते हैं। इसी प्रकार चैत्य वन्दन भाष्य में खमासमरण देकर- "जावंति के वि साहू" इत्यादि गाथा बोलने का कहा है इसलिये जिन मन्दिर में साधु आदि को वन्दन करना सर्वथा उचित है। इसलिये अपने आपको पण्डित मानने वाले जो कोई आधुनिक जिन मन्दिर में साधु वन्दन का निषेध करते है, उनका कथन अयथार्थ एवं तथ्य से हीन है। शास्त्रों में तो जिनमन्दिर में कुटुम्बीजनों को जुहार (रूढ़िगत प्रणाम) करने का निषेध किया गया है।

प्रश्न-१०. वर्तमान समय में दीक्षादि के अवसर पर आचार्य आदि उठकर शिष्यों के सिर पर वासक्षेप डालते हैं

Aho ! Shrutgyanam

वह भगवान की आज्ञा के अनुसार है या आज्ञा के विरुद्ध ?

उत्तर— दीक्षा के अवसर पर वासक्षेप डालना जिनाज्ञानुसार ही है। भगवान महावीर स्वामी भी गौतम स्वामी आदि गणधरों के मस्तक पर वासक्षेप डाला था।

इस विषय में आवश्यकसूत्र की बृहत् टीका में निर्युक्ति की गाथा के व्याख्यान में इस प्रकार कहा है:—

"भगवन्मुखात् त्रिपदी श्रवणात् गणभृता मुत्पाद-व्यय ध्रौव्य युक्त सदिति प्रतीति रूप जायते अन्यथा सत्ता योगात्।"

—भगवान् के मुख से त्रिपदी श्रवण करने से गणधरों को "उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त ही सत् है" ऐसी प्रतीति होती है अन्यथा सत्ता का अयोग होता है।

इसके बाद पूर्वभव की भावित मति वाले वे गणधर द्वादशाङ्गी की रचना करते हैं। तब—

"भगवं अणुणणं करेति। सक्कोय दिव्वं वइरमयं थालं दिव्वचुण्णाणं भरेऊण सामिमुवगच्छति ताहे सामी सीहासणाओ उट्ठेत्ता पडिपुण्णं मुट्ठिं केसराण गेण्हति ताहे गौतम सामिपमुहाइक्कारस वि गणधरा ईसिं ओणया परिवाडी ए ठायंति ताहे देवा आउज्जगीत सद्दं निरुंभंति ताहे सामी पुव्वं तित्थं गोतम सामिस्सदव्वेहिं गुणेहिं पज्ज-

Aho ! Shrutgyanam

वेहिं ते अणुजाणामि त्ति भणति चुण्णाणियसे सीसेच्छुहति ततो देवा वि चुण्णवासं पुष्फवासं च उवरिं वासंति गणं च सुधम्मसामिस्स धुरे ठवित्ता अणु जाणाति एवं सामाइयस्स अत्थो भगवतो निग्गओ सुत्तं गणहरे हिं तो णिग्गतम् ॥''

—भगवान् अनुज्ञा करते हैं एवं इन्द्र दिव्यचूर्ण का वज्रमय थाल भर कर भगवान् के समीप जाते हैं। इसके बाद भगवान् सिंहासन पर से उठकर केशर मिश्रित चूर्ण की पूरी मुट्ठी भरते हैं। तब गौतम स्वामी आदि प्रमुख ग्यारह गणधर कुछ झुककर अनुक्रम से खड़े हो जाते हैं। उस समय देवता वाद्यध्वनि एवं मंगल गीतों से वातावरण को परिपूरित कर देते हैं। ऐसे अवसर पर भगवान् गौतम स्वामी को द्रव्य, गुण एवं पर्याय द्वारा तीर्थ की अनुज्ञाकर उनके मस्तक पर चूर्ण (वासक्षेप) की मुट्ठी डालते हैं। बाद में देवता उनके ऊपर चूर्ण एवं पुष्पों की वृष्टि करते हैं। और सुधर्मा स्वामी को गच्छ के प्रमुख स्थान पर स्थापित कर अनुज्ञा करते हैं।

इस प्रकार सामायिक का अर्थ भगवान् ने बताया और उसको सूत्र रूप में गणधरों ने कहा अर्थात् सूत्रों की रचना गणधरों ने की।

उपयुक्त अंश से दीक्षादि के अवसर पर शिष्यों के मस्तक पर वासक्षेप डालना जिनाज्ञानुमत ही है।

प्रश्न:- ११—केवली भगवन्तों के जो वेदनीयादिचार कर्म शेष रहते हैं, उनका स्वरूप क्या है ?

उत्तर—केवली भगवन्तों के वेदनीयादि चार कर्म जीर्ण वस्त्र के समान रहते हैं, ऐसा गुणस्थान क्रमारोह की वृत्ति

Aho ! Shrutgyanam

में कहा है। कतिपय अज्ञानी समुद्घात के पूर्व ही वेदनीयादि कर्मों को दग्धरज्जु के समान मानते हैं, यह आगम विरुद्ध होने के कारण मिथ्या है।

सूत्रकृतांग की टीका के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के अन्तर्गत आहार परिज्ञा नामक तीसरे अध्ययन में भी वोटक मत का खण्डन करने के लिये इस प्रकार कहा है—

"यदपि दग्धरज्जुस्थानिकत्वमुच्यते वेदनीयस्य, तदपि अनागमिकमयुक्तिसंगतं चागमे ह्यत्यन्तोदयः सातस्य केवलिनि अभिधीयते।

—यदि वेदनीय कर्म को दग्धरज्जु के समान कहा जाता है तो वह आगम विरुद्ध एवं युक्तिरहित है, क्योंकि आगम में केवलियों के लिये अत्यन्त सातावेदनीय का उदय कहा जाता है। विशेषकर केवली समुद्घात के बाद वेदनीय कर्म दग्धरज्जु तुल्य रहता है। जैसा कि आचारांग सूत्र की टीका के प्रथम श्रुतस्कन्धान्तर्गत उपधानश्रुत अध्ययन की पीठिका में कहा है—

तथा दहनं केवलि समुद्घात ध्यानाग्निना वेदनीयस्य भस्मसात्करणं शेषस्य च दग्धरज्जु तुल्यत्वापादनमित्यादि।

—इस प्रकार जलाना अर्थात् केवली समुद्घात में ध्यान रूपी अग्नि से वेदनीय कर्म को भस्म करना और शेष कर्मों को दग्धरज्जु के समान करना चाहिये।

इसी प्रकार इस सम्बन्ध में आवश्यक बृहद्वृत्ति के द्वितीय खण्डान्तर्गत कायोत्सर्गाधिकार में भी कहा है—

Aho ! Shrutgyanam

"दग्धरज्जुकल्पेन भवोपग्राहिणा कर्मणाल्पेनापि सता केवलिनोऽपि न मुक्तिमासादयन्ति ।"

—दग्धरज्जु के समान भवोपग्राही कर्म थोड़ा भी रहे तो केवली मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते; यहां भी अल्पपद ग्रहण करने से केवली समुद्घात के बाद का समय एवं चौदह गुण स्थान का समय ही सम्भव होता है।

इस आधार पर यह समझना चाहिये कि केवलियों के वेदनीयादिकर्म दग्धरज्जु के समान नहीं होते।

प्रश्नः—१२—एकावतारी देवों के च्यवन चिन्ह प्रगट होते है कि नहीं ?

उत्तर— एकावतारी देवों के च्यवनचिन्ह प्रगट नहीं होते। तीर्थंकर जीवों के तो और भी विशेष रूप से सातावेदनीय रहती है; जिसके सम्बन्ध मे परिशिष्ट पर्व में श्री हेमचन्द्राचार्य ने कहा है—

राजन्नेकावताराणामन्तकालेऽपि नाकिनां ।
तेजः क्षयादिच्यवनलिंगान्याविर्भवन्ति न ।।

—हे राजन ! एकावतारी देवों के अन्तकाल के समय तेज क्षय आदि च्यवन चिन्ह प्रगट नहीं होते।

श्री शीलांकाचार्य ने भी सूत्र कृतांग की टीका में केवली आहार के अधिकार में इस प्रकार कहा है—

" विपच्यमान तीर्थंकरनाम्नो देवस्य च्यवनकाले षण्मासकालं यावदत्यन्तं सातोदय एव ।।"

Aho ! Shrutgyanam

—विपच्यमान तीर्थंकर नाम कर्म वाले देव के च्यवन काल में छः मास तक अत्यन्त सातावेदनीय का उदय होता है।

प्रश्न–१३–उपशान्त मोहादि अर्थात् ११, १२, १३ गुणस्थान त्रयवर्ती साधु, प्रकृति, स्थिति, रस एवं प्रदेश इन चार प्रकार के बन्ध भेदों में किस प्रकार का कर्म बन्धन करते हैं।

उत्तर—उपर्युक्त गुणस्थान वर्तीसाधु प्रकृति से एक सातावेदनीय कर्म ही बांधते हैं। क्योंकि उनमें कषायों का अभाव रहता है एवं कषायाभाव से स्थिति का अभाव रहता है और स्थिति के अभाव से बध्यमान कर्म ही निर्जरा को प्राप्त हो जाता है। इसीप्रकार रस मे पंचानुत्तर वासी देवों के सुख से अधिक रस वाले कर्म बंधते हैं। एवं प्रदेश से स्थूल, रुक्ष, तथा शुक्लादि वर्ण वाला बहुप्रदेशी कर्म बंधता है। कहा भी है कि—

अप्पं बादर मउअं बहुं च लुक्खं च सुक्किलं चेव।
मंदं महव्वयंति य साता बहुलं च तं कम्मं॥

—स्थिति के अभाव से अल्प, परिणाम से बादर, विपाक से मृदु, प्रदेश से अधिक प्रदेशी, स्पर्श से रूखा, रंग से श्वेत लेप से मन्द अर्थात् स्थूल चूर्ण की अत्यन्त घुटी हुई चिकनी भींत पर पड़े हुए लेप के समान महाव्ययी अर्थात् एक समय में ही नष्ट होने वाले अनुत्तर देवों से भी अधिक सुख वाले कर्म बंधते हैं।

यह अधिकार आचारांग सूत्र की टीका के दूसरे अध्ययन के प्रथम उद्देश्य में आया है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न:-१४–जिस जीव ने संसार परिभ्रमण करते हुए चार बार आहारक शरीर प्राप्त कर लिया, वह जीव उसी भव में मोक्ष जाता है या नरकादि अन्यगति में भी जाता है ?

उत्तर:— चार बार आहारक शरीर प्राप्त करने वाला जीव उसी भव में मोक्ष जाता है, दूसरी गति में नहीं जाता इस सम्बन्ध में प्रज्ञापनावृत्ति के छत्तीसवें समुद्घात पद में कहा है—

"चतुः कृत्वः आहारक शरीरस्य नरक गमनाभावादिति ।"

जिसने चार बार आहारक शरीर प्राप्त कर लिया वह नरक में जाता ही नहीं है।

इसके बाद दूसरी गति में गये बिना आहारक समुद्घात के बिना अवश्य ही मोक्ष में जाता है।

इस प्रकार चार बार आहारक शरीर वाला जीव उसी भव में मोक्ष को प्राप्त होता है।

प्रश्न:-१५–कोई चारित्रवती स्त्री पंचानुत्तर विमान में जाती है या नहीं ?

उत्तर :—उस प्रकार के अध्यवसायों का सद्भाव होने से संयमवती (चारित्रवती) स्त्री पंचानुत्तर विमान में जाती है।

प्रज्ञापना वृत्ति में कर्म प्रकृति नामक २३ वें पद के अन्त में कहा है—

" मानुषी तु सप्तम नरक पृथ्वी योग्यमायुर्न बध्नाति, अनुत्तर सुरायुस्तु बध्नाति ।"

Aho ! Shrutgyanam

—मनुष्य की स्त्री (मानुषी) सप्तम नरक योग्य आयु नहीं बांधती, किन्तु अनुत्तर देव लोक का आयुष्य अवश्य बांधती है। इस सम्बन्ध में श्री उत्तराध्ययन सूत्र की टीका में नेमि एवं राजीमती के पूर्व भव का दृष्टान्त प्रसिद्ध है; जो इस प्रकार है—

"ततो ऽपराजिताभिख्ये विमाने त्रिदशो धनः यशोमत्यपि चारित्रं चरित्वा तत्र सोऽभवत्।"

इसके बाद अपराजित नाम के विमान में धन एवं यशोमति चारित्र का पालन कर देव हुए।

श्री विजयचन्द्र चरित्र में भी प्रदीप पूजा के अधिकार में कहा है—

सा सग्गाओ चविऊं एत्थ वि जम्मंमि तुहसही होइ।
तत्तो मरिउं तुब्भे सव्वट्ठे दो वि देवत्ति ॥

वह स्वर्ग से च्यव कर जन्म लेने के पश्चात् तेरी सखी होगी। बाद में तुमदोनों ही मर कर सर्वार्थ सिद्ध विमान में देव बनोगे।

प्रश्न:-१६—लोक एवं धर्म में पुरुषों की प्रधानता होने पर भी जो पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के तपश्चर्यादि प्रमुख धर्मकार्यों में विशेषरूप से सामर्थ्य एवं उद्यम दिखाई दे रहा है, इसका क्या कारण है?

उत्तर :—उस प्रकार के शुभ अध्यवसायों से प्राप्त एवं उनका सत्स्वभाव ही इसका मूल कारण है। दूसरा कोई कारण नहीं। इसीलिये आगमों में इनका (स्त्रियों का) मुक्तिगमन माना है तथा सप्तमनरक पृथ्वी गमन निषिद्ध है। ऐसा कहा है—

Aho ! Shrutgyanam

यथा–तद विहु जुत्ताजुत्ती जम्हा दीसइ अणुत्तरं विरियं ।
धम्म विसयंमि तासिं तहा तहा उज्जु मंतीणं ॥
किं बहुणा सिद्धमिणं लोए लोउत्तरे वि नारीणं ।
निय निय धम्मायरणं पुरिसेहिं तो विसेसेणं ॥
सुहभाव सालिणीओ दाण दयासील संजमधरीओ ।
सुत्तस्स पमाणत्ता लहंति मुत्तिं सुनारीओ ॥

—जिस प्रकार जिन कारणों से स्त्रियों में धर्म के विषय में अपूर्व सामर्थ्य दिखाई देता है, उसमें निम्सन्देह वे मुक्ति पद प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं। अधिक क्या कहा जाय, लोक लोकोत्तर दृष्टि से भी यह कथन सिद्ध है कि अपने अपने धर्म का आचरण करने वाले पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में शक्ति एवं उद्यम अधिक होता है। शुभभाववाली' दान, दया, शील एवं संयम को धारण करने वाली, सूत्रों को प्रमाण भूत मानने वाली ऐसी उत्तम स्त्रियां मुक्ति प्राप्त करती हैं। इस प्रकार पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों में धर्म के प्रति विशेष भाव रहता है।

प्रश्नः-१६–सेवार्त्त संघयण वाला एवं जघन्यबल वाला जीव ऊर्ध्वगति तथा अधोगति में कहां तक उत्पन्न हो सकता है।

उत्तर :—ऊँचे चार देव लोक तक तथा नीचे में द्वितीय नरक तक उत्पन्न होता है, क्योंकि ऐसे जीव के अल्पबली होने से शुभ एवं अशुभ परिणाम भी मन्द हो जाते हैं।

बृहत्कल्प की टीका में उक्त कथन का पाठ इस प्रकार है–

Aho ! Shrutgyanam

"यः सेवार्त्तसंहननी जघन्यबलो जीवस्तस्य परिणामोऽपि शुभोऽशुभो वा मन्द एव भवति, न तीव्रः, ततः शुभाशुभकर्मबन्धोऽपि तस्य स्वल्पतर एव, अतएव अस्य ऊर्ध्वगतौ कल्पचतुष्टयाद् ऊर्ध्वम्, अधोगतौ नरक–पृथ्वीद्वयाद् अध उपपातो न भवति इति प्रवचने प्रतिपादनात्, एवं कीलिकादि संहननेस्वपि भावना कार्या इति एवमन्यत्रापि दृश्यम्।"

जो जीव सेवार्त संहनन एव जघन्य बल वाला होता है तो उसके परिणाम भी शुभ अथवा अशुभ दोनों ही मन्द होते हैं तीव्र नहीं इसलिये शुभ या अशुभ कर्म का बन्ध भी थोड़ा ही होता हैं। अतएव यह जीव ऊर्ध्वगति में चार देवलोक तक तथा अधोगति में दो नरक तक जाता है अर्थात् वह उत्पन्न होता है। इस प्रकार प्रवचन में कहा है कि इसी आधार पर कीलिका आदि संघयण के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिये।

प्रश्नः-१८–शरीर त्याग (मृत्यु) के समय जीव किस किस मार्ग से निकल कर किस किस गति में जाता है ?

उत्तर :—मृत्यु समय में जीव यदि पांवों से निकलता है तो नरक में, जंघाओं से निकलने पर तिर्यग्गति में, हृदय से निकले तो मनुष्य गति में, मस्तक से निकलने पर देवगति में एवं सर्वाङ्गों से निकलने पर सिद्धि गति (मोक्ष) में जाता है।

श्री स्थानाङ्ग सूत्र के पञ्चम अध्ययन के तृतीय उद्देश्य में कहा भी है—

यथा–पंच विहे जीव निज्जाण मग्गे, पं० तं० पायेहिं,

Aho ! Shrutgyanam

उरूहिं, उरेणं सिरेणं सव्वंगेहिं ५ पाएहिं निज्जायमाणे निरयगामी, भवति, उरूहिं निज्जायमाणे तिरियगामी भवइ, उरेणं निज्जायमाणे मणुयगामी भवति सिरेणं निज्जायमाणे देवगामी भवति, सव्वंगेहिं निज्जायमाण सिद्धिगति-पज्जवसाणे, पन्नत्ते इति ।

प्रश्नः-१९-थीणद्धि निद्रा वाले जीव का बल वासुदेव से आधा कहा है, सो वह इस काल में है कि नहीं ।

उत्तर :—वह बल इस समय इस क्षेत्र में नहीं हैं क्यों कि यह बल प्रथम संघयण वाले को ही होता है। इस समय थीणद्धि निद्रा वाले का बल सामान्य लोक बल से दुगना तिगुना एवं चौगुना विशेष होता है, अधिक नहीं। इसके सम्बन्ध में निशीथचूर्णि की पीठिका में इस प्रकार कहा है—

यथा—थीणद्धीबल परूवणा कज्जइ कोव अद्धबाहा, केसवो वासुदेवो जं तस्स बलं तस्सबलाओ अद्धबलं थीणद्धिणो भवति तं च पढम संघयणिणो, इयाणिं पुण सामन्न बलादुगुणं चउगुणं वा भवति, सो एवं बलजुत्तो, मा गच्छं रूसितो विणासेज्ज तम्हा सो लिंगपारंची कायव्वो सोय साणुणं तं मन्नइ "मुय लिंगं णत्थि तुह चरणं जइ एवं गुरुणा भणितो मुक्कं तोसोहणं अह न मुयइ ता संघो समुदितो हरति, न एक्को वा एगस्स पदो सं गमिस्सति" दुट्ठो य वावादेस्सति

Aho ! Shrutgyanam

लिंगावहारगिय मगत्थं भगगइ- "अविकेवलगाहा" अवि संभावगो किं संभावयति इमं जतिवि तेगे व भवग्गहगेग केवल मुप्पाडेइ तहवि से लिंगं ग दिज्जइ तस्स वा अन्नस्स वा एस नियमो अगतिसइगो जो पुग अवहिगागातिसती सो जागइ ग पुग एयस्य थीगद्धी निद्दोदओ भवति देह से लिंगं इतरहा न देइ लिंगावहारेगं पुग कज्जमागे अयमुपदेशो, देसव- ओत्ति सावगो होहि थूलग पागादिवायादिनियत्तो पंचागुव्वयधारी तागि वा ग तरसि दंसगं गेण्ह दंसग सावगो भवाहित्ति भगितं भवइ अह एवं पि अगुगोज्जमागो नेच्छई लिंगं मोत्तुं ताहे रातो सत्तुं मोत्तुं पलायन्ति देशान्तरं गच्छन्तीत्यर्थः

—थीगद्धि बल की प्ररूपगा इस प्रकार की गई है :— वासुदेव में जो बल होता है उसमे आधा बल थीगद्धि निद्रा वाले में होता है। यह बल प्रथम संघयगा वाले का जानना चाहिये। इस काल में सामान्य मनुष्य की अपेक्षा थीगद्धिनिद्रा वाले में दुगना, तिगुना एवं चौगुना बल होता है। ऐसे बल वाला साधु, क्रुद्ध होने पर भी गच्छ का नाश न करे इसके लिये उसको 'लिंग पारंचो' करना चाहिये अर्थात् उसको प्रेमभाव से कहना चाहिये कि "तू साधुवेश छोड़ दे। तुझे चारित्र की प्राप्ति नहीं हुई है!" ऐसा कहने से यदि वह वेश छोड़ देता है तो ठीक है नहीं तो संघ को चाहिये कि वह मिलकर उसका वेश उतारले ! यदि अकेला कोई एक व्यक्ति वेश उतारने का प्रयास करता है तो वह दुष्ट साधु उसको

Aho ! Shrutgyanam

अकेला जानकर मारने की चेष्टा कर सकता है, जिससे वेश उतरवाने वाले का अनर्थ भी हो जाता है। "अपि केवल गाहा"–यहां अपि शब्द सम्भावना अर्थ में है– जैसे वह सम्भावना करता है कि यदि यह थीणद्धिनिद्रा के उदयवाला जीव उसी भव में केवल ज्ञान उपार्जित करे, ऐसा हो तो भी उसको अथवा दूसरे को साधुवेश नहीं देना चाहिये। यह नियम अतिशयरहित साधुओं के लिये है। जो साधु अवधिज्ञान के अतिशयवाला हो तो वह उस ज्ञान से यह जानले कि इसको थीणद्धि निद्रा का उदय नहीं होता। इसके बाद उसको साधु वेश दे। इसके अतिरिक्त नहीं देना चाहिये। वेश उतारने से पूर्व थीणद्धिनिद्रा वाले साधु को इस प्रकार उपदेश देना कि हे भद्र! तुझे चारित्र की प्राप्ति नहीं हुई है इसलिये तू साधु वेश छोड़कर स्थूल प्राणातिपातादि का निवृत्ति रूप पांच अणुव्रतधारी श्रावक हो, अथवा पांच अणुव्रत धारण नहीं कर सकता है तो सम्यक्त्व ग्रहणकर और दर्शन श्रावक हो जा! इस प्रकार समझाने पर भी जो वेश छोड़ने को तैयार नहीं होवे तो उसको सोया हुआ छोड़कर अन्य साधुओं को दूसरे प्रदेश (स्थान) में चले जाना चाहिये।

यही बात बृहत्कल्प में भी कही है। जीतकल्प की टीका में तो इस प्रकार लिखा है :—

"यदुदयेऽतिसंक्लिष्ट परिणामाद् दिनदृष्टमर्थमुत्थाय प्रसादयति केशवार्द्धबलश्च जायते तदनुदयेऽपि च स शेष पुरुषेभ्यस्त्रिचतुर्गुणबलो भवति इयं च प्रथम संहनिन एव भवति इत्युक्तमस्ति।"

—थीणद्धि निद्रा के उदय में अत्यन्त संक्लिष्ट परिणाम से दिन में सोचे हुए कार्य यदि रात्रि में उठ कर करे तो उस समय

Aho ! Shrutgyanam

उसमें वासुदेव से आधा बल होता है एवं उस निद्रा के अनुदय में भी उस मनुष्य में दूसरे मनुष्यों की अपेक्षा तिगुना एवं चौगुना बल होता है। यह बात प्रथम संघयण वाले को लक्ष्य करके कही गई है।

प्रश्न :-२०-स्त्यानर्द्धित्रिक के उदय में जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है या नहीं ?

उत्तर:—स्त्यानर्द्धित्रिक के उदय वाले जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है।

इसके सम्बन्ध में आचारांग सूत्र की टीका में तीसरे अध्ययन के प्रथम उद्देश में कहा है :—

यथा—"स्त्यानर्द्धित्रिकोदये सम्यक्त्वावाप्तिर्भवसिद्धिकस्यापि न भवतीति। किंच यदि स्त्यानर्द्धि निद्रावतः कदाचिदज्ञानतश्चारित्रं दत्तं भवेत्तर्हि तस्य शास्त्रोक्त विधिना लिंगं परित्याज्यं। तद् विधिस्तु प्राक्तन प्रश्नोत्तरादवसेयः। कथं तर्हि कर्मग्रन्थादौ-षष्ठं प्रमत्तगुणस्थानं यावत् स्त्यानर्द्धि त्रिकोदयः प्रतिपाद्यते, उच्यते, मतान्तरमेतदिति संभाव्यते यद्वा पूर्व प्राप्त सम्यक्त्वादेः स्त्यानर्द्धिनिद्रोदयस्तत्र प्रतिपादितोऽस्ति इति न कश्चिद् विरोधः तत्त्वं तु ज्ञानिगम्यम् ।"

—स्त्यानर्द्धित्रिक के उदय में भवसिद्धिक जीव को भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती। यदि कदाचित् थीणद्धि निद्रा वाले

Aho ! Shrutgyanam

को अनजान में चारित्र दे दिया हो तो शास्त्रोक्त प्रमाणानुसार उसका वेश उतार लेना चाहिए।

शङ्का—यदि ऐसा है तो फिर कर्मग्रन्थादि में छटे प्रमत्त गुणस्थान तक स्त्यानर्द्धित्रिक के उदय का कैसे प्रतिपादन किया गया है ?

समाधान—यह बात मतान्तर से सम्भव हो सकती है। अथवा पूर्वप्राप्त सम्यक्त्वादि जीव को स्त्यानर्द्धित्रिक निद्रा का उदय होना बताया गया है। अतः किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है। वास्तविक तत्व तो केवली भगवान् ही जाने !

प्रश्न :-२१-एक जीव को एक भव में कितने वेदों का उदय होता है ?

उत्तरः—किसी जीव को कर्म की विचित्रता से तीन वेदों का भी उदय होता है। जिस प्रकार किसी आचार्य के कपिल नामक शिष्य को उसके विचित्र कर्मों के कारण तीनों वेदों का उदय हुआ था।

कपिल नामक इस शिष्य के जीवन में उदय होने वाले तीनों वेदों का (उसके विचित्र कर्मों के साथ) विस्तार पूर्वक विवेचन निशीथ सूत्र की पीठिका में तथा बृहत्कल्प में भी किया गया है।

प्रश्न :-२२-प्रमादयुक्त सराग संयमी साधू को अल्पर्द्धिक प्रत्यनीक देव छल सकते हैं, ऐसा शास्त्रों में सुना जाता है। परन्तु यतना युक्त अप्रमादी सराग संयमी साधु को कोई छल सकता है या नहीं ?

उत्तरः—जो देव अल्पऋद्धि वाले तथा अर्धसागरोपम से कम स्थिति वाले होते हैं वे अप्रमादी यतनायुक्त साधु को

Aho ! Shrutgyanam

नहीं छल सकते,और जो अर्धसागरोपमादि स्थिति से युक्त हों, वे पूर्वभव के वैर का स्मरण होने पर यतना युक्त अप्रमादी साधु को छल भी सकते हैं, क्योंकि उनमें शक्ति का सद्भाव होता है।

इसके सम्बन्ध में निशोथचूर्णि के उन्नीसवें उद्देश में कहा है :—

यथा—"पडिसिद्ध काले सज्झायं करे तस्स इमे दोसा, अन्न-तर गाहा सराग संयतो सरागत्त णतो इंदिय विस-यादि अन्नतर प्रमादजुत्तो हवेज्ज विसेस तो महा महेसु तं पमादजुत्तं पडिणीय देवता अप्पड्ढिया खित्तादि छलणं करेज्जा, जयणा जुत्तं पुण साहुं जो अप्पड्ढितो देवो अद्धोदहीतो ऊणट्ठिती सो न सक्केति छलितुं अद्धसागरोवमट्ठितितो पुण जयणा जुत्तं पि छलेति, अत्थि से सामत्थ तं पि पुव्ववेर संबध सरणतो कोत्ति छलेज्जा इत्यादि महा महेसुत्ति इन्द्र महोत्सवादिषु इत्यर्थः ।"

इसका भावार्थ ऊपर की पंक्तियों में आ गया है।

प्रश्न :-२३-अपनी ग्यारह प्रतिमाओं को वहन करने वाला श्रावक सम्यक् प्रकार से प्रतिमा का वहन करके पुनः घर आता है या नहीं ?

उत्तर:—प्रतिमा वहन करने के पश्चात् कोई श्रावक पुनः घर भी आता है।

Aho ! Shrutgyanam

निशीथ चूर्णि के के सोलहवें उद्देश में साधु के पात्र गवेषणा के अधिकार में इसका उल्लेख इस प्रकार आता है —

समणो वासगो वा पडिमं करेउं घरं पच्छागतो तं पडिग्गहगं साधूणं दिज्ज अहाकड।"

—श्रावक प्रतिमाएँ पूर्णकरके पुनः घर आवे तो पात्र आदि उपकरण साधुओं को दे दे। इसी प्रकार का आशय वृहत्कल्प वृत्ति के द्वितीय खण्ड में तथा उपासक प्रतिमा पञ्चाशक सूत्र वृत्ति में भी कहा गया है।

प्रश्न :-२४-इसकाल में समय समय पर प्रत्येक द्रव्य में प्रत्येक समय अनन्त पर्यायों की हानि होती है, ऐसा सुना जाता है सो यह शास्त्र सम्मत है अथवा लोकोक्ति मात्र ही ?

उत्तर:—वर्तमान समय में प्रति द्रव्य प्रत्येक के आश्रित होकर समय समय पर अनन्त पर्यायों की हानि वाला होता है, यह कथन शास्त्रानुसार ही है, लोकोक्ति मात्र नहीं। इस सम्बन्ध में पंचकल्प भाष्य में कहा है : —

यथा—"भणियंच दूसमाए, गामा होहिंति तु मसाण समा।
इयखेत्त गुणाहानि, काले वि उ होति माहाणी॥
समये समये णंता, परिहायंते उ वण्ण माईया।
दव्वाइ पज्जाया, अहोरत्तं तत्तियं चेव॥
दूसम अणु भावेणं, साहू जोगा तु दुल्लभा खेत्ता।
काले वि य दुम्भक्खा, अभिक्खणं हुंति उमरा य॥

Aho ! Shrutgyanam

दूसण अणुभावेण, य परिहाणी होति ओसह बलाणं ।
तेणं मणुयाणं पि उ, आउग मेहादि परिहाणी ॥

—दुःषम काल में ग्राम–नगरादि भी श्मशान के समान हो जाते हैं। अतः क्षेत्र की हानि तथा काल में भी हानि होती है। इसी प्रकार वर्ण, गन्ध, रसादि के अनन्त पर्याय भी समय समय पर घटते हैं, अर्थात् उनकी हानि होती है, वैसे ही अहोरात्रि के पर्यायों की भी हानि होती है।

दुषम काल के प्रभाव से साधुओं के योग्य क्षेत्र मिलना दुर्लभ हो जाता है, दुष्काल एवं बार बार अन्य उपद्रव भी होते रहते हैं तथा धान्य का सत्त्व भी कम पड़ जाता है, जिससे मनुष्यों का बौद्धिक बल एवं आयु घट जाती है।

प्रत्येक वस्तु के वर्णादि पर्याय अनन्त होते हैं एवं वे अनन्त अत्यन्त महान् माने गये हैं। जिससे समय समय पर प्रत्येक वस्तु के अनन्त पर्याय कम होते हैं। परन्तु वे अनन्त अल्प होने से एवं अवसर्पिणी के समय असंख्यात होने से प्रत्येक वस्तु में प्रत्येक समय अनन्त पर्यायों का नाश होने पर भी तत्काल सभी वस्तुओं के नाश होने का प्रसंग आता ही नहीं है।

इस व्याख्या से जो ऐसा कहते हैं कि एक समय में प्रतिद्रव्य में एक एक पर्याय का नाश होता है, ऐसे अनन्त पदार्थों की अपेक्षा से अनन्त पर्याय की हानि होती है—यह भ्रम भी दूर हो जाता है। इससे अधिक इस सम्बन्ध में और विस्तृत जानकारी प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों को जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की वृत्ति आदि देखना चाहिए।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न २५:-कार्तिक सेठ और गैरिक तापस के सम्बन्ध में ऐसा कहा जाता है कि गैरिक तापस ने द्वेष वश कार्तिक सेठ की पीठ पर थाल रखकर भोजन किया, यह शास्त्र सम्मत है या नहीं

उत्तर:—यह कथन भ्रान्तिमूलक ही है, जबकि "सनत्कुमार-चक्री के पुरातन तृतीय भव में जिन धर्म नामक श्रावक की पीठ पर थाल रखकर अग्नि शर्मा नामक तापस ने भोजन किया, उससे वे दोनों शक्र एवं ऐरावण हुए" इस प्रकार सम्बन्ध साद्दश्य से भ्रम वश इस सम्बन्ध में भी किसी आधुनिक कल्प वृत्ति में उक्त कथन दिखाई देता है, परन्तु आवश्यक वृत्ति, पञ्चाशक विवरण एवं ऋषि मण्डल की वृत्ति आदि प्राचीन ग्रन्थों में ऐसा कथन नहीं मिलता है। उनमें तो यह कहा है कि कार्तिक सेठ ने राजा की आज्ञा से गैरिक तापस को अपने हाथों से भोजन कराया उससे गैरिक तापस ने द्वेष वश नाक के ऊपर तर्जनी अंगुली घुमाकर सेठ को पराजित किया। इतना ही कहा है। आवश्यक बृहद् वृत्ति का पाठ संक्षेप में इस प्रकार है।

"तो पच्छाणेण परिवेसियं सो परिवसिज्जंते अंगुलिं चालेति किहने।"

—बाद में राजा की आज्ञा से सेठ ने भोजन परोसा एवं परोसते समय तापसने नाक ऊपर तर्जनी अंगुली घुमाई।

प्रश्न २६:-देव और असुर जब परस्पर युद्ध करते हैं, उस समय उनके शस्त्र किस प्रकार के होते हैं?

Aho ! Shrutgyanam

उत्तर—देवता तो जिन-जिन तृण काष्टादिकों को स्पर्श करते हैं, वे ही उनके अचिन्त्य पुण्य प्रभाव से शस्त्र बन जाते हैं और असुरों के तो उनके नित्यप्रति के विकुर्वित ही शस्त्र होते हैं क्योंकि देवों की अपेक्षा उनका पुण्य मन्द रहता है। इससे तृणादि पदार्थ स्पर्शमात्र से शस्त्र-रूप नहीं बनते। यही बात श्री भगवती सूत्र के १८ वें शतक के अन्तर्गत सप्तम उद्देश में कही है :—

यथा–देवासुरेसु णं भंते संग्गामेसु वट्टमाणेसु किं णं तेसिं देवाणं पहरण रयणत्ताए परिणमंति, गोयमा० जण्णं ते देवा तणं वा कट्ठं वा पत्तं वा सक्करं वा परा–मुसंति तंणं तेसिं देवाणं पहरणरमणत्ताए परिणमंति, जहेव देवाणं तहेव असुरकुमाराणं नो ति णट्ठे समट्ठे असुर कुमाराणं देवाणं णिच्चं विउव्विया पहरण रयणा पण्णत्ता।

—हे भगवन्! देवों एवं असुरों का जब युद्ध होता है तब देवों के शस्त्ररत्न किस प्रकार के होते है?

हे गौतम! देव, तृण, काष्ठ, कंकर आदि किसी भी वस्तु का स्पर्श करते हैं, वे सब देवताओं के लिये शस्त्ररूप हो जाते हैं।

शङ्का—जिस प्रकार ये वस्तुए स्पर्श मात्र से देवताओं के लिये शस्त्र रूप हो जाती हैं उसी प्रकार क्या असुर कुमारों के लिये भी होती हैं?

Aho ! Shrutgyanam

समाधान---देवों के समान असुरों के लिये ये वस्तुएं स्पर्श मात्र से शस्त्ररूप नहीं बनती क्योंकि असुर कुमार सदैवसे विकुर्वित शस्त्र वाले माने गये हैं। अतः उनमें देवताओं के समान वह अचिन्त्य पुण्य प्रभाव नहीं होता जिसके फलस्वरूप उनके स्पर्श मात्र से कोई भी वस्तु शस्त्र का रूप धारण कर सके।

प्रश्न २७:–महर्द्धिक देव कितने द्वीप समुद्रों के चारों ओर प्रदक्षिणा के समान घूमकर पुनः शीघ्र आने में समर्थ होते हैं ?

उत्तर:---महर्द्धिक देव रुचक द्वीप तक चारों ओर प्रदक्षिणा के समान घूमकर पुनः आ सकते हैं। उसके बाद इसके आगे तो वे किसी एक दिशा में ही जा सकते हैं। प्रदक्षिणा नहीं दे सकते। ऐसा भगवती सूत्रके १८वें शतक के सातवें उद्देश में भी प्रमाण है :–

यथा–"देवेणं भंते महड्ढिये जाव महेसक्खे पभू लवण-समुद्दं अणुपरियट्टित्ताणं हव्वमागच्छित्तए"
हंता पभू देवेणं भंते महड्ढिए एवं धायई संडं दीवं जाव हंता पभू एवं जाव रूयगवरं दीवं जाव हंतापभूतेण परं वीती व तेजा नो चेवणं अणु परियट्टेज्जा इति वीती वतेज्जत्ति।

—हे भगवन्! महासुखी महर्द्धिक देव लवण समुद्र के चारों ओर प्रदक्षिणा देकर पुनः शीघ्र आ सकता है।

हां गौतम आ सकता है। इस प्रकार महर्द्धिक देव धातकी खण्डद्वीप तथा रुचकवर द्वीप की प्रदक्षिणा करके पुनः आ

Aho ! Shrutgyanam

सकते हैं, परन्तु उसके बाद वे किसी भी एक दिशा में ही आगे जा सकते हैं, प्रदक्षिणा नहीं दे सकते, क्योंकि उनमें उस प्रकार के प्रयोजन का अभाव रहता है। ऐसा सम्भव है।

प्रश्न २८:—लवण समुद्र के कितने प्रमाण वाले मत्स्य जम्बू द्वीप में जगती के छिद्र द्वारा प्रवेश करते हैं।

उत्तर:— नव योजन प्रमाण वाले मत्स्य ही जम्बू द्वीप में प्रवेश कर सकते हैं।

श्री समवायांग सूत्र की वृत्ति के नवमें स्थान में "नवजोयणिया मच्छा" ऐसा कहा है। इसीलिये इस प्रमाण के आधार पर नवयोजन लम्बे शरीर को धारण करने वाले मत्स्य ही जम्बू द्वीप में प्रवेश करते हैं। यद्यपि लवण समुद्र में पाँचसौ योजन लम्बे शरीर वाले मत्स्य भी होते हैं तथापि नदी के मुखों में जगती के छिद्रों के अनुपात से तो इतने ही (नवयोजन प्रमाण वाले ही) प्रवेश कर सकते हैं।

प्रश्न २९:—युगलियों को तीन पल्ल्योपम से अधिक उत्कृष्ट स्थिति अनेक शास्त्रों में सुनी जाती है, परन्तु जघन्य स्थिति भी कहीं है या नहीं ?

उत्तर:—आगम में दोनों प्रकार की स्थिति कही है। उत्कृष्ट अवगाहन वाले मनुष्य तीन गाउकी ऊँचाई वाले होते हैं। उनकी जघन्य स्थिति न्यून तीन पल्योपम को होती है और उत्कृष्ट स्थिति सम्पूर्ण तीन पल्योयम की होती है।

जीवाभिगम सूत्र में भी इसी प्रकार कहा है :—

Aho ! Shrutgyanam

यथा–उत्तरकुरु देवकुराए मणुस्साणं भंते केवइयंकालं ठिई पन्नता गोयमा० जहन्नेणं तिण्णि पलिओवमाइं पलिओवमा संखेज्ज भाग हीणाइं उक्कोसेणं तिण्णि-पलिओवमाइं ॥

—इसी प्रकार प्रज्ञापना सूत्र की टीका पचम पद में भी ऐसा ही प्रमाण है।

यथा–पल्योपमाऽसंख्येय भागश्च त्रयाणां पल्योपमाना-मसंख्येयतमो भागः।

इस प्रकार दो गाउ की उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य की दो पल्योपम की उत्कृष्ट स्थिति होती है और दो पल्योपम की असं-ख्येय भागहीन जघन्य स्थिति तथा एक गाउकी उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की और एक पल्यो पम का असंख्येय भाग हीन जघन्य स्थिति होती है।

प्रश्न ३०:–किसी भाग्यहीन पुरुष के संसर्ग से अनेक भाग्यशालियों के भाग्योदय का घात होता है कि नहीं ?

उत्तर:—भाग्यहीन पुरुष के संसर्ग से प्रायः कई भाग्य शालियों के भाग्य का हनन होता है। इस सम्बन्ध में श्री बृहत्कल्पसूत्र की टीका में कहा है कि "किसी एक आचार्य का पूरा गच्छ वस्त्र पात्र एवं शय्या आदि के प्राप्त करने में लब्धिहीन था। ऐसा होने पर उस क्षेत्र में स्वपक्ष अथवा परपक्ष से गच्छ का अपमान होता है इधर वे साधु शीतादि परिषह को सहन करने में असमर्थ होते हैं और इधर गृहस्थ भी

Aho ! Shrutgyanam

तुच्छ धर्म की श्रद्धा वाले होने से बिना मांगे वस्त्रादि नहीं देते।

साधुओं को शुद्ध उपधि की गवेषणा करनी चाहिये ऐसा भगवान् का उपदेश है, किन्तु ऐसा वैसा साधु उसको प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि वह दुर्लभ होती है। इसलिये ऐसे कार्य में लब्धिमान् अल्पबुद्धि वाले साधु को, (उत्सार कल्प) ❀ करके वस्त्रैषणाध्ययन के उद्देश्य से कल्प करना चाहिये।

उसके बाद कल्प किये हुए साधु को क्या करना चाहिये इस सम्बन्ध में कहा है :—

हिण्डउ गीय सहाओ सलद्धि, अहते हणंति सोलद्धिं
तो एक्कओ वि हिण्डइ आयारुस्सारिय सुयत्थो।

—वे लब्धिमान साधु वस्त्र पात्रादि प्राप्त करने के लिये गीतार्थ साधुओं के साथ फिरे, इतना होने पर भी यदि प्राप्त न हो एवं वे गीतार्थ साधु उनकी लब्धि का हनन करे तो लब्धिवन्त साधु अकेला भी फिर सकता है। अकेला विचरण तो किस प्रकार करे इस सम्बन्ध में आचारांग सूत्र के अन्तर्गत आये हुए वस्त्रैषणा एवं पात्रैषणा अध्ययन के अर्थ उत्सार कल्प करके थोड़ाअभ्यास करने के पश्चात् पुनः लब्धिवन्त साधु को विचरण करना चाहिये।

शङ्का—कोई भी मनुष्य किसी की लाभन्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न लब्धिको क्या नष्ट कर सकता है ?

समाधान—ऐसा कहा जाता है गीतार्थ साधु उसकी लब्धि का हननकर देते हैं।

❀ उत्सार कल्प अर्थात् उस साधु को पृथक कर देना

Aho ! Shrutgyanam

इस सम्बन्ध में एक दृष्टान्त इस प्रकार हैं :—

"एक भाग्य-हीन भिक्षुक किसी समूह के साथ मार्ग में हो गया। मार्ग में उस समूह को प्यास लगी ! संयोग-वश वर्षा के बादल जल-वृष्टि करने लगे, परन्तु जिस समूह में वह भिक्षुक था वहां वृष्टि नहीं होती थी, फिर उस समूह के दो-तीन भाग हो गये, एक समूह के पृथक-पृथक दो-तीन समूह हो गये। उन तीनों समूहों में से जिन समूहों में वह भिक्षुक नहीं था, वहाँ वृष्टि होने लगी, परन्तु उस भिक्षु पर नहीं होती थी।"

इस दृष्टान्त का सार यही है कि जिस प्रकार उस भिक्षुक ने समूह के ५०० मनुष्यों के पुण्य का हनन किया, उसी प्रकार भाग्यहीन भी कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न लब्धिवन्तों की लब्धि का हनन करते हैं। इस प्रकार भाग्यहीनों के संयोग से भाग्य शालियों के पुण्य भी नष्ट हो जाते हैं।

प्रश्न ३१:-गृहस्थ द्वारा भाव तीर्थंकरो के निमित्त बनाया हुआ आहार तथा जिनप्रतिमाओं के सम्मुख चढ़ाने के लिये बनाया हुआ पक्वान्न आदि साधुओं को कल्पना है या नहीं ?

उत्तर:—भाव तीर्थंकारों के लिये बनाये गये आहार तथा तीर्थंकरों की प्रतिमाओं के सामने चढ़ाने केलिये तैयार किये गये पक्वान्न आदि साधुओं को कल्पते हैं।

श्री बृहत्कल्प भाष्य में कहा है :—

"संवट्ट मेह पुप्फा सत्थ निमित्तं कया जइ जईणं।
न हु लब्भा पडिसिद्धुं किं पुण पडिम

Aho ! Shrutgyanam

—तीर्थंकरों के निमित्त देवता समवसरण की भूमिका में ही जिन संवर्तक पवन, मेघ एवं पुष्प आदि को करते हैं उनका साधुओं के लिये निषेध नहीं है। साधुओं का जब वहाँ खड़ा रहना कल्पता है तो फिर प्रतिमाओं के लिये तो कहना ही क्या! क्योंकि प्रतिमा तो अजीव होती है। उसके निमित्त यदि हो तो उसको तो किसी भी प्रकार निषेध नहीं हो सकता।

शङ्का—तीर्थंकरों में अथवा तीर्थंकरों की प्रतिमा के लिये जो वस्तु तैयार की गई हो वह साधुओं को किस प्रकार कल्पती है?

समाधान:—

साहंमिओ न सत्था तस्स कयं तेण कप्पइ जईणं।
जं पुण पडिमाण कयं तस्स कहा का अजीवत्ता॥

तीर्थंकर लिंग अथवा प्रवचन से सार्धमिक नहीं होते, क्यों कि लिंग से सार्धमिक वे कहलाते हैं जो रजोहरण मुखवस्त्रिका धारी होते है। ये लिंग भगवन्त के नहीं हैं। ऐसा कल्प होने से लिंग से तीर्थंकर सार्धमिक नहीं होते इसी प्रकार प्रवचन से भी साधर्मिक वे कहलाते हैं जो साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप संघ के अन्दर हों। "पवयण संघोगयरे" इस वचन से भगवान उसके प्रवर्तक होने के कारण संघ के अन्दर नहीं होते। किन्तु वे संघ के अधिपति हैं। अतएव वे प्रवचन से भी सार्धमिक नहीं हैं। इसीलिये तीर्थंकरों के लिये किया गया आहार जब साधुओं को कल्पता है तो प्रतिमा के निमित्त किये गये आहार के नहीं कल्पने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता! वह तो कल्पता ही है क्यों प्रतिमा अजीव है, और जीव को उद्देश्य मानकर यदि हो तो

Aho ! Shrutgyanam

वह आधाकर्मी होता है। क्योंकि प्रतिमाओं में जीव होता ही नहीं है।

प्रश्न ३२:—महर्द्धिक देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके गमन आगमन प्रश्न उत्तर उन्मेष (आँख खोलना) निमेष (आँख बन्द करना) संकोच, विस्तार, खड़ा रहना, विकुर्वण अर्थात् वैक्रिय रूप करना, परिचायण (मैथुनादि) क्रिया करते हैं अथवा महर्द्धिक होने से बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना ही गमनागमनादि उपर्युक्त, सभी क्रियाएं करते हैं ?

उत्तर—देव आदि समस्त संसारी जीव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके ही गमन आगमन आदि क्रियाओं को करने में समर्थ होते हैं। बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना उनके लिये किसी भी कार्य का करना नितान्त असम्भव है।

श्री भगवती सूत्र के १६ वें शतक के चौथे उद्देशक में कहा है कि—

यथा—"देवेणं भंते महिड्ढिए जाव महे सक्खे बाहिरए पोग्गले परियादित्ता पभू आगमित्तए हंता पभू देवेणं भंते महिड्ढिए एवं एतेणं अभिलावेणं गमित्तए २ एवं भासित्तए वा वागरेत्तए वा ३ ओमिसावित्तए वा निमिसावित्तए वा ४ आउंटावत्तए वा पसारेत्तए वा ५ ठाणं वासेज्ज वा निसीहियं वा चेयत्तए ६ एवं विउव्वित्तए ७ एवं परियारेत्तए ८ जाव हंता पभू ॥"

Aho ! Shrutgyanam

—"हे भगवान् महर्द्धिक तथा महासुखी देव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करके ही क्या गमन आगमन आदि क्रियाओं के करने में समर्थ होते हैं ?

हाँ, बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करने के पश्चात् ही महर्द्धिक तथा महासुखी देव जाने, आने, बोलने, उत्तर देने आदि उपर्युक्त समस्त क्रियाओं के करने में समर्थ हो सकते हैं।"

अतः यह सिद्ध है कि समस्त संसारी जीव बाह्य पुद्गलों को ग्रहण किये बिना कोई भी क्रिया नहीं कर सकते!

प्रश्न ३३:—परमाणु पुद्गल नित्य हैं या अनित्य ? इसी प्रकार दूसरे परमाणु में रहे हुए वर्ण, रस, गन्ध आदि पर्याय क्या सदा स्वभाव से ही रहते हैं या कभी उनमें विपर्यय भाव (परिवर्तन) भी होता रहता है और एक परमाणु में कितने पर्याय होते हैं ?

उत्तरः—द्रव्य से परमाणु पुद्गल नित्य एवं पर्याय से अनित्य हैं। इसीलिये परमाणु में रहे हुए वर्णादिपर्याय भी कुछ तो स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं और कुछ नवीन रूप में उत्पन्न हो जाते हैं। इस सम्बन्ध में श्री भगवती सूत्र में कहा है :—

"परमाणु पुग्गलेणं भंते ! सासए असासए वा गोयमासिए सासए सिअ असासए से केणट्ठेणं भंते वुच्चति गोयमा, दव्वट्ठयाए सासए पज्जवट्ठयाए असास ए इत्यादि ।"

Aho ! Shrutgyanam

—हे भगवन् ! परमाणु पुद्गल शाश्वत हैं या अशाश्वत ? इस प्रकार प्रश्न करने पर भगवान् ने कहा–गौतम ! परमाणु पुद्गल शाश्वत भी होते हैं अशाश्वत भी। गौतम ने पुनः प्रश्न किया भगवन् ! परमाणु पुद्गल किस कारण से शाश्वत होते हैं ? तब भगवान् ने कहा हे गौतम ! परमाणु पुद्गल द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से शाश्वत एवं पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से अशाश्वत कहलाते हैं। इसी प्रकार कुछ महानुभाव परमाणुओं के नित्यत्व से इनकेपर्याय भी नित्य मानते हैं, पर, यह उचित नहीं है। क्योंकि पञ्चम अङ्ग में स्पष्ट रूपेण इनको अनित्य कहा है। इसी प्रकार एक एक परमाणु में अनन्त पर्याय होते हैं, ऐसा पन्नवणा सूत्र के पाँचवे विशेष पद में भी कहा है, जिसकी विशेष जानकारी वहीं से प्राप्त करनी चाहिये।

प्रश्न ३४:–समस्त इन्द्रियाँ अनन्त प्रदेश की बनी हुई अंगुल के असंख्य भाग जितनी मोटो एवं असंख्य प्रदेश की अवगाहना वाली कही हैं एवं श्रोत्र (कान) चक्षु (आँख) घ्राण (नाक) इन तीनों का विस्तार अंगुली के असंख्येय भाग जितना कहा है। साथ ही जिह्वेन्द्रिय का अंगुल पृथक्त्व तथा स्पर्शेन्द्रिय का शरीर प्रमाण विस्तार माना गया है। ऐसी स्थिति में कान, आँख एवं नाक का विस्तार एक समान है अथवा एक एक से अल्प विशेष है ?

उत्तरः—"सबसे थोड़े प्रदेश में अवगाहन करने वाली चक्षु इन्द्रिय है। उससे संख्येय गुण प्रदेश में अवगाहन करने वाले श्रोत्र (कान) है: क्योंकि प्रभूत प्रदेशों में इनकी अवगाहना होती है। इससे संख्येयगुण प्रदेश घ्राणेन्द्रिय (नाक) के और इससे भी असंख्येय गुण प्रदेश में

Aho ! Shrutgyanam

अवगाहन करने वालीं जिह्वेन्द्रिय है क्योंकि इसका विस्तार अंगुल पृथक्त्व (दो से नौ अंगुली) है। इससे स्पर्शनेन्द्रिय संख्येय गुण प्रदेश में अवगाहन करने वाली है, असंख्येय गुण की अवगाहन वाली नहीं, क्योंकि इसका उत्कर्ष लाख योजन का प्रमाण है।"

इस प्रकार इस सम्बन्ध में प्रज्ञापना सूत्र के पन्द्रहवें इन्द्रिय पद के प्रथम उद्देश में कहा हैं।

अंगुल शब्द से यहाँ आत्मांगुल अर्थ लेना चाहिए तथा स्पर्शेन्द्रिय का प्रथुत्व उत्सेध अंगुल से एवं शेष इन्द्रियों का आत्मांगुल से जानना चाहिए।

प्रश्न ३५:–मनुष्य लोक में कल्पवृक्ष सचित्त हैं अथवा अचित्त ! वनस्पति विशेष हैं या पृथ्वीकायमय ? विस्रसा परिणाम से परिणत हैं या देवाधिष्ठित ?

उत्तर :—मनुष्य लोक में कल्पवृक्ष सचित्त, वनस्पति विशेष एवं युगलिकों के पुण्य समूह के उदय से स्वाभाविक ही तथा विध परिणाम से परिणत होते हैं।

यह अधिकार आचाराङ्ग वृत्ति के द्वितीय श्रुत स्कन्ध की पीठिका में तथा जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्र की वृति में वृक्षाधिकार के प्रकरण में भी आता है।

आचाराङ्ग वृत्ति पाठ :—"तत्र प्रधानाग्रं त्रिधा सचित्तमपि द्विपदादि भेदात् त्रिधैव, तत्र द्विपदेषु तीर्थङ्कर:,

Aho ! Shrutgyanam

चतुष्पदेषु सिंहः, अपदेषु कल्पवृक्षः, अचित्तं वैडूर्यादि मिश्रं तीर्थङ्कर एवालङ्कृत इति ।"

—श्रेष्ठ वस्तु तीन प्रकार की होतीं है; १ सचित्त, २ अचित्त और ३ मिश्र । इनमें द्विपदादि भेद से सचित्त तीन प्रकार के होते है :—१ द्विपद २ चतुष्पद एवं ३ अपद । द्विपदों में तीर्थङ्कर चतुपष्दों में सिंह एवं अपदों में कल्पवृक्ष उत्तम हैं । अचित में वैडूर्यमणि आदि तथा मिश्र में अलङ्कृत तीर्थङ्कर है ।

जम्बू द्वीप प्रज्ञप्ति वृत्ति पाठ :—"स्वभावतः फल-पुष्पशालिनः कल्पवृक्षाः प्रोक्ताः सन्ति तथाच तत्पाठ-लेशः मत्तंगया वि दुमगणा अणेगबहु विविह वीससा । परिणयाए मज्जविहीए उववेया फलेहिं पुन्ना विसट्टंतीत्यादि ॥"

—स्वभावतः ही कल्पवृक्ष फल पुष्पों से सुशोभित कहे गये हैं । इस सम्बन्ध में यह पाठ है कि "मतंगजादि कल्पवृक्षों के समूह अनेक प्रकार के विस्रसा परिणाम वाले होते हैं । ऐसे कल्पवृक्षों के फल परिपाक अवस्था में प्राप्त होते हुए मद्य विधि के समान पूर्णतया फूट फूटकर मद्य विधि को छोड़ते हैं ।"

इसी प्रकार योग शास्त्र के चतुर्थ प्रकाश में भी कहा है कि—"धर्म के प्रभाव से कल्पवृक्षादि इच्छित फल को देते हैं । आदि शब्द से चिन्तामणि आदि ग्रहण करना चाहिये यही स्थिति वनस्पति एवं पाषाण रूप में भी होती है । अतः जम्बू धातकी शालमली आदि तथा कुरूवृक्ष रत्नादि पृथ्वीकाय रूप एवं कल्प-

Aho ! Shrutgyanam

वृक्ष वनस्पति मय और विस्रसा परिणाम वाले जानना चाहिये देवाधिष्ठित नहीं।

प्रश्न ३६:–कुक्कुट (मुर्गा) और मयूर के मस्तक पर रही हुई शिखा सचित्त है, अचित्त है, अथवा मिश्र है ?

उत्तर :—कुक्कुट की शिखा सचित्त एवं मयूर की शिखा मिश्र है। इस सम्बन्ध में आचाराङ्ग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध की पीठिका में कहा है कि –

"तत्र चूडाया निक्षेपो नामादि षड्विधः, नाम-स्थापने क्षुण्णे, द्रव्य चूडा व्यतिरिक्ता सचित्ता कुक्कुटस्य, अचित्ता मुकुटस्य चूडामणि मिश्रा मयूरस्य, क्षेत्र चूडा लोक निष्कुटरूपा कालचूडाऽधिकमास-स्वभावा।"

–शिखा के नामादि निक्षेप छः प्रकार के हैं। इनमें नाम एवं स्थापना निक्षेप सरल हैं। अतएव द्रव्य चूडाव्यतिरिक्त में कुक्कुट की शिखा सचित्त एवं मयूर की शिखा मिश्र होती है। इसी प्रकार क्षेत्र शिखा लोक निष्कुटरूप एवं कालशिखा अधिक मास रूप होती है।

प्रश्न ३७:–असुर कुमारादि के शरीर का वर्ण एवं चिह्न आदि का स्वरूप तो संग्रहणी आदिक में स्पष्ट रूप में कहा गया है, किन्तु ज्योतिषी देवों के शरीर का वर्ण किस प्रकार का है एवं इनके मुकुटों में कौन कौन से चिह्न हैं ?

Aho ! Shrutgyanam

उत्तर :—चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र एवं तारा इन पाँच प्रकार के ज्योतिषियों में तारागण पाँच वर्ण के होते हैं शेष चन्द्रादि चारों तपे हुए सुवर्ण जैसे वर्ण वाले होते हैं ये सब विशिष्ट वस्त्र एवं अलंकारो से भूषित तथा मुकुटालङ्कृत मस्तक वाले होते हैं। केवल इन्द्रों के मुकुटाग्र भाग में प्रभामण्ड़ल स्थानीय चन्द्र मण्डलाकार चिह्न होता है। इस प्रकार सूर्य, ग्रह, नक्षत्र एवं ताराओं के मुकुटों में भी अपने अपने मंडलों के आकार वाले चिह्न होते हैं।

इसके सम्बन्ध में तत्वार्थ भाष्य में कहा है :—

"मुकुटेषु शिरोमुकुटोपगूहिभिः प्रभामण्डलकल्पै रुज्ज्वलैः यथा स्वचिह्नैः विराजमाना द्युतिमन्तो ज्योतिष्का भवन्तीति।"

—मुकुटों में, मुकुटों के अग्रभाग के समीप होने वाले प्रभामण्डल के समान यथोचित अपने चिह्नों से विराजमान कान्तिवाले ज्योतिषी देव होते हैं।

संग्रहणी वृत्ति में "शिरोमुकुटोपगूहिभिः" इस पद का "मुकुटाग्र वर्तिभिः" ऐसा अर्थ किया है।

इसी प्रकार जीवाभिगमवृत्ति में भी कहा है :—

चन्द्रस्य मुकुटे चन्द्रमण्डलं लाञ्छनं स्वनामाङ्क प्रकटितं एवं सूर्यादेरपि।"

Aho ! Shrutgyanam

—चन्द्र के मुकुट में अपने नामको प्रकट करने वाला चन्द्र मण्डल का चिह्न होता हैं। इसी प्रकार सूर्यादिके भी।

यही बात प्रज्ञापना में भी कही है।

प्रश्न ३८:-"जोयणिग सट्ठि भागा" इत्यादि संग्रहणी की गाथा में ताराओं के विमानों को लम्बाई एवं चौड़ाई आधे कोस की तथा ऊंचाई एक कोस के चौथे भाग की कही गई है तो क्या इस प्रमाण के कम ताराओं का विमान नहीं होता है ?

उत्तर :—यहाँ जिन ताराओं के विमानों को लम्बाई चौड़ाई एवं ऊँचाई का प्रमाण कहा गया है वह तो उत्कृष्ट स्थितिवाले ताराओं का प्रमाण है। जघन्य स्थिति वाले ताराओं के विमानों का प्रमाण तो पांचसौ धनुष की लम्बाई चौड़ाई और ढ़ाई सौ धनुष की ऊँचाई का कहा गया है यही बात श्री तत्त्वार्थ भाष्य में भी कही है कि–

"सर्वोत्कृष्टायास्ताराया अर्धकोशः जघन्यायाः पंच-धनुः शतानि विष्कम्भार्धबाहल्याश्च भवन्ति।"

—सर्वोत्कृष्ट स्थिति वाले ताराओं के विमान की लम्बाई चौड़ाई आधे कोस की और जघन्य स्थिति वाले ताराओं के विमान की लम्बाई चौड़ाई पाँच सौ धनुष की तथा ऊँचाई तो दोनों की चौड़ाई से आधो जाननी चाहिये।

प्रश्न ३९:-मनुष्य क्षेत्र के बाहर रहने वाले चन्द्रादि ज्योतिषी देवों के विमानों का प्रमाण ढाई द्वीप में रहने वाले

Aho ! Shrutgyanam

चन्द्रादिदेवों कि अपेक्षा आधा प्रमाण कहा है, परन्तु उनके आयुष्य का प्रमाण कितना है ?

उत्तर :—दोनों का आयुष्य समान ही होता है लेशमात्र भी अन्तर नहीं होता। यह संग्रहणी टीका में पाँचवी गाथा की व्याख्या में इस प्रकार कहा है :—

"अशेषासंख्येय द्वीपसमुद्रवर्ति चन्द्रविमान-वासिदेवानाम् वर्षाणां लक्षेणाधिकं पल्योपमम् उत्कृष्टमायुः ।"

—समग्र असंख्यात द्वीप समुद्र में रहने वाले चन्द्र विमान देवताओं का उत्कृष्ट आयुष्य एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम है।

प्रश्न ४०:-जैसे जम्बूद्वीप और लवण समुद्र में रहने वाले चन्द्र सूर्य आदि जम्बूद्वीपवर्ती मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए फिरते हैं, वैसे ही धातकी खण्डादि द्वीप-समुद्रवर्ती चन्द्र सूर्य आदि भी क्या उसी जम्बू द्वीप वर्ती मेरु की प्रदक्षिणा करते हुए घूमते हैं अथवा अपने अपने द्वीप में रहे हुए मेरू की ?

उत्तर :—मनुष्य क्षेत्र में रहने वाले सभी चन्द्र-सूर्यादि जम्बूद्वीप-वर्ती मेरु पर्वत की ही प्रदक्षिणा देते हुए घूमते हैं, अपने अपने द्वीप के मेरु की नहीं। ऐसा संग्रहणी टीका में भी कहा है।

प्रश्न ४१:-मनुष्य क्षेत्र के बाहर रहने वाले चन्द्र सूर्य किस व्यवस्था से अवस्थित हैं ? सूची श्रेणी से या परिधि रूप से ?

Aho ! Shrutgyanam

उत्तर :—श्रीचन्द्रप्रज्ञप्ति जीवाभिगम एवं संग्रहणी सूत्र के अनुसार तो सूची श्रेणी से ही इनकी अवस्थिति सम्भव है, परिधि श्रेणी से नहीं। श्री जीवाभिगम सूत्र को टीका सूर्यसूर्यान्तर व्याख्यान में इस प्रकार पाठ है।

"एतच्चैवमन्तर परिमाणं सूची श्रेण्या प्रतिमन्तव्यं न वलयाकार श्रेण्या एवं संग्रहणी वृत्त्यादावपि बोध्यम्।"

एक सूर्य से दूसरे सूर्य का अन्तर सूची श्रेणी से ही प्रतिपादन करना चाहिये, वलयाकार श्रेणी से नहीं।

शंका :—यदि ऐसा है तो मनुष्य क्षेत्र से बाहर आठ लाख योजन प्रमाण वाले पुष्करार्ध द्वीप में चारों दिशाओं की चारों पंक्तियों में स्थित बहोत्तर चन्द्र एवं बहोत्तर सूर्य का चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र में जो अन्तर कहा है, वह कैसे घटित होता है?

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र का पाठ इस प्रकार है :—

चंदाओ सूरस्स य सूरा चंदस्स अंतरं होइ।
पन्नास सहस्साइं जोअणाणं अणूणाइं॥

सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य अंतरं दिट्ठं।
बहिया माणुस नगस्स जोयणाणं सयसहस्सं॥२॥
सूरं तरिया चंदा चंदं तरिया य दिणयरा दित्ता...

Aho ! Shrutgyanam

—चन्द्र से सूर्य का एवं सूर्य से चन्द्र का अन्तर पचास हजार योजन का होता है। एक सूर्य दूसरे सूर्य का और एक चन्द्र से दूसरे चन्द्र का अन्तर मानुष्योत्तर पर्वत के बाहर एक लाख योजन का होता है। इस प्रकार सूर्य से अन्तरित चन्द्र और चन्द्र से अन्तरित सूर्य रहते हैं। यह कैसे घटित होता है ? इसमें कोई युक्ति नहीं चरितार्थ होती। इसी प्रकार उनकी अवस्थिति अर्थात् रहने की मर्यादा भी जानना आवश्यक है, जिससे उपर्युक्त रूप में कहा गया अन्तर स्पष्ट घटित हो सके।

समाधान :—मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र और सूर्य किस प्रकार रहते हैं ? यह बात चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि में नहीं कही गई है। इनमें तो केवल अन्तर मात्र बताया गया है। अतः इस पर से यह निश्चय नहीं किया जा सकता। संग्रहणी वृत्ति आदि में भी इसी प्रकार कहा गया है एवं लोक प्रकाशकार ने भी यही कहा है :— जैसे

अनन्तर नरक्षेत्रात् सूर्य चन्द्राः कथं स्थिताः।
तदागमेषु गदितं साम्प्रतं नोपलभ्यते ॥२२॥
केवलं चन्द्र सूर्याणां यत् प्राक्कथितमन्तरं।
तदेव साम्प्रतं चन्द्रप्रज्ञप्त्यादिषु दृश्यते ॥२३॥
एषां सम्भाव्यते चन्द्रप्रज्ञप्त्याद्यनुसारतः।
सूची श्रेण्या स्थितिर्नैव श्रेण्या परिरयाख्यया ॥२४॥

—मनुष्य क्षेत्र के बाहर चन्द्र सूर्य किस प्रकार रहते हैं, यह आगमों में कहा हुआ उपलब्ध नहीं होता। केवल चन्द्र

Aho ! Shrutgyanam

और सूर्य का जो अन्तर पहिले कहा गया है, वही इस समय चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि में दिखाई देता है। चन्द्र प्रज्ञप्ति आदि सूत्रों के अनुसार इनकी स्थिति सूची श्रेणी से ही सम्भव है वलयाकार से नहीं। यह प्रमाण २४ वें सर्ग में है। इस सम्बन्ध में कुछ आचार्य इनकी स्थिति परिरय श्रेणी की मानते हैं। उनके मत को प्रतिपादित करने वाली "चउयालसयं पढमिल्लुयाए" ये दो गाथाएं हैं। इस विषय का बहुत ही विस्तार है। उस विस्तार के ज्ञान की इच्छा रखने वाले सज्जनों को संग्रहणी वृत्ति एवं लोक प्रकाश का अवलोकन करना चाहिये।

श्री हेमचन्द्रसूरिजी ने भी योग प्रकाश के चौथे प्रकाश की टीका में "परिरय श्रेणी" ऐसा अभिप्राय व्यक्त किया है। वह इस प्रकार है :—

यथाः—"मानुषोत्तराद् परतः पञ्चाशतसहस्रैः परस्परमन्तरिताः चन्द्रान्तरिताः सूर्याः सूर्यान्तरिताश्चन्द्राः मनुष्य क्षेत्रीय चन्द्रसूर्य प्रमाणात् यथोत्तरं क्षेत्रपरिधिवृद्धया संख्येया वर्धमानाः शुभलेश्याग्रह नक्षत्र तारा परिवारा घण्टाकाराः असंख्येया आस्वयंभूरमणात् लक्षयोजनान्तरिताभिः पंक्तिभिः तिष्ठन्तीति।"

—मानुषोत्तर पर्वत से पचास हजार योजन से परस्पर अन्तरित चन्द्रान्तरित सूर्य एवं सूर्यान्तरित चन्द्र मनुष्य क्षेत्रीय चन्द्र सूर्य प्रमाण से उत्तरोत्तर क्षेत्र परिधि की वृद्धि से संख्या बद्ध वृद्धि को प्राप्त हुए शुभ लेश्या ग्रह नक्षत्र एवं ताराओं के

Aho ! Shrutgyanam

परिवार वाले घंटाकार असंख्य चन्द्र सूर्य स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त लाख योजन की अन्तर वाली पंक्तियों से रहते हैं।

इस प्रकार इस सम्बन्ध में परिशिष्ट पर्व के राजगृहवर्णन में भी कहा है कि—

तत्र राजत सौवर्णैः प्रकारः कपिशीर्षकैः।
भाति चन्द्रांशुमद् बिम्बैर्मर्च्योत्तर इवाचलः॥

ऐसे इस प्रकरण में कई मत मतान्तर हैं; उनमें तत्त्व क्या है, यह तो केवली ही जाने।

प्रश्न ४२—जब भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में दिन होता है, तब महाविदेह में रात होती है और जब भरतादि में रात होती है, तब विदेह में दिन होता है। यह बात सर्वत्र प्रसिद्ध है। किन्तु श्री भगवती सूत्र में ऐसा कहा है कि जिस दिन भरतादि में वर्षा ऋतु प्रारम्भ होती है उसी दिन विदेह में भी एक समय बाद वर्षा ऋतु होती है। इस से जब भरतादि क्षेत्र में सर्वोत्कृष्ट १८ मुहूर्त्त का दिन होता है, तब महाविदेह में अठारह मुहूर्त्त रात होती है तो ऋतुभेद से आगम के साथ विरोध क्यों नहीं होता है?

उत्तर :—ऐसा कहना अनुचित है क्योंकि कर्क संक्रान्ति के प्रथम दिन पूर्व महाविदेह क्षेत्र में तीन मुहूर्त दिन शेष रहने पर भरत क्षेत्र के मनुष्य उदय होते हुए सूर्य को देखते हैं और भरत क्षेत्र में भी तीन मुहूर्त दिन शेष रहने पर पश्चिम महाविदेह के मनुष्य भी

Aho ! Shrutgyanam

उदय होते हुए सूर्य को देखते हैं। ऐसे ही पश्चिम महाविदेह में तीन मुहूर्त्त दिन शेष रहने पर ऐरावत क्षेत्र के मनुष्य उदय होते हुए सूर्य को देखते हैं। ऐरावत क्षेत्र में भी तीन मुहूर्त्त दिन शेष रहने पर पूर्व विदेह के मनुष्य उदय होते हुए सूर्य को देखते हैं। इसलिये समस्त क्षेत्रों में समान प्रमाण वाले ही दिन होते हैं। इस प्रकार जम्बू द्वीप में शीतकाल में जब सर्वोत्कृष्ट अठारह मुहूर्त की रात होती है, तब भरतादि अन्य क्षेत्रों में रात्रि के तीन मुहूर्त्त व्यतीत हो जाने पर महाविदेहादि क्षेत्रों में सूर्योदय होता है तथा वैसे ही रात्रि के तीन मुहूर्त्त शेष रहने पर सूर्यास्त होता है। इस प्रकार सर्वत्र रात्रि समान प्रमाण वाली होती है। इस दृष्टि से ग्रीष्म ऋतु में सर्वोत्कृष्ट दिन में सूर्य के सर्वाभ्यन्तर मण्डल में होने से आदि में तीन एवं अन्त में तीन इस प्रकार कुल छः मुहूर्त्त में समस्त क्षेत्रों में दिन होता है और शीत-कालीन सर्वोत्कृष्ट रात्रि में सूर्य सर्वबाह्यमण्डल में होने से आद्यन्त छ मुहूर्त्त में सर्वत्र रात्रि होती है। इसमें किसी भी प्रकार का विरोध नहीं है, जैसा कि आगम में कहा है :—

पुव्व विदेहे सेसे मुहुत्ततिगे वासरे निरक्खंति।
भरहनरा उदयंतं सूरं कक्कस्स पढमदिने ॥१॥

भरहे वि मुहुत्त तिगे सेसे पच्छिम विदेह मणुआ वि।
एरवए विअ एवं तेण दिणं सव्वओ तुल्लं ॥२॥

Aho ! Shrutgyanam

जंबुद्दीवे नयरे रयणीइ मुहुत्त तिगे अइक्कंते ।
उदये तहेव सूरो मुहुत्ततिगे सेसे अत्थमओ ॥३॥

—कर्क संक्रान्ति के प्रथम दिन पूर्व विदेह क्षेत्र में तीन मुहूर्त दिन शेष रहे तब भरत क्षेत्र के मनुष्य सूर्य को उदय होता हुआ देखते हैं। भरत क्षेत्र में भी तीन मुहूर्त दिन शेष रहने पर पश्चिम महाविदेह के मनुष्य उदय होता हुआ सूर्य देखते हैं। इस प्रकार दिन सर्वत्र समान होता है। जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में शीत ऋतु में तीन मुहूर्त रात्रि व्यतीत होने पर पश्चिम महाविदेह में सूर्योदय एवं तीन मुहूर्त रात्रि शेष रहने पर सूर्यास्त होता है।

प्रश्न ४३:—जब सौधर्मेन्द्र जिन जन्मादि महोत्सवों में यहां आते हैं, तब अपने सेनापति को आज्ञा देकर सुघोषा घण्टा बजवाते हुए अपने देवलोकवासी देवों को बुलाते हैं। यह प्रसिद्ध है, परन्तु अन्य ६३ इन्द्र किस देवता को देकर किस नाम के वादित्र को बजवाते हुए अपने स्थानवासी देवों को बुलाते हैं ?

उत्तर :—सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्म, महाशुक्र एवं प्राणतेन्द्र ये अपने-अपने सेनापति हरिणैगमेषी देव को आज्ञा देकर अपनी-अपनी सुघोषा घण्टा को बजवाते हैं। तथा ईशान, माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार और अच्युतेन्द्र ये इन्द्र अपने-अपने लघु पराक्रम नामक सेनापति देव को आज्ञा देकर अपनी-अपनी महाघोषा घंटा बजवाते हैं। ऐसे ही चमर और बलि असुरेन्द्र के द्रुम तथा महाद्रुम सेनापति हैं और इनकी ओघ-

Aho ! Shrutgyanam

स्वरा एवं महोघस्वरा नाम की दो घण्टाएँ हैं। इसी प्रकार नागेन्द्र की मेघस्वरा, सुपर्णेन्द्र की हंस-स्वरा, विद्युतकुमारेन्द्र की क्रौञ्चस्वरा, अग्नि-कुमारेन्द्र की मंजुस्वरा, दिक्कुमारेन्द्र की मंजुघोषा, उदधि कुमारेन्द्र की सुस्वरा, द्वीपकुमारेन्द्र की मधुर-स्वरा, वायुकुमारेन्द्र की नन्दिस्वरा और स्तनित कुमारेन्द्र की नन्दिघोषा नामक घण्टा है। ऐसे ही दक्षिण दिशा के धरणेन्द्रादि नव इन्द्रों के सेनापति भद्रसेन हैं और उत्तर दिशा के भूतानन्दादि नव इन्द्रों के सेनापदि दक्ष हैं। इसी प्रकार दक्षिण दिशा के सोलह व्यन्तरेन्द्रों की मंजुस्वरा नामक घंटा, एवं उत्तर दिशा के सोलह व्यन्तरेन्द्रों की मन्जुघोषा नामक घंटा है। इनके सेनापति अनियमित नाम वाले अभियोगिक देव होते हैं। ज्योतिषी के दोनों इन्द्रों की घण्टा सुस्वरा एवं सुस्वरनिर्घोषा नाम की हैं। इनके भी सेनापति अनियमित हैं।

श्री जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति उपाङ्ग के जिन जन्माधिकार में कहा है कि:—

यथा–" सोहम्मगाणं सणंकुमारगाणं बंभलोयगाणं महा-सुपक्काणं पाणयगाणं इंदाणं सुघोसा घंटा हरिणेग-मेसी पायत्ताणी आहिवई उत्तरिल्ला णिज्जाण भूमी दाहिण पुरथिमिल्लेर इक रगपव्वए ईसाणगाणं मा-हिंद लंतग सहस्सार अच्चु अगाण य इंदाणं महा-

Aho ! Shrutgyanam

घोसा घंटालहुपरक्कमो पायत्ताणि आहिवई दाहिणि-ल्लेणिज्जाणभग्गो उत्तर पुरिच्छि मिल्लेरइकरग-पव्वए इत्यादि, असुराणं ओघस्सरा घंटा णागाणं मेघस्सरा सुवण्णाणं हंसस्सरा विज्जूणं कोंचस्सरा, अग्गीणं मंजुस्सरा, दिसाणं मंजुघोसा उदहीणं सुस्सरा दीवाणं महुरस्सरा, वाऊणं णंदिस्सरा, थणि आणं नंदिघोसा इत्यादि वाणमंतराणं दाहिणाणं मंजुस्सराः उत्तराणं मंजुघोसा इत्यादि ।"

—सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक महाशुक्र एवं प्राणत इन देवलोक के इन्द्रों की सुघोषा नाम की घंटा है और हरिणैगमेषी सेनापति हैं। उत्तर दिशा के इन्द्रों के निकलने का मार्ग अग्नि-कोण स्थित रतिकर पर्वत है। ईशान, माहेन्द्र, लान्तक, सहस्रार एवं अच्युत इन देवलोक के इन्द्रों की महाघोषा नाम की घण्टा और लघु पराक्रम नामक सेनापति है। दक्षिण दिशा के इन्द्रों के निकलने का मार्ग ईशान कोण में स्थित रतिकर पर्वत है। इसी प्रकार असुरों की ओघस्वरा, नागों की मेघस्वरा, विद्युत्कुमार की कौञ्चस्वरा, अग्निकुमार की मन्जु-स्वरा, दिक्कुमार की मंजुघोषा, उदधिकुमार की सुस्वरा, वायुकुमार की नन्दिस्वरा, स्तनित कुमार की नन्दिघोषा, दक्षिण दिशा के वानव्यन्तरों की मंजुस्वरा एवं उत्तर दिशा के वानव्यन्तरों की मंजुघोषा नाम की घंटा है। कहीं कहीं ऐसा भी उल्लेख है कि चार प्रकार के देवों के चार प्रकार के पृथक् पृथक् वादित्र होते हैं। इसका प्रतिपादन करने वाली यह अदृष्टमूल गाथा है, जिसके मूल का अन्वेषण करना चाहिये।

Aho ! Shrutgyanam

सुणि ऊण संख सद्दं मिलंति भवणाय वंतरा पड ह।
जोइसिय सिंहनादं घंटा वेमाणिया देवा ॥ १

यह गाथा दिगम्बर मतोक्त है।

प्रश्न ४४:–देवों को सम्मिलित कर चौंसठ इन्द्र जिन विमानों में बैठकर यहाँ आते हैं उन विमानों के बनाने वाले देवों के क्या नाम हैं और विमान का प्रमाण कितना है तथा कितने प्रमाण वाला इन्द्र ध्वज आगे चलता है ?

उत्तर :—दश वैमानिक इन्द्रों के विमान कर्ता देवों के नाम इस प्रकार हैं:–१. पालक, २. पुष्पक, ३. सौमनस, ४. श्रीवत्स, ५. नन्दावर्त्त, ६. कामगम, ७. प्रीतिगम, ८. मनोरम, ९. विमल, १०. सर्वतोभद्र। इसी प्रकार भवनपति, व्यन्तर तथा ज्योतिषी सर्व इन्द्रों के विमान कर्ता अनियत नाम वाले स्वामी से आदेश प्राप्त करने वाले आभियोगिक देव होते हैं। दश वैमानिक इन्द्रों के विमानों की लम्बाई, चौड़ाई एक लाख योजन की तथा ऊँचाई अपने विमान जितनी ही होती है। इनके महेन्द्रध्वज की ऊँचाई एक हजार योजन है और असुरेन्द्रों के विमान पचास हजार योजन के होते हैं। तथा महेन्द्र ध्वज की ऊँचाई पांच सौ योजन की है। शेष धरणेन्द्र आदि अठारह इन्द्रों के विमान पचीस हजार योजन के विस्तार वाले हैं और महेन्द्र ध्वज की ऊँचाई ढाई सौ योजन की है। व्यन्तर ज्योतिष्केन्द्रों के विमान एक हजार योजन के तथा महेन्द्र ध्वज सवा सौ

Aho ! Shrutgyanam

योजन ऊँचा होता है। यह सारा अधिकार जम्बू-द्वीप-प्रज्ञप्ति-सूत्र की टीका में है।

प्रश्न ४५–इन्द्रों के जो पालकादि विमान कर्ता देव हैं वे अपने आत्मप्रदेशों से अधिष्ठित विमानों की रचना करते हैं या प्रदेश रहित अचित्त पुद्गलों से रचना करते हैं ?

उत्तर :—पालकादि देव ही स्वयं विमान रूप हो जाते हैं अतः ये विमान अचित्त नहीं हो सकते। इस सम्बन्ध में स्थानाङ्ग वृत्ति के दशमस्थानक में इस प्रकार कहा है:—

यथा–"पालक इत्यादीनि शक्रादीनां क्रमेणाऽवगन्तव्यानि इत्यादि, आभियोगिकाश्चैते देवा विमानी भवन्तीति अतएव विमान नामान्यपि पालकादीन्येव बोध्यानि ॥"

"पालक आदि देव अनुक्रम से इन्द्रादि के विमान जानना चाहिये। ये आभियोगिक देव ही विमान रूप होते हैं, अतः विमानों के नाम भी पालकादि जानना।"

प्रश्न ४६–जैसे लोकपालादि के विमान भिन्न-भिन्न होते हैं वैसे ही इन्द्रों के सामानिक देवों के भी महाऋद्धि वाले होने से भिन्न-भिन्न विमान होते होंगे क्या ?

उत्तर :—इन्द्रों के सामानिक देवों के विमान भिन्न नहीं होते क्योंकि ऊपर के सहस्रारादि देवलोक में सामानिक

Aho ! Shrutgyanam

देवों की अपेक्षा विमानों की संख्या कम है, जबकि सामानिक देव तीस हजार हैं और विमान ६ हजार। इसी प्रकार आनत, प्राणत दोनों में चार सौ विमान हैं व सामानिक देव २० हजार हैं, वैसे ही आरण अच्युत लोक में कुल तीन सौ विमान हैं और सामानिक दस हजार हैं। दूसरा कारण यह भी है कि सामानिक देवों के विमान पृथक हों तो किसी अभव्य को भी विमानाधिपति होने का अवसर आ जायगा। इधर आगम में ऐसा सुना जाता है कि—

यथा—" अभव्य शक्र सामानिकः संगमको देवः, विमानाधिपतित्वं तु अभव्यस्य असंगतम् ॥ अभव्यकुलके, चउदसरयण त्तं पियपत्तं ण पुणो विमाण सामित्तं।

अभव्य संगमक, इन्द्र का सामानिक देव है एवं अभव्य का विमानाधिपति मानना असंगत है। अभव्य कुलक में भी कहा है कि अभव्य जीव चतुर्दशरत्नत्व तथा विमानस्वामित्व नहीं प्राप्त करते। इन वचनों से यह निषेध है। अतएव अपने-अपने इन्द्र के विमानों में सामानिक देवों का निवास जानना चाहिये।

शंका—ऐसी स्थिति में एक विमान में वे महर्द्धिक देव किस स्थिति से निवास करते हैं ?

समाधान—देश के समान देवलोक में तथा ग्राम नगरादि के समान विमानों में महर्द्धिक देवों की निवास भूमि मोहल्लों के समान समझना चाहिये।

Aho ! Shrutgyanam

शंका–यदि ऐसा है तो भगवती सूत्र के तृतीय शतक के अन्तर्गत प्रथम उद्देश्य में तिष्यक साधु के सम्बन्ध में, जो इन्द्र के सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुआ है, "सोहम्मे कप्पे सयंसि विमाणं सित्ति" यह पाठ कैसे संगत हो सकता है ?

समाधान–इस सूत्र से एक ही अपने स्वामी के विमान में जिस देव को जितना प्रदेश (स्थान) मिला हो, वह प्रदेश (स्थान) उस देव का अपना विमान कहलाता है। इसी कारण से काली देवी का चमरचंचा राजधानी का एक देश भवन के रूप में ही कहा है। इसी प्रकार चन्द्रप्रभा एवं सूर्यप्रभा देवियों का भी चन्द्रादि विमानगत एक देश ही उनका अपना-अपना विमान कहा है ऐसा जानना चाहिये। प्रवचन में अपरिगृहीत देवियों के ही विमान पृथक्-पृथक् कहे गये हैं। यह सम्पूर्ण अधिकार जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र की टीका में देखना चाहिये।

प्रश्न ४७–परमाधार्मिक देव भव्य ही हैं। यह प्रघोष सत्य है अथवा असत्य ?

उत्तर —परमाधार्मिक देव भव्य ही हैं, यह प्रघोष सत्य ही ज्ञात होता है। अभव्यकुलक में कहा है कि–

"तायत्तंस सुरत्तं परमाहम्मियत्तिं जुयलमणुअत्तं ।"

अभव्य जीव त्रायस्त्रिंशक देवत्व, परमाधार्मिक देवत्व एवं युगलिक देवत्व नहीं प्राप्त कर सकते। ये परमाधार्मिक देव पूर्व भव में किये हुए पाप का स्मरण कराते हुए नारकीयों की विडम्बना करते हैं।

Aho ! Shrutgyanam

अभव्यों के लिये यह बात घटित नहीं होती। इस युक्ति का समर्थन वृद्ध जन भी करते हैं।

प्रश्न ४८–प्रथम एवं अन्तिम तीर्थंकर के छद्मस्थ काल में सम्पूर्ण प्रमाद काल कितना था ?

उत्तर :—श्री ऋषभदेव भगवान् का छद्मस्थ काल एक हजार वर्ष का है। इस छद्मस्थकाल में उग्र तपस्या करते हुए सम्पूर्ण प्रमाद काल एक अहोरात्रि का है। इसी प्रकार श्री महावीर प्रभु के साढ़े बारह वर्ष पर्यन्त तपस्या करते रहने पर उनका प्रमादकाल एक अन्तर्मुहुर्त का ही है। इस सम्बन्ध में उत्तराध्ययन सूत्र कमल संयमी टीका के बत्तीसवें अध्ययन में तथा अन्य शास्त्रों में भी कहा है कि—

वीरुसहाण पमाओ अंतमुहुत्तं तहेव होरत्तं।
उवसग्गा पासस्स य वीरस्स य न उण सेसाणं॥

ऋषभदेव स्वामी का प्रमाद काल एक अहोरात्रि का और वीर प्रभु का प्रमादकाल अन्तर्मुहुर्त का है। पार्श्वनाथ एवं वीर प्रभु को उपसर्ग हुए हैं। दूसरे किसी भी तीर्थंकर को उपसर्ग नहीं हुए।

प्रश्न ४९:–शाश्वत जिन प्रतिमाएं कौन से आसन से बैठी हुई हैं ?

उत्तर :—शाश्वत जिन प्रतिमाएँ पर्यङ्क आसन से बैठी हुई हैं। योग शास्त्र वृत्ति के चतुर्थ प्रकाश में कहा है कि—

Aho ! Shrutgyanam

स्याज्जंघयोरधोभागे, पादोपरिकृतेसति ।
पाणिद्वयं नाभ्यासन्न मुत्तानं दक्षिणोत्तरम् ॥

—दक्षिण एवं वाम जंघाओं के नीचे का भाग पाँव के ऊपर रखकर दक्षिण एवं वाम हाथ नाभि के समीप खुले रखने पर पर्यङ्कासन होता है।

यही पर्यङ्कासन शाश्वत प्रतिमाओं का एवं निर्वाण काल में भगवान महावीर का था।

प्रश्न ५०:—चौबीसों तीर्थंकर कौनसा अनशन स्वीकार करके कौन से आसन से स्थित हो मोक्ष को प्राप्त हुए हैं ?

उत्तर:—सभी तीर्थंकर पादोपगमन अनशन से सिद्ध हुए हैं एवं भविष्य में भी होंगे। प्रवचन सारोद्धार वृत्ति में तथा पंचाशक विवरण में कहा है कि—

सव्वे सव्वद्धाए, सव्वन्नू सव्वकम्मभूमी सु ।
सव्वगरु सव्वमहिया, सव्वमेरुंमि अभिसित्ता ॥१॥
सव्वाहि वि लद्धीहि, सव्वेवि परीसहे पराइत्ता ।
सव्वे वि य तित्थयरा पाओवगयाउ सिद्धिगया ॥२॥
अवसेसा अणगारा तीयपडुप्पन्नणा गया सव्वे ।
कोई पाओवगया पच्चक्खाणें गिणिं केई ॥३॥
सव्वाओ अज्जाओ सव्वे विय पढम संघयण वज्जा ।
सव्वे य देसविरया पच्चक्खाणेण उभरंती ॥४॥

Aho ! Shrutgyanam

–सम्पूर्ण काल में सम्पूर्ण कर्म भूमि पर सभी सर्वज्ञ, सबके गुरु, सबसे पूजित, समस्त मेरु पर्वतों से अभिषिक्त समस्त लब्धियों से युक्त, समस्त परिषहों को जीत कर सभी तीर्थंकर पादोपगम अनशन करके सिद्ध हुए हैं। शेष तीनों कालों के समस्त साधुओं में से कुछ साधु पादोपगम अनशन एवं कुछ अनशन पूर्वक इंगिनी मरण की मृत्यु को प्राप्त करते हैं। समस्त साध्वियों एवं प्रथम संघयण वालों को छोड़कर समस्त देशविरतियुक्त श्रावक अनशन पूर्वक मरण प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार इस चौबीसी में श्री ऋषभदेव स्वामी, श्री नेमिनाथ स्वामी एवं श्री महावीर स्वामी ये तीनों तीर्थंकर पर्यङ्कासन से स्थित हो मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। शेष तीर्थंकर कायोत्सर्ग में रहकर मुक्त हुए हैं। ऐसा सप्ततिशत स्थानक में कहा है। यथा:–

यथा–वीरोसह नेमीणं पलिअंकं सेसयाण उसग्गो।
पलियंकारुण माणं सदेहमाणा तिभागूणं ति ॥

–ऋषभदेव, वीर प्रभु एवं नेमीनाथ ये तीनों तीर्थंकर पर्यङ्कासन से सिद्ध हुए हैं. शेष तीर्थंकर काउस्सर्ग ध्यान में रहकर सिद्ध हुए हैं। पर्यङ्कासन का प्रमाण अपने शरीर के तृतीय भाग जितना न्यून जानना चाहिये।

शंका–श्री वीर भगवान् देशना देते हुए ही सिद्ध हुए हैं तो उनके लिये पादोपगमन अनशन कैसे संगत हो सकता है?

समाधान–भगवान पादोपगमन अंगीकर कर समस्त अंगों एवं उपांगों को निश्चल करते हुए चारों आहारों का त्याग कर सोलह प्रहरतक अस्खलित देशना देते हुए सिद्ध हुए हैं। इसलिये

Aho ! Shrutgyanam

इसमें किसी प्रकार की असंगति नहीं है।

प्रश्न ५१:–अष्टापद पर्वत का और उसके ऊपर स्थित जिन-मन्दिर का कितना प्रमाण है ?

उत्तर :–अष्टापद पर्वत आठ योजन ऊंचा एवं उसका विस्तार चार योजन का है। उसके ऊपर आधे योजन के विस्तार वाला एक योजन दीर्घ (मोटा) एवं तीन कोष ऊंचा, चार द्वार वाला मन्दिर है, जिसका निर्माण भरत चक्रवर्ती ने कराया है। इसका प्रमाण योगशास्त्र में इस प्रकार है:—

तमष्ट योजनोच्छ्रांमं, चतुर्योजन विस्तृतं।
आरोहत् सह सोदर्यैजह्नुर्मित परिच्छद: ॥१०॥
तत्रैक योजनमायाममर्द्ध योजन विस्तृतं।
त्रिगण्यूत्युन्नतं चैत्यं चतुर्द्वारं विवेश स: ॥११॥

–परिमित परिवार वाला जह्नुकुमार अपने भाइयों के साथ आठ योजन ऊंचे और चार योजन विस्तार वाले अष्टापद पर्वत पर चढ़ा। वहां एक योजन दीर्घ (मोटे), अर्ध, योजन विस्तार वाले एवं तीन कोस ऊंचे चार द्वारों से युक्त मन्दिर है उसमें उसने प्रवेश किया।

प्रश्न ५२:-अष्टापद पर्वत के आठ सोपान (सीढ़ीयाँ) सुने जाते हैं। वे भरत चक्रवर्ती के द्वारा बनवाये हुये हैं या किसी अन्य के द्वारा ?

उत्तर :— अष्टापद पर्वत के वे आठ सोपान भरत चक्रवर्ती के समय में थे ही नहीं, परन्तु चौथे आरे के व्यतीत होने

Aho ! Shrutgyanam

पर जब अजितनाथ भगवान् उत्पन्न हुये तब उनके शासनकाल में सगर चक्रवर्ती के पुत्र जह्नुकुमार ने दण्डरत्न से अष्टापद पर्वत के आठ सोपान बनवाये। ऐसा उत्तराध्ययन वृत्ति में कहा है, यथा:—

इति श्रुत्वाऽथ दण्डेन, पातयित्वास्य भूभृतः
नितम्ब दन्त शृङ्गाद्यम् अष्टसोपानताकृताः ॥१॥

— इस प्रकार सुनकर दण्डरत्न से इस पर्वत के आस-पास के तीक्ष्ण शिखरों को गिराकर आठ सोपान बनाये।

यह प्रकरण द्वितीय चक्राधिकार में है।

श्री लोक प्रकाश में तो भरताधिकार में इस प्रकार कहा है:—

संतक्ष्य दण्डरत्नेन परितोऽष्टापदं गिरिम्।
अष्टौ योजनमानास्तन्मेखलाः स व्यरीरचत् ॥२॥

— अष्टापद पर्वत दण्डरत्न से चारों ओर से छीलकर उसने आठ योजना के प्रमाण वाली गोल मेखलाएं बनाई।

इस आधार पर भरत ने ही वे सोपान बनाये ऐसा सिद्ध होता है।

शत्रुञ्जय माहात्म्य के आठवें सर्ग में:—

अष्टाभिः पदिकाभिस्ते, तमारुह्याति हर्षितः।
प्रासादान् जगदीशस्य, त्रिः प्रदक्षिणयन् क्षणात्—

— वे आठ सोपानों से हर्षपूर्वक ऊपर चढ़कर जिनेश्वर के प्रासादों की तीन प्रदक्षिणा देते थे। इतना ही कहा है।

Aho ! Shrutgyanam

सगर पुत्र के अधिकार में छठे सर्ग में पुनः भरताधिकार में कहा है, कि :—

योजनान्ते योजनान्ते दण्डरत्नेन चक्रिराट् ।

चक्राराष्टौ पदान्यस्मात् ख्यातः सोऽष्टापदो गिरिः ॥४॥

— भरतचक्रवर्ती ने दण्डरत्न से एक एक योजन के प्रमाण वाले आठ सोपान बनाये इससे अष्टापद पर्वत प्रसिद्ध है ।

प्रश्न ५३;—अष्टापद पर्वत के ऊपर सिंह निषद्या नाम के मन्दिर में चारों दिशाओं में अपने अपने वर्ण – प्रमाण से युक्त चौवीसों तीर्थंकरों की प्रतिमायें भरतचक्रवर्ती ने स्थापित की हैं। वहाँ पूर्व दिशामें ऋषभ देव एवं अजित नाथ दोहैं, दक्षिण दिशा में सम्भवनाथ आदि चार, पश्चिम दिशा में सुपार्श्वनाथ आदि आठ, उत्तर दिशा में धर्मनाथ आदि दश इस प्रकार की संख्यासे स्थापन करने का क्या हेतु है ?

उत्तर :— ऋषभदेव एवं अजितनाथ का देहमान विशाल होने से एक दिशा में दो ही स्थापित हो सके। तत्पश्चात् क्रम से देहमान छोटा छोटा होने से चार आदि संख्या से स्थापित करना युक्तियुक्त है। अतएव देहमान का छोटा बड़ा होना ही इसमें कारण ज्ञात होता है। विशेष तो बहुश्रुत जो कहते हैं वही प्रमाण है।

प्रश्न ५४:—श्री भगवती सूत्र के आठवें शतक के नवम उद्देश में कृत्रिम वस्तु की स्थिति संख्यात काल तक ही कही है, अतः अष्टापद पर्वत पर भरत चक्रवर्ती द्वारा बनवाई हुई प्रतिमाओं का सद्भाव (अस्तित्व) आज कैसे विद्यमान है ? क्योंकि मध्य में असंख्यात कोटि कोटि वर्ष वाला

Aho ! Shrutgyanam

चौथा आरा आता है। इसी प्रकार शत्रुञ्जय पर्वत पर भरतचक्रवर्ती द्वारा बनवाये गये मन्दिर आज तक क्यों नहीं रहे? जब कि वहां असंख्यात उद्धार हुए सुने जाते हैं?

उत्तर :—अष्टापद का स्थान देवसान्निध्य होने से अपाय (उपद्रव) रहित है। "जाव इमा ओसप्पिणित्ति" वसुदेव हिण्डी में इस प्रकार कहा है। अतः वहां के देवमन्दिर (चैत्यालय) इतने समय तक विद्यमान रह सकते हैं; यह उचित ही है। शत्रुञ्जय का स्थान तो अपाय (उपद्रव) युक्त एवं भवितव्यता के वशसे एवं तथाविध देवसान्निध्य रहित है; अतः भरतचक्रवर्ती द्वारा बनवाये गये मन्दिर एवं प्रतिमायें इतने समय तक नहीं रह सकती यह सम्भव है। शेष तत्व तो तत्वज्ञ केवली ही जान सकते हैं। वसुदेव हिण्डी में तो इस प्रकार पाठ है;—

यथा—"ततो ते जण्हुय भइया कुमारा पुरिसे आणवेंति गवेसह अट्ठावयतुल्लं। पव्वयं ति ततो तेहिं तत्तुल्लो पव्वओ ण दिट्ठो त्ति णिवेइयं ततो अमच्चं ते लवंति केवइयं पुणकालं आययणं अविसज्जिस्सइ ततो तेण अमच्चे ण भणियं जाव इमाओ सप्पिणित्ति इति मे केवलि जिणाणं अंतिए सुयंति ॥"

— इसके पश्चात् वे जह्नुकुमार आदि प्रमुख कुमार पुरुषों को बुलाकर कहते हैं कि अष्टापद पर्वत के समान दूसरा पर्वत ढूंढो! तब उन पुरुषों ने गवेषणा कर कहा कि अष्टापद पर्वत के समान दूसरा कोई पर्वत नहीं है। तदनन्तर उन्होंने मन्त्रियों से

Aho ! Shrutgyanam

कहा कि यह पर्वत कितने समय रहेगा ! मन्त्रियों ने कहा कि यह अवसर्पिणी काल तक रहेगा। ऐसा हमने केवली जिन के पास से सुना है।)

इस सम्बन्ध में जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में सुषम सुषम आरकादि वर्णन में वापी दीर्घिकादि कृत्रिम पदार्थों का सद्भाव बतलाते हुए कहा है, वह देखना चाहिये। इसी प्रकार हीर प्रश्न में भी इस प्रश्न का इसी प्रकार समाधान किया गया है।

प्रश्न ५५ :—क्षीण मोह नामक बारहवें गुणस्थानक के अन्तिम समय में सर्व ज्ञानावरणादि कर्म का क्षय होता है, ऐसे समय में केवल ज्ञान की उत्पत्ति मानी गई है तथा चौदहवें गुण स्थानक के अन्तिम समय में शेष सभी कर्मों के क्षय होने से उसी समय सिद्धत्व प्राप्त होता है, अनन्तर समय में नहीं। शास्त्र में तो केवल ज्ञान एवं सिद्धत्व अनन्तर समय में प्राप्त होते हैं, ऐसा सुना जाता है। ऐसी स्थिति में कौन सा मत मानना उचित है ?

उत्तर :—जिन प्रवचन (जिन शासन) में निश्चय और व्यवहार दो नय हैं। निश्चय नय के मत से बारहवें व चौदहवें गुणस्थानक के अन्तिम समय में ही केवलोत्पत्ति एवं सिद्धत्व प्राप्त होते हैं और व्यवहार नय के अनुसार तो अनन्तर समय में। अतः दोनों ही मानना चाहिये। ऐसा ही भाष्य में भी कहा है यथा :—

आवरणक्खय समए निच्छइयनयस्स केवलुप्पत्ती।
तत्तो णंतर समए ववहारो केवलं भणइ त्ति ॥१॥

Aho ! Shrutgyanam

(इस गाथा का तात्पर्य ऊपर की पंक्तियों में दे दिया गया है ।)

प्रश्न ५६—केवली समुद्घात कौन करते हैं और कौन नहीं करते ?

उत्तर :—जिन केवलियों के आयु – नाम – गोत्र एवं वेदनीय कर्म ये चारों समान होते हैं तथा क्षय को प्राप्त होते हैं वे केवली केवलीसमुद्धात नहीं करते और जिनका आयुष्य थोड़ा हो तथा दूसरे कर्मों की स्थिति अधिक हो तो वे चारों कर्मों की स्थिति समान करने के लिये समुद्धात करते हैं। ऐसा पन्नवणा सूत्र के समुद्घात पद में कहा है ।

इस सम्बन्ध में गुण स्थानक समारोह में इतना विशेष है :—

यथाः—यः षण्मासाधिकायुष्को, लभते केवलोद्गमम् ।
करोत्यसौ समुद्घातं शेषाःकुर्वन्तिवा न वा ॥

उक्तं च—छम्मासाऊ सेसे उप्पन्नं जेसि केवलं णाणं ।
ते नियमा समुग्घाईय सेसा समुग्घाय भजयन्ति ॥

जो मनुष्य छ मास से अधिक आयुष्य वाला हो एवं केवल ज्ञान प्राप्त करले तो वह समुद्धात करता है दूसरे करें अथवा न करें । इस प्रकार गुण स्थानक समारोह में कहा है । दूसरे स्थान पर ऐसा कहा गया है कि छः मास का आयुष्य शेष रहा हो और जिनको केवल ज्ञान उत्पन्न हो जाय वे अवश्य समुद्धात करते हैं दूसरों के लिये यह नियम नहीं है ।

Aho ! Shrutgyanam

इस प्रकार जिनकी छः मास ऊपर की वृद्धि से आयुष्य शेष रही हो एवं वे केवल ज्ञान प्राप्त करलें तो समुद्धात करते हैं अथवा न भी करते हैं, यह "शेषाः" — शब्द का अर्थ है।

प्रश्न ५७ :—भगवान् केवली समुद्घात करके मोक्ष को पधारते हैं या अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् अथवा छः मास के पश्चात् ?

उत्तर :—भगवान् केवली समुद्घात करके अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् ही मोक्ष पधारते हैं; ऐसा प्रज्ञापना सूत्र में कहा है, कि भगवान् केवली समुद्घात से निवृत्त होकर पश्चात् तत्क्षण ही मनोयोग, वचनयोग एवं काययोग को काम में लेते हैं, जिससे वे भगवान् अचिन्त्य प्रभावशाली केवली समुद्घात के बल से अधिक स्थिति वाले अवधारणीय नाम, गोत्र एवं वेदनीय कर्म को आयुष्य कर्म के समान बनाकर अन्तर्मुहूर्त में परम पद को प्राप्त हो जाते हैं। उस समय जो अनुत्तर विमान के देव मन से पूछे उसका उत्तर देने के लिये मनोवर्गणा के पुद्गल ग्रहण करके मनोयोग को काम में लेते हैं वह भी असत्य अमृषा रूप होता है। मनुष्यादि द्वारा पूछा गया हो। या न पूछा गया हो तो भी कार्य वशात् वचन योग के पुद्गल ग्रहण करके वचन योग का व्यवहार करते हैं। वह भी सत्य और असत्य अमृषारूप होता है! इसी प्रकार गमन एवं आगमन आदि में काययोग का व्यवहार करते हैं। क्योंकि भगवान् कार्यवशात् किसी स्थान से विवक्षित

Aho ! Shrutgyanam

स्थान में आवे या जावे, खड़े रहे बैठे, अथवा परिश्रम दूर करने के लिये आराम करे, प्रतिहारिक पाट, पाटला, शय्या संस्तारक सन्थारा) जिसके पास से लिया हुआ हो उसको पुनः देवे। इस स्थान पर भगवान आर्य श्याम ने प्रतिहारिक पाट आदि पुनः देने का कहा है। इससे यह ज्ञात होता है कि अवश्य ही अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य शेष रहे सभी मोक्ष के सन्मुख होने के लिये आवर्जीकरणादि आरम्भ करते हैं, विशेष आयुष्य रहने पर नहीं। अन्यथा ये भी ग्रहण कर सकते हैं। इस दृष्टि से कुछ ऐसा कहते हैं कि जघन्य से अन्तर्मुहूर्त एवं उत्कृष्ट छः छः मास का आयुष्य शेष रहे तब समुद्घात होता है। इस बात का खण्डन समझना चाहिये। भगवान् समुद्रघात से निवृत होने के पश्चात अन्तर्मुहूर्त में योग निरोध करते हैं। ऐसा औपपातिकोपाङ्ग वृत्ति में कहा है।

प्रश्न ५८:-इस संसार में कतिपय जीव सम्यक्त्व से भ्रष्ट होने के पश्चात् संख्यात, असंख्यात एवं अनन्तकाल से पुनः सम्यक्त्वी होकर सिद्ध होते हैं और कुछ सम्यक्त्व से पतित हुए बिना ही सिद्ध हो जाते हैं। वे सब उत्कर्ष से एक समय में कितने सिद्ध हो सकते हैं।

उत्तर-- जो जीव सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर अनन्तकाल के पश्चात् पुनः सम्यक्त्वी होते हैं, वे एक समय में एक सौ आठ, संख्यात एवं असंख्यात काल वाले एक समय में दस दस और अपतित सम्यक्तवी एक समय

Aho ! Shrutgyanam

में उत्कर्ष से चार सिद्ध होते हैं। ऐसा नन्दीसूत्र वृत्ति में कहा है :--

यथाः-जेसिमणंतो कालो पडिवाओ तेसि होइ अट्ठसयं
अप्पडिवडिए चउरो दसगं दसगं च सेसाण ॥

--जिनको सम्यक्त्व से भ्रष्ट हुए अनन्तकाल हो गया है वे एक समय में १०८ सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार संख्यात एवं असंख्यात काल वाले एक समय में दस, दस और अपतित सम्यक्त्वी एक समय में चार सिद्ध होते हैं ।

प्रश्न ५६:-सर्वार्थ सिद्ध विमान के ऊपर बारह योजन ऊंचो सिद्ध शिला है, वह मध्य भाग में आठ योजन जाड़ी (मोटी) है। उसके पश्चात् कितनी हानि से कम होती हुई आसपास के भाग में अत्यन्त पतली होगई है ?

उत्तर - श्री प्रज्ञापना सूत्र एवं टीका में तो लिखा है कि उसके पश्चात् समस्त दिशाओं एवं विदिशाओं में थोड़े थोड़े प्रदेशों की हानि से कम होती होती अन्त में मक्खी के पंख से भी अत्यन्त पतली हो जाती है, जिसके सम्बन्ध में अंगुली के असंख्यात वे भाग जितनी जाड़ी कहा गया है, जो सामान्य रीति से ही है, विशेष रूप से नहीं। श्री उत्तराध्ययन सूत्र की कमल संयमी टीका में तो पुन: ऐसा कहा है कि- सिद्ध शिला मध्य भाग में आठ योजन जाड़ी एवं अन्त में क्रमानुक्रम से घटती हुई अत्यन्त पतली है। यहां विशेष हानि का उल्लेख नहीं किया गया है। फिर भी प्रत्येक योजन में अंगुल पृथकत्व (दो से

Aho ! Shrutgyanam

नव अंगुल तक) की हानि जाननी चाहिये। यह बात आवश्यक निर्युक्ति के अभिप्राय से कही गई है। यथा—

गंतूण जोयणं जोयणं तु परिहाइ अंगुल पहुत्तं।
तीसेव य पेरंता मच्छी पत्ताउ तणुय अरा॥

--योजन योजन जाने के बाद मोटाई में दो से नव अंगुल जितनी हानि होती है। प्रान्त भाग में वह सिद्ध शिला मक्खी के पंख से भी अत्यधिक पतली होती है।

प्रश्न ६०:-तीनों भुवनों में सर्वोत्कृष्ट रूप तीर्थंकरो का, एवं उनसे अनन्त गुण हीन रूप उनके गणधरों का होता है। और उन गणधरों से अनन्त गुण हीन रूप किन्हीं साधुओं का होता है या देवेन्द्र चक्रवर्ती आदि का ?

उत्तर-- गणधरों से अनन्त गुण हीन रूप आहारक लब्धि वाले मुनियों के द्वारा किये गये आहारक शरीर का होता है। उनसे अनन्त गुण हीन रूप अनुत्तर देवों का, उनसे अनन्तगुण हीन रूप ग्रैवेयक देवों का, उनसे अनन्तगुण हीन रूप अच्युत देव लोक से लेकर (१२, ११, १० ६, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १) प्रथम देव लोक तक के देवों का रूप अनुक्रम से प्रत्येक का अनन्तगुण हीन होता है। इसी प्रकार सौधर्म देवलोक के देवता के रूप से भवनपति, ज्योतिष्क, व्यन्तर, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव एवं महामाण्डलिक राजाओं का रूप क्रमशः अनन्तगुण

Aho ! Shrutgyanam

हीन होता है। शेष राजाओं के तथा देशवासियों के रूप षट्स्थान गत होते हैं।

प्रश्न ६१:-देवों का भवधारणीय शरीर उत्पत्ति समय में वस्त्रालंकार से रहित स्वाभाविक अनुपम रूप युक्त होता हैं, किन्तु उसके पश्चात् जब वे यथावसर वस्त्रालंकार धारण करते हैं तब उनका उत्तर वैक्रिय शरीर भी वैसे ही वस्त्रालंकार रहित होता है अथवा वस्त्रालंकार युक्त ?

उत्तर-- देव उत्तर वैक्रिय शरीर को वस्त्रालंकार युक्त ही बनाते हैं किन्तु इसके पश्चात् वस्त्रादि धारण नहीं करते। जैसा कि जीवाभिगम सूत्र में कहा है यथा:-

"सोहम्मीसाण देवा केरिसया विभूसाए पण्णत्ता गोयमा दुविहा पण्णता तं वेउव्विय शरीरा य अवेउव्विय शरीरा य, तत्थणं जे ते वेउव्विय सरीरा ते हार विराइयवत्था जाव दस दिसाओं उज्जोए माणा इत्यादि तत्थणं जे ते अवेउव्विय सरीरा तेणं आभरण वसण रहिया पगतित्था विभूसाए पण्णता॥"

--गौतम ने भगवान से प्रश्न किया कि-हे भगवन्! सौधर्म ईशान देव लोक के देव कैसी शोभा से युक्त होते हैं, हे गौतम! देव दो प्रकार के होते हैं-१ वैक्रिय शरीर धारी अर्थात् उत्तर वैक्रिय शरीर वाले देव एवं दूसरे अवैक्रिय शरीरधारी अर्थात् भवधारणीय शरीर वाले। इनमें जो उत्तर वैक्रिय शरीर वाले होते हैं वे हार से विभूषित वक्षः स्थल वाले दशों दिशाओं को प्रकाशित करते हैं एवं जो अवैक्रिय शरीर धारी अर्थात् भव-

Aho ! Shrutgyanam

धारणीय शरीर वाले होते है वे वस्त्रालंकार रहित स्वाभाविक अद्‌भुत रूप सम्पन्न होते हैं। लोक प्रकाश में भी इसी आशय का एक श्लोक हैं:-

यथा:-विरच्यन्ते पुनर्ये तु सुरैरुत्तर वैक्रियाः ।
ते स्युः सम समुत्पन्न वस्त्रालंकार भासुराः ॥

प्रश्न ६२:-शास्त्रों में गर्भज मनुष्यादि को की छः पर्याप्ति कही हैं एवं भगवतीसूत्र में देवताओं की पांच पर्याप्ति कही है। यथा--

" पंच विहाए पज्जतीए पज्जत्तिभावं गच्छति ।"

इस कथन से देवताओं की पांच पर्याप्ति होने का क्या कारण है ?

उत्तर-- भाषा और मन पर्याप्ति की समाप्ति में अत्यल्पकाल का अन्तर होना है। अतएव एक रूप की विवक्षा करते हुए पांच पर्याप्ति कहा है। राजप्रश्नीय सूत्र की वृत्ति में इसी आशय को व्यक्त करते हुए कहा है कि-

"भाषा मनः पर्याप्त्योः समाप्ति कालान्तरस्य प्रायः शेष पर्याप्ति समाप्ति कालान्तर पेक्षया स्तोकत्वा देकत्वेन विवक्षण-मिति"

इधर भगवती सूत्र की वृत्ति के तृतीय शतक के प्रथम उद्देश्य मे भी पञ्च विहाए पज्जत्तोए कह कर पांच का ही उल्लेख किया है।

आहार शरीरादि की अभिनिर्वृत्ति का नाम पर्याप्ति है यह दूसरे स्थानों पर सोलह प्रकार की है। जब कि यहां पांच

Aho ! Shrutgyanam

प्रकार की बताते हुए भाषा एवं मनः पर्याप्ति के बहुश्रुत अभिप्रायों से किसी कारण वश एकत्व की विवक्षा की है। प्रवचन सारोद्धार के २३२ दो सौ बत्तीसवें द्वार में भी

"समगंपि हुंति नवरं पंचमछट्ठीउ अमरा"

यह लिखकर देवों की पांचवीं एव छट्टी पर्याप्ति समकाल कही है।

प्रश्न ६३—शास्त्रों में, उत्तर दिशा में मानसरोवर सुना जाता है वह जम्बू द्वीप में है या अन्य किसी द्वीप में ? और उसका कितना प्रमाण है ?

उत्तर— उत्तर दिशामें संख्यात योजन प्रमाण वाले द्वीपों में से किसी एक द्वीप में संख्यात कोटा कोटी योजन प्रमाण वाला मान सरोवर है। ऐसा प्रज्ञापना सूत्र की टीका में तीसरे अल्पबहुत्व पद में कहा है।

प्रश्न ६४—हंस जल मिश्रित दूध को जल से कैसे पृथक् कर केवल दूध ही पीता है जल नहीं ?

उत्तर— हंस की जिह्वा में अम्लत्व (खटास) होने से दूध फट कर पृथक् हो जाता है, जिससे वह जलको छोड़ कर केवल दूध ही पीता है।

श्री नन्दीसूत्र की वृत्ति में कहा है कि—

"अंबत्तणेण जीहाए कूचिया होइ खीर मुदयम्मि।
हंसो मुत्तूण जलं आपियइ पयं तह सुसीसो ॥"

— जिह्वा में खटास होने से जल में दूध फट कर पृथक् हो जाता है, जिससे हंस जल छोड़ कर केवल दूध ही पीता है। इसी प्रकार सुशिष्य को अर्थ का पान (ग्रहण) करना चाहिये।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न ६५--असुरकुमार देव किसी समय वैमानिक देवों के रत्नों को चुरा कर जब एकान्त में जाते हैं एवं वैमानिक देव उन पर प्रहार करते हुए उन्हें पीड़ा देते हैं तो उस समय एवं अन्य समय उनको जो दुःख होता है वह कितने काल तक रहता है ?

उत्तर— जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक एवं उत्कृष्ट छः मास तक दुःख रहता है। श्री भगवती सूत्र के तृतीय शतक के द्वितीय उद्देशक में इस सम्बन्ध में ऐसा कहा है :—

यथाः—"एषां रत्ना दातृणा मसुराणां कायं देहं प्रव्यथयन्ते प्रहारैर्मथ्नन्ति वैमानिकाः देवाः तेषां च प्रव्यथितानां वेदना भवति जघन्येनाऽन्तर्मुहूर्तमुत्कृष्टत : षण्मासान् यावदिति, ।"

— वैमानिक देव रत्न चुराने वाले असुरों को प्रहार द्वारा पीड़ा देते हैं। प्रहार पीड़ित उन असुरों की यह वेदना (पीड़ा) जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक एवं उत्कृष्ट छः मास तक रहती है।

योग शास्त्र वृत्ति में तो देवताओं को प्रायः सातावेदनी कहा है, यदि असाता वेदनी हो भी तो केवल अन्तर्मुहूर्त्त तक, इसके पश्चात् नहीं।

यथाः —देवाश्च सद्वेदना एव प्रायेण भवन्ति यदिच असद्वेदना भवन्ति ततोऽन्तर्मुहूर्त्तमेव न पुरतः ।

प्रश्न ६६–तिर्यक् जृंभक देव कहां रहते हैं ?

Aho ! Shrutgyanam

उत्तर— तिर्यंक्-जृंभक देव व्यन्तर विशेष है। ये दीर्घवैताढ्य पर्वत कांचनगिरि, चित्र-विचित्र एवं यमक-समक पर्वतों में रहते हैं। ऐसा श्री भगवती सूत्र के चौदहवें शतक के अष्टम उद्देश में कहा है :—

यथा :—कञ्चणगिरिकूडेसु चित्तविचित्ते जमग समगे य।
एएसु ठाणेसु वसंति तिरिअजंभगा देवा ॥

प्रश्न ६७–जिस प्रकार चक्रवर्त्तियों की सेवा १६ हजार व्यन्तर देव करते हैं, उसी प्रकार अर्धचक्री वासुदेवों की ८ हजार देव सेवा करते हैं कि नहीं ?

उत्तर— कुछ व्यन्तरदेव चक्रवर्त्ती वासुदेव प्रभृति मनुष्यों की भी भृत्य के समान सेवा करते हैं, ऐसा **प्रज्ञापना सूत्र** के प्रथम पद में तथा तीर्थोद्गार प्रकीर्णक में कहा है : —

यथा :—"अट्ठय देवसहस्सा अभिओगा सव्व कज्जेसु।"
समस्त कार्यों के लिये आठ हजार आभियोगिक देव नियुक्त होते हैं।

प्रश्न ६८–चतुर्दश-पूर्वधर मुनि को देवगति प्राप्त होने पर पूर्व पठित सम्पूर्ण श्रुत स्मरण रहता है अथवा कम ?

उत्तर— प्राय: पूर्व पठित श्रुत का थोड़ा ही भाग स्मरण रहता है, सम्पूर्ण नहीं। इस सम्बन्ध में वृहत्कल्प वृत्ति की पीठिका में कहा है कि—

चउदस पुव्वी मणुओ देवत्ते तं ण संभरइ सव्वं।
देसमि होइ भयणा सट्ठाण भवे वि भयणा उ ॥

Aho ! Shrutgyanam

—चतुर्दश पूर्वधर–मनुष्य जब देवत्व प्राप्त कर लेता है तो उसको सम्पूर्ण श्रुत स्मरण नहीं रहता; क्योंकि उसमें विषय एवं प्रमाद की अधिकता हो जाती है, साथ ही तथाविधरा उस प्रकार के उपयोग का अभाव भी रहता है। परन्तु किसी-किसी को देश (कुछ भाग) की स्मृति रहती है, किसीको उसके भी किसी भाग का स्मरण रहता है, किसी को ग्यारह अंगों में सबका स्मरण रहता है। एवं किसी को इन ग्यारह अंगों के किसी भाग का स्मरण रहता है। मनुष्य भव में भी अधीत सर्व श्रुत (पढ़ा हुआ समस्त विषय) स्मरण रहता भी है एवं न भी रहता है। क्योंकि इसमें भी श्रुत ज्ञान के विनाशक—मिथ्यात्वोदय, भवान्तर जन्म, केवल ज्ञान, व्याधि, एवं प्रमाद आदि कई कारण हैं। इसी प्रकार विशेषावश्यक में भी कहा है एवं श्री ज्ञातासूत्र के चौदहवें अध्ययन में तो तेतली मन्त्रीको पूर्वाधीत चतुर्दश पूर्व के स्मरण होने का उल्लेख है।

प्रश्न ६९ देव एव नारकी जिन पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं उनको तथा कार्मण शरीर के पुद्गलों को अवधि ज्ञानादि से जानते हैं व देखते हैं या नहीं ?

उत्तर— नारकी तो उन पुद्गलों को न तो जानते ही हैं एवं न देखते हैं। देवों में कोई जानते हैं कोई नहीं जानते ! श्री समवायाङ्ग सूत्र-वृत्ति में ऐसा ही कहा है, जिसका संक्षिप्त पाठ इस प्रकार है :—

"पोग्गलानेव जाणंति त्ति।"

अर्थात् नारकी जिन पुद्गलों को आहार रूप में ग्रहण करते हैं उनको वे अवधि ज्ञान से नहीं जानते, क्योंकि वे पुद्गल उनके अवधि ज्ञान के विषय भूत नहीं होते। इसी प्रकार लोकाहार

Aho ! Shrutgyanam

होने से आंखों के द्वारा देख भी नहीं सकते। यही बात असुर व्यन्तर एवं ज्योतिष देवों के लिये भी है। वैमानिकों में तो जो देव सम्यक दृष्टि होते हैं वे विशिष्ट अवधि ज्ञान वाले होने से पुद्गलों को जानते हैं व विशिष्ट चक्षु होने से देखते भी हैं। मिथ्या दृष्टि वाले तो अपने प्रत्यक्ष एवं परोक्ष ज्ञान की अस्पष्टता से न तो जानते ही हैं न देखते हैं। संग्रहणी वृत्ति में तो ऐसा अधिकार हैं कि—देवों के मनसे संकल्पित शुभ पुद्गल समस्त शरीर से आहार रूप में परिणत हो जाते हैं एवं नारकियों के आहार के पुद्गल तो अशुभ होते हैं। ग्रहण किये गये उन पुद्गलों को विशुद्ध-अवधि एवं चक्षु के सद्भाव से अनुत्तर विमान के देव ही जानते हैं एवं देखते हैं नारक व्यन्तर ज्योतिष एवं ग्रैवेयक तक के देव भी नहीं जानते हैं एवं नहीं देखते हैं प्रज्ञापना वृत्ति में भी इसी प्रकार के अभिप्राय को व्यक्त किया गया है। तत्त्व तो केवली ही जाने।

इसी प्रकार कार्मण शरीर के पुद्गलों को भी अनुत्तर देव ही जानते हैं व देखते हैं ग्रैवेयक तक के अन्य देव-नारक न तो जानते ही हैं न देखते हैं; क्योंकि वे पुद्गल उनके अवधि ज्ञान के विषय भूत नहीं है।

यद्यपि बारह देव लोक एवं नवग्रैवेय कों में भी सम्यक् दृष्टि देव हैं, परन्तु उनका अवधि ज्ञान कार्मण शरीर के पुद्गलों का विषयी भूत नहीं है।

प्रश्न ७०:—कुछ अभव्य जीव भी यथा प्रवृत्ति करण के द्वारा ग्रन्थि देश में स्थित हो, द्रव्य लिंग (साधु वेश) को प्राप्त कर श्रुत अभ्यास करें तो कितना श्रुत प्राप्त कर सकते हैं तथा क्रिया बल से स्वर्ग में जावें तो कहां तक जा सकते हैं?

Aho ! Shrutgyanam

उत्तरः—अभव्य जीव उत्कृष्ट से ग्यारह अंक जितना श्रुत प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा विशेषावश्यक सूत्र वृत्ति में कहा है:- यथा:—

तित्थंकराइ पूअं दुट्ठं, अएणेण वा वि कज्जेण।
सुअ सामाइय लाभो, होई अभव्वस्स गंठिम्मि ॥

—अतिशयवती अर्हदादि विभूति देखकर धर्म से इस-प्रकार का सत्कार अथवा देवत्व एवं राज्य प्राप्ति होती है। इस प्रकार (मैं भी करूं) ऐसी बुद्धि उत्पन्न होने से अभव्य-जीव भी ग्रन्थि देश को प्राप्त हो जाता है एवं उस विभूति के निमित्त से देवत्व, राजत्व एवं सौभाग्य बलादि के लक्षण से अथवा अन्य किसी प्रयोजन से मोक्ष की श्रद्धा से सर्वथा रहित होकर कष्ठानुष्टान को कुछ अंशों में अंगीकार करता हुआ ज्ञानरूप मात्र श्रुत सामायिक का लाभ प्राप्त करता है। जो ग्यारह अंग जितना होता है। इसी प्रकार अभव्य जीव उत्कर्ष से ऊपर के ग्रैवेयक देव लोक तक जाते हैं।

इस सम्बन्ध में श्री भगवती सूत्र के प्रथम शतक के द्वितीय उद्देशक में इस प्रकार कहा है:—

यथाः—"मिथ्यादृष्टय एव अभव्या भव्या वा असंयत भव्य द्रव्य देवाः श्रमणगुणधारिणो निखिल समाचार्यनुष्ठानतयुक्ताः द्रव्यलिङ्ग धारिणो गृह्यन्ते, तेहि अखिल केवल क्रिया-प्रभावत एव उपरिम ग्रैवेयकेषु उत्पद्यन्ते, इति असंयताश्च ते सत्यपि अनुष्ठाने चारित्र परिणाम शून्यत्वात् ।"

Aho ! Shrutgyanam

—मिथ्यात्व दृष्टि वाले अभव्य या भव्य, असंयत भव्य द्रव्य देव साधु के गुणों को धारण करने वाले समग्र समाचारी की अनुष्ठान क्रिया से युक्त द्रव्य लिंग को धारण करने वाले ग्रहण करते हैं, वे समग्र क्रिया के प्रभाव से ही ऊपर के ग्रैवेयक में उत्पन्न होते हैं और चारित्र्य क्रिया करते हुए भी चारित्र्य के परिणाम से रहित होने पर असंयत कहलाते हैं।

इसी प्रकार प्रवचन सारोद्धार टीका के १०६ वे द्वार में भी कहा है—

यथाः—"यत्तु क्वचित् नव पूर्वान्तं श्रुतम्-अभव्यानाम् अङ्गारमर्दकाचार्यादीनाम् श्रूयते, तत् सूत्र पाठमात्रं तेषां पूर्वलब्धेरभावात्, यद् वा नव पूर्वाणि पूर्वधर लब्धि विनाऽपि भवन्ति।"

—जो कोई नव पूर्वान्त श्रुत अभव्य अङ्गारमर्दकाचार्य आदि का सुना जाता है, वह सूत्र पाठ मात्र से ही समझना चाहिये, अर्थ से नहीं। क्योंकि अभव्यों को पूर्व लब्धि का अभाव होता है अथवा नव पूर्व पूर्वधर की लब्धि के बिना भी होते हैं।

प्रश्न ७१:—१ आमर्षौषधि, २ विप्रुडौषधि, ३ खेलौषाधि, ४ जल्लौषधि, ५ सर्वौषधि, ६ संभिन्नश्रोत, ७ अवधिज्ञान, ८ ऋजुमति, ९ विपुलमति, १० चारिण, ११ आशीविष, १२ केवल, १३ गणधर पद, १४ पूर्वधर, १५ तीर्थंकर, १६ चक्रवर्त्ती, १७ वासुदेव, १८ बलदेव, १९ क्षीरासव मधुआसव सर्पिषासव, २० कोष्टक बुद्धि, २१ पदानुसारी,

Aho ! Shrutgyanam

२२ बीज बुद्धि, २३ तेजोलेश्या, २४ आहारकशरीर, २५ शीतलेश्या, २६ वैक्रिय शरीर २७ अक्षीण महानसी, २८ पुलाक लब्धि, ये अट्ठाईस लब्धियां भव्य पुरुषों को होती हैं, परन्तु भव्य स्त्रियों को, अभव्य पुरुषों को एवं अभव्य स्त्रियों को कितनी होती हैं।

उत्तर— इन अट्ठाईस लब्धियों में से १ अरिहन्त, २ चक्रवर्ती, ३ वासुदेव, ४ बलदेव, ५ संभिन्नश्रोत्, ६ चारण, ७ पूर्वधर, ८ गणधर, ९ पुलाक, एवं १० आहारक ये दस लब्धियां भव्य स्त्रियों को नहीं होती है। शेष १८ लब्धियाँ होती हैं। जो मल्लिनाथ स्वामी को स्त्रीपने में तीर्थंकर पद प्राप्त हुआ है, वह आश्चर्यभूत होने से नहीं गिनना चाहिये। इसी प्रकार केवली, ऋजुमति, एवं विपुलमति रूप तीन लब्धियों के सहित उपर्युक्त दस लब्धियाँ अर्थात् १३ लब्धियाँ अभव्य पुरुषों को नहीं होती हैं, शेष १५ लब्धियाँ होती हैं। ऐसे ही अभव्य स्त्रियों को भी ये ऊपर कही गई १३ लब्धियाँ नहीं होती एवं १४ वीं मधुक्षीरासव लब्धि भी इनको नहीं होती। शेष १४ लब्धियाँ होती हैं।

प्रवचन सारोद्धार सूत्र में इसी आशय की गाथाए इस प्रकार हैं :—

"भवसिद्धिय पुरिसाणं एयाओ हुंति भणियलद्धीओ।
भवसिद्धिय महिलाण वि जत्तिय जायंति तं वोछं ॥१॥

Aho ! Shrutgyanam

अरिहंत चक्कि केसव बल संभिन्ने य चारणा पुव्वा ।
गणहर पुलाय आहारगं च न हु भवय महिलाणं ॥२॥
अभविय पुरिसाणं पुण दस पुव्विल्लाउ केवलि त्तं च ।
उज्जुमई विउमई तेरस एयाउ नहु हुंति ॥ ३ ॥
अभविय महिलाणं पि हु एयाउण हुंति भणिय लद्धिओ ।
महुक्खीरा सव्वलद्धी वि नेय सेसा उ अविरुद्धा ॥४॥

प्रज्ञापना सूत्र की टीका में स्त्रियों के मुक्ति स्थापन-अधिकार में जो कहा गया है वह इस प्रकार है :—

"वादविकुर्वणत्वादि लब्धीविरहे श्रुते कनीयसिच जिनकल्प मनःपर्यव विरहेऽपि न सिद्धि विरहोऽस्ति ।"

—वाद वैक्रिय लब्धि का अभाव, अल्पश्रुतत्व जिन कल्प एवं मनःपर्यव का अभाव होने पर भी सिद्धि का अभाव नहीं है ।

दूसरे ग्रन्थ की इस गाथा में से जो स्त्रियों की वैक्रिय लब्धि का अभाव कहा गया है, वह दूसरों का मत है जो बिना विचार किये ही कहा गया मालूम होता है । क्योंकि ऐसा मान लेने पर प्रज्ञापना सूत्र की टीका के तृतीय अल्पबहुत्व पद में स्त्रियों के वैक्रिय समुद्धात का जो कथन आया है, वह असंगत हो जाता है ।

शंका—अट्ठाईस लब्धियों के अतिरिक्त और भी कोई लब्धियां हैं या नहीं ?

Aho ! Shrutgyanam

समाधान—इनके अतिरिक्त अन्य लब्धियां और भी हैं। प्रवचन सारोद्धार टीका में कहा है कि—

"एमाई हुंति लद्धिओ।"

अर्थात्—२८ आदि लब्धियां होती हैं। यहां आदि शब्द से यह जानना चाहिये कि अन्य जीवों को शुभ-शुभतर एवं शुभतम परिणामों से तथा असाधारण तप के प्रभाव से नाना-प्रकार की ऋद्धि विशेष लब्धियां होती है।

प्रश्न ७२:-अणिमादि आठ सिद्धियों का समावेश कौनसी लब्धि में होता है?

उत्तर— इन सिद्धियों का समावेश वैक्रियलब्धि के अन्तर्गत होना माना जाता है।

इस सम्बन्ध में योग शास्त्र वृत्ति में श्री हेमचन्द्राचार्य ने इस प्रकार कहा है :—

यथा :—'वैक्रिया लब्धयोऽनेकधा-अणुत्व, महत्व लघुत्व गुरुत्व प्राप्तिकाम्मेशित्वशित्वाऽप्रतिघातित्वान्त-र्धानत्वकामरूपादि भेदात्।"

—वैक्रिय लब्धियाँ अणुत्वादि भेद से अनेक प्रकार की हैं, अणुत्वादि भेद की विवेचना क्रम से इस प्रकार है :—

अणुत्व—छोटे-से-छोटा शरीर बनाना, जिससे कमलतन्तु के छिद्र में भी प्रवेश करके चक्रवर्ती के भोगों का उपभोग किया जा सकता है।

महत्व—मेरु से भी बड़ा शरीर बनाने का सामर्थ्य।

Aho ! Shrutgyanam

लघुत्व--पवन से भी अधिक हलका शरीर बनाना ।

गुरुत्व--वज्र से भी अधिक भारी ऐसा शरीर बनाना जो प्रकृष्ट बलवाले इन्द्रादि देवताओं को भी दुःसह हो ।

प्राप्ति--भूमिस्थित अंगुली के अग्रभाग से मेरुपर्वत के अग्रभाग तथा प्रभाकरादि को स्पर्श करना ।

प्राकाम्य--जल में, भूमि के समान प्रवेश किये बिना ही चलने की शक्ति एवं भूमि में जल के समान डूबने तथा ऊपर आने की शक्ति होना ।

ईशित्व--तीनों लोकों की प्रभुता, तीर्थंकर एवं इन्द्र की ऋद्धि को विकुर्वित करने की शक्ति ।

वशित्व--समस्त जीवों को वश में करने की शक्ति प्राप्त करना ।

अप्रतिघातित्व--पर्वतों के अन्दर भी निःशंक होकर चलना ।

अन्तर्धान--अदृश्य होने की शक्ति ।

कामरूपित्व--एक साथ ही विविध प्रकार के रूप बनाने की शक्ति, इत्यादि ये महान् ऋद्धियां हैं । यहां 'एमाईत्ति' में आदि शब्द से ये लब्धियां ग्रहण की गई है ।

प्रश्न ७३--तेजो लेश्या कितने क्षेत्रों में रहे हुए पदार्थों को जला सकती है ?

उत्तर-- श्री भगवती सूत्र की टीका में श्री गौतम स्वामी के वर्णन के अन्तर्गत अनेक योजनाश्रित द्रव्यों को तेजोलेश्या जला सकती है । ऐसा ही प्रवचन सारोद्धार टीका में भी कहा है ।

Aho ! Shrutgyanam

शंका—कहीं, तेजो लेश्या का सामर्थ्य सोलह देश को जलाने का लिखा है, यह कैसे ?

समाधान—यह भी श्री भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक के अनुसार ही कहा गया है। श्री भगवती सूत्र में सोलह देश जलाने की शक्ति तेजोलेश्या की कही है, वह इस प्रकार है—

पाठ—"अज्जोत्ति समणे भगवं महावीरे समणेणिग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासि जाव तिण्णं अज्जो गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं ममवहाए सरीर गंसि तेयं णिसट्ठे सेणं अलादि पज्जंते सोल्सगण्हं जणवयाणं तं० अंगाणं वंगाणं कलिंगाणं मगहाणं मलहाणं मलयाणं मालवगाणं अच्छाणं वच्छाणं कच्छाणं पाढाण लाढाणंवज्जीणं मोलीणं कोसल-गाणं आवाहाणं संभुत्तराणं घाताए वहाएउच्छादणयाए भासीकरणयाए त्ति"

—श्रमण भगवान् महावीर श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाकर कहते हैं कि—हे आर्य ! मंखलि पुत्र गोशाल के द्वारा मेरे वध के लिये उसके शरीर में रहा हुआ जो तेज निकाला गया वही तेज सोलह देशों को जला सकता है। उन १६ देशों के नाम इस प्रकार हैं— १ अंग, २ बंग, ३ कलिंग, ४ मगध, ५ मलय, ६ मालव, ७ अच्छ, ८ वच्छ. ९ कच्छ, १० पाढ, ११ लाढ, १२ वर्जी, १३ मोली, १४ कोशल, १५ आवाह एवं १६ संभू-त्तहर। उसके शरीर का वही तेज इन सोलह देशों के घात, वध, नाश एवं भस्म करने में समर्थ है। तेजोलेश्या का यह सामर्थ्य सामान्यतया नहीं कहा गया है, किन्तु विशेष विवक्षा के साथ ही कहा गया मालूम होता है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न ७४:—"**सव्वस्स उण्हसिद्धं रसाइ आहार पाग जणगं च तेयगलद्धि निमित्तं च तेयगं होइ नायव्वं ॥**"

—समस्त जीवों के लिये उष्णता से सिद्ध होने वाले रसादि आहार की परिपक्व स्थिति उत्पन्न करने वाला तेज तेजसलाब्धि का कारण भूत होता है, ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार जीवाभिगम वृत्ति के उल्लेखानुसार तेजोलेश्या तो तेजस् शरीर से प्रगट होती है, परन्तु शीत लेश्या कहाँ से प्रगट होती है ?

उत्तर—शीतलेश्या भी तेजस् शरीर से ही प्रगट होती है। श्री तत्वार्थ सूत्र की टीका में कहा है कि—

यथाः—"यदा उत्तरगुण प्रत्यया लब्धि रुत्पन्ना भवति तदा परं प्रतिदाहाय विसृजति रोष विषादमानो गोशालादिवत् प्रसन्नस्तु शीत तेजसा अनुगृह्णाति ।"

—जब उत्तर गुण प्रत्यय वाली लब्धि उत्पन्न हो तब दूसरों को जलाने के लिये गोशाल के समान क्रोधमयी तेजोलेश्या प्रगट होती है और जब प्रसन्न हो तो शीतलेश्या से दूसरों का उपकार करती है।

लोक प्रकाश में भी इसी प्रकार कहा है :—

यथा :—अस्मादेव भवत्येवं शीतलेश्या विनिर्गतिः ।
स्यातां च रोषतोषाभ्यां निग्रहानुग्रहान्वितः ॥

—तेजस् शरीर से ही शीतलेश्या निकलती है, जो क्रोध एवं प्रसन्नता से क्रमशः निग्रह तथा अनुग्रह करती है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न ७५:–आहारक लब्धिधर मुनि एवं विद्याधर आदि अपनी लब्धि से उत्कृष्टतापूर्वक तिर्यक् लोक में कितने दूर जाते हैं ?

उत्तर— आहारक लबधिधर उत्कृष्ट महाविदेह तक, विद्याचारण मुनि एवं विद्याधर नन्दीश्वर द्वीप तक, जंघा चारण रुचक द्वीप तक तिर्यक्-लोक में जाते हैं।

संग्रहणी टीका में कहा है कि—

"औदारिकस्य तिर्यग उत्कृष्टो विषयो विद्याधरान् आश्रित्याऽऽनन्दीश्वरात्, जङ्घाचारणात्, प्रत्यारूचक पर्वतात् ऊर्ध्वम् उभयान् प्रत्यापण्डुक वनात् ।" वैक्रियस्याऽसंख्येया द्वीप समुद्राः, आहारकस्यम हाविदेहः, तैजसकर्मणयोः सर्वलोकः, इत्यादि ।

—औदारिक शरीर का तिर्यक् उत्कृष्ट विषय विद्याधरों को आश्रित कर नन्दीश्वर द्वीप तक, जंघाचारण मुनियों को आश्रित कर सचक द्वीप तक, एवं ऊँचा तो दोनों को आश्रित कर पाण्डुक वन तक, वैक्रिय शरीर को आश्रित कर तिर्यक्-विषय असंख्यात द्वीप समुद्र तक, आहारक-शरीर को आश्रित कर महाविदेह तक एवं तेजस कार्मण शरीर को आश्रित कर समस्त लोक तक समझना चाहिये।

श्री जिनलाभसूर्यादिसद्गुरूणामनुग्रहात् ।
क्षमाकल्याण गणिना निर्मिते स्मृति हेतवे ॥ १ ॥
प्रश्नोत्तर सार्धशते, पूर्वार्धं परिपूर्णताम् ।
गतं स्यादत्र यः कश्चिद् दोषःशोध्यःसकोविदैः ॥२॥

Aho ! Shrutgyanam

—श्री जिनलाभ-सूरि आदि सद्गुरुजनों के अनुग्रह से क्षमा कल्याण गणि के द्वारा अपनी स्मृति के लिये निर्मित प्रश्नोत्तर सार्धशतक का यह पूर्वार्ध परिपूर्णता को प्राप्त हुआ है। इसमें जो कुछ भी दोष (त्रुटि) हो उसका संशोधन विद्वज्जन करें ! (ऐसी प्रार्थना है।)

इति प्रश्नोत्तर सार्धशतक पूर्वार्धम्

——❀——

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्नोत्तर सार्धशतकम्

(उत्तरार्द्धम्)

[प्रश्नोत्तर ७६ से ९९ तक]

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्नोत्तार सार्धशतकम्

(उत्तारार्द्धम्)

प्रणम्य परमानन्दं सम्पन्नं नाभिनन्दनम् ।
संग्रहेऽथोत्तरार्धस्य यते सद्बोध वृद्धये ।।

—परमानन्द से सम्पन्न नाभिनन्दन श्रीऋषभदेव स्वामी को नमस्कार करके सद्बोध की वृद्धि के लिये अब मैं उत्तरार्ध के संग्रह में प्रयत्न करता हूँ ।

प्रश्न ७६:-वर्तमान समय में शिष्यादि के दीक्षादि कार्यों में जिन प्रतिमाओं पर गुरुजन वासक्षेप करते हैं, यह द्रव्यस्तव होने से साधुओं को करना उचित है या अनुचित ?

उत्तर— दीक्षादि विधि में भगवान की प्रतिमाओं पर द्रव्य-स्तव होने पर भी वासक्षेप करना साधुओं के लिये भगवान् ने विधेय रूप में आज्ञा दी है। सर्वथा निषेध नहीं किया है, अतः उचित है ।

श्री हरिभद्रसूरि ने पञ्चवस्तुक शास्त्र में दीक्षा विधि प्रकरण में ऐसा लिखा है-

यथाः—तत्तो य गुरुवासे गिण्हिय लोगुत्तमाण पाएसु ।
देइय तओ कमेणं सव्वेसिं साहुमाईणं ।।

Aho ! Shrutgyanam

—इसके पश्चात् गुरुमहाराज वासक्षेप लेकर भगवान् के चरणों पर डाले बाद में अनुक्रम से साधु आदि पर डाले। गुरु महाराज स्वयं निर्ग्रन्थ होते हैं, अतः श्रावक का लाया हुआ वासक्षेप करना चाहिये।

प्रश्न ७७—जम्बूद्वीप में स्थित जंघाचारण आदि साधु, जब चैत्यवन्दन के लिये रुचकद्वीप आदि में जाते हैं, तब मध्य में लवण समुद्र के अन्तर्गत सोलह हजार ऊँचो लवण समुद्र की शिखा का कैसे उल्लंघन करते हैं, क्योंकि ऐसा करने से सचित्त जल के स्पर्श होने की सम्भावना रहती है ?

उत्तर-- वे साधु-मुनिराज प्रारम्भ से ही तिरछे नहीं जाते हैं, किन्तु प्रारम्भ में साधिक सतरह हजार योजन ऊँचे जाकर बाद में तिरछे जाते हैं, जिससे जलस्पर्श नहीं होता।

श्री समवायांग सूत्र की टीक कहा है कि--

यथा :--"लवणेणं समुद्दे सत्तर स जोयण सहस्साइं सव्वग्गेणं पण्णत्ते इमीसे णं रयणप्प भाए पुढवीए बहुसम रमणिज्जाओ भूमि भागाओ सातिरेगाइं सत्तर सजोयण सहस्साइं उड्ढं उप्पइत्ता तत्तो पच्छा चारणाणं तिरिअं गई पवत्तइ त्ति सूत्रं चारणाणंति जंघा चारणाणं विद्याचारणाणं तिरियंति तिर्यक् रुचिकादि द्वीपगमनाय इति तद्वृत्तिः।"

Aho ! Shrutgyanam

--लवण समुद्र में कुल सत्तर हजार योजन की शिखा कही गई है। इस रत्न प्रभा पृथ्वी के समभूभाग से कुछ अधिक सत्तर हजार योजन ऊँचे जाकर बाद में चारण आदि मुनि रुचक द्वीप में जाने के लिये तिरछी गति करते हैं।

प्रश्न ७८—साधुओं को गृहस्थ के पास से फाड़ा हुआ ही वस्त्र माँग कर धारण करना उचित है; किन्तु यदि फाड़ा हुआ वस्त्र न मिले तो स्वयं फाड़े कि नहीं !

उत्तर— प्रमाण युक्त फाड़ा हुआ वस्त्र न मिले तो साधु स्वयं भी फाड़ले। यह बात बृहत्कल्पवृत्ति के द्वितीय खण्ड में शंका समाधान पूर्वक कही है।

बृहत्कल्पवृत्ति का वह पाठ इस प्रकार है :—

यथा :—"नो कप्पइ निग्गंथाणं वा निग्गंथीण वा अभिन्नाइं वत्थाइं धारित्तए ॥"

—"निर्ग्रन्थ साधु साध्वियों को बिना फाड़ा गया वस्त्र धारण करना या लेना कल्पता नहीं है।" इसलिए फाड़ा हुआ वस्त्र ही ग्रहण करना चाहिए। यदि ऐसा वस्त्र न मिले तो जितने प्रमाण से अतिरिक्त हेय हो उसे स्वयं फाड़ कर प्रमाण युक्त करे।

यहां कुछ लोग यह शंका करते हैं कि वस्त्र फाड़ने में शब्द उत्पन्न होता है, जिससे सूक्ष्म पंख वाले जीव उड़ते हैं। ये दोनों ही (निकले हुए शब्द एवं जीव) लोक के अन्त तक जाते हैं। अथवा शब्द से प्रेरित एवं चालित होकर अन्य

Aho ! Shrutgyanam

पुद्गल भी लोक के अन्त तक पहुंच जाते हैं और उनके देह के चलने से पवन आदि फैलते हुए समग्र लोक में व्याप्त हो जाते हैं उससे सूक्ष्म जीवों की विराधना (हिंसा) होती है। इसलिए इस आरम्भ को सावद्य जान कर जैसा वस्त्र मिले वैसा ही काम में लेना चाहिये, फाड़ना नहीं। श्री भगवती सूत्र में भी हिलने डुलने (चलने-फिरने) वाले जीव के लिये मोक्ष का निषेध कहा है। संयम के साधन भूत शरीर के निर्वाह के लिये भिक्षा-भ्रमण, (गोचरी जाना) भोजन, शयन आदि क्रियाओं का परिहार तो अशक्य होने से सर्वथा निषेध नहीं किया जा सकता। इसलिये वस्त्र फाड़ने की क्रिया साधु-साध्वियों को नहीं करना चाहिये। इस प्रकार वादियों के द्वारा अपना पक्ष स्थापित करने के पश्चात् सूरिजी महाराज ने समाधान करते हुए कहा कि—

"आरम्भमिट्ठो जई"

—यत्ना पूर्वक किया हुआ आरम्भ इष्ट है। हे वादिन्! वस्त्र छेदते (फाड़ते) हुए एक बार थोड़ा दोष लगता है, परन्तु वस्त्र न फाड़ने पर तो प्रमाण से अधिक वस्त्र की पडिलेहण करते हुए पृथ्वी पर स्पर्श एवं हलन-चलन होनेसे प्रतिदिन दोष लगते हैं तथा उन वस्त्रों को धारण करने पर विभूषा आदि जो दोष लगते हैं उनका तो तू विचार कर!

शंका-वादी पुनः कहता है:—यदि वस्त्र फाड़ने में तुम्हारे मत से भी एकबार दोष लगता है तो ऐसे वस्त्र का ही त्याग कर देना चाहिये। गृहस्थों ने अपने लिये जो वस्त्र फाड़े हों वे ही ग्रहण करना उचित है।

Aho ! Shrutgyanam

समाधान :—इसका समाधान करते हुए पुनः कहा कि—

"घेतव्वगं" —

यदि फाड़े हुए वस्त्र का शोध किया जाय तो उसके लिये लम्बा समय लगने के कारण सूत्र एवं अर्थ पौरसी (स्वाध्याय) की हानि होती है। इसी प्रकार जो यह वस्त्र छेदन रूप दोष है, वह पडिलेघाण शुद्धि आदि सेबहुगुणवाला है; इसलिये उसी समय साधु वस्त्र को प्रमाण युक्त कर लेते हैं, जिससे सूत्रार्थ व्याधातिक किसी प्रकार का दोष नहीं लगता। जिस प्रकार यत्नपूर्वक किया गया आहार निहारादि विषयक समस्त योग तुम्हारे मत से साधु के लिये निर्दोष है, उसी प्रकार उपकरण आदि का छेदन भी यदि यतनापूर्वक किया जाय तो निर्दोष ही होता है, ऐसा मानना चाहिये।

द्रव्य एवं भाव से हिंसकत्व की स्थिति में चार भंग (भेद) होते हैं :—(अर्थात् हिंसा के चार भेद होते हैं) १. द्रव्य से की गई हिंसा, भावसे नहीं। २. भाव से की गई हिंसा, द्रव्य से नहीं। ३. द्रव्य एवं भाव से की गई हिंसा। ४. द्रव्य एवं भाव से भी न की गई हिंसा। यहां प्रथम भंग (भेद) के अनुसार हिंसा करने वाले को भी भगवान ने अहिंसक ही कहा है। इसी प्रकार दोनों ओर से फाड़ा गया वस्त्र लक्षण रहित होता है तथा मध्य में ऊपर से फाड़ा गया वस्त्र भी लक्षण रहित ही होता है, ऐसा वस्त्र लेने से तो उलटी ज्ञानादिक की हानि होती है, किसी प्रकार का गुण नहीं होता। ऐसे वस्त्र को लेना उचित नहीं। किन्तु प्रशस्त वर्ण, संस्थान आदि लक्षण युक्त उपाधि ही साधुओं के ज्ञान दर्शन-चरित्र की वृद्धि करने वाली होता है, अतः लक्षणरहित उपाधि नहीं लेना चाहिये। इससे

Aho ! Shrutgyanam

यह सिद्ध हुआ कि विधिपूर्वक इस रीति से वस्त्र छेदन करना कि जिससे वह प्रमाण युक्त हो और यदि कोई साधु शोभा के लिये वस्त्र धोता है, धारण करता है, घिसता है या स्वच्छ करता है तो प्रायश्चित्त होता है, इसी प्रकार मूर्च्छा वश जो काम में नहीं लेता है तो भी प्रायश्चित्त होता है। इस सम्बन्ध में यदि और विस्तृत विवेचना की इच्छा हो तो वही टीका देखनी चाहिये।

प्रश्न ७९:—साध्वियां स्वयं अपने लिये वस्त्रों की याचना करे या साधु गृहस्थ से लेकर उनको देवे ?

उत्तर— साध्वियों को उत्सर्ग से तो वस्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिये किन्तु गुरु (साधु) ही उनको देवे। यदि साधु नहीं हों तो स्वयं भी वे यतना पूर्वक गृहस्थ से याचना कर सकती हैं।

बृहत्कल्प की टीका में कहा है कि—

"निर्ग्रन्थीभिरात्मना गृहस्थेभ्यो वस्त्राणि न ग्राह्याणि, किन्तु गणधरेण तासां दातव्यानि"

—"साध्वियों को स्वयं गृहस्थों से वस्त्र ग्रहण नहीं करना चाहिये, किन्तु आचार्य ही उनको वस्त्र देवे।"

वस्त्र लेने की विधि इस प्रकार है:—

सत्त दिवसे ठवित्ता थेरपरिच्छाऽपरिच्छणे: गुरुगा।
देइ गणी गणिणीए गुरुगा समदाण अद्दाणे॥

—स्थविर सात दिन तक वस्त्र को रखकर परीक्षा करे, परीक्षा यदि नहीं करे तो चतुर्गुरु प्रायश्चित आता है। उस परीक्षित वस्त्र को आचार्य प्रवर्तनी को देवे एवं प्रवर्त्तिनी

Aho ! Shrutgyanam

साध्वियों को देवे। स्वयं देवे तो चतुर्गुरु प्रायश्चित आता है। साधु के अभाव में साध्वियों को स्वयं वस्त्रोत्पादन कर किस प्रकार क्या करना इस सम्बन्ध में यह कहा है।

"सत्तदिवसे ठवित्ता कप्पंते थेरिया परिच्छंति।
सुद्धस्स होइ धरणा असुद्धए छेत्तु परिट्ठवणा॥

—स्थविर सात दिन तक नए वस्त्र रक्खे। जो यदि रखे बिना काम में लेवे तो चतुर्गुरु प्रायश्चित्त एवं आज्ञाभंग आदि दोष लगते हैं। इसलिये सात दिन तक वस्त्र को रखकर धोना चाहिये। धोने के बाद स्थविर उस वस्त्र को ओढ़ कर परीक्षा करे। इसके पश्चात् शुद्ध हो तो वस्त्र धारण करे एवं अशुद्ध होतो अशुद्ध भावों को उत्पन्न करने वाले उस वस्त्र को फाड़कर परिष्ठापन करदे। (परष्दे)। वापरा हुआ हो तो धोना चाहिये एवं वापरा हुआ न हो परन्तु गन्ध आती हो तो भी धोना चाहिये।

इस प्रकरण को विस्तार पूर्वक देखने की इच्छा रखने वाले को वही ग्रन्थ देखना चाहिये, जिसमें इसका उल्लेख किया गया है।

प्रश्न ८०:-जिस क्षेत्र में साधु चातुर्मास में रहे हों अथवा जिस क्षेत्र में दूसरे संविग्न साधुओं ने चतुर्मास किया हो वहां वस्त्रादिक कितने काल के बाद ग्रहण करना चाहिये?

उत्तर— ऐसे क्षेत्र में साधुओं को दो मास के बाद वस्त्रादिक ग्रहण करना चाहिये और यदि कोई कारण उपस्थित हो जाय तो दो मास के अन्दर भी ग्रहण किये जा

Aho ! Shrutgyanam

सकते हैं। जैसा कि बृहत्कल्प सूत्र की टीका के द्वितीय खण्ड में कहा है कि:—

"सक्खेते परक्खेते वा दो मासे परिहरितु गेण्हंति।
जं कारणेण णिग्गयं तं पि बहिज्झोमियं जाणे॥

—अपने ही क्षेत्र में यदि चातुर्मास किया हो एवं दूसरे क्षेत्र में दूसरे संविग्नों ने चातुर्मास किया हो तो स्वक्षेत्र एवं परक्षेत्र में दूसरे मास के पश्चात् तीसरे मास में वस्त्रादि ग्रहण करना चाहिये। कारणवश दो मास के मध्य में ग्रहण किये जा सकते हैं।

प्रश्न ८१:-साधुओं ने जिस स्थान पर चातुर्मास किया हो उस स्थान पर वे कितने मास के बाद पुनः रह सकते हैं?

उत्तर :— साधुओं ने जिस स्थान पर चातुर्मास किया हो, उस स्थान पर वे दो तीन मास बाद पुनः रह सकते हैं, पहिले नहीं। यह बात आचारांग सूत्र वृत्ति के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के द्वितीय अध्ययन एवं उसके द्वितीय उद्देशक में कही गई है कि साधु भगवन्त ग्राम नगरादि में अन्य समय में एक मास रह कर विहार करे एवं बाद में एक मास दूसरे स्थान पर रहकर पुनः उसी स्थान पर आकर रह सकते हैं। परन्तु जहां चातुर्मास किया हो, उस क्षेत्र में तो दो तीन मास बाद ही रहा जा सकता है, उससे पहिले नहीं। दो तीन मास का अन्तर दिये विना यदि कोई चातुर्मास वाले स्थान पर आकर रहता है तो वह स्थान उपस्थान क्रिया के दोष से दूषित हो जाता है, इसलिये वहां रहना उचित नहीं।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न ८२:–जिस प्रकार साधुओं के नवकल्पी विहार है, उसी प्रकार साध्वियों के भी होता है या कोई अन्य प्रकार है ?

उत्तर :— साधुओं के आठ मास कल्प एवं नवमा वर्षाकल्प अर्थात् चातुर्मास इस प्रकार नवकल्पी विहार होता है एवं साध्वियों के तो एक वर्षाकल्प और चार मास कल्प इस प्रकार पंच कल्पी विहार होता है, क्योंकि इनके दो महीने का कल्प होता है। जैसा कि पंच कल्प चूर्णि में कहा है कि—

"साहूहिं नव वसही ओ घेतव्वाओ अट्ठ उउबद्धे एगा वासाणं वसही इत्यादि, अज्जाणं पुण पंच वसही ओ घेतव्वाओ कम्हा जम्हा तासिं दुमासं कप्पो ॥

—साधुओं को नववसति ग्रहण करनी चाहिये। आठ ऋतुबद्ध काल में याने शेष समय में, एवं एक वर्षाकाल में। साध्वियों को पाँच वसति ग्रहण करनी उचित हैं, क्योंकि उनके लिये दो मास का मासकल्प कहा गया है। इस प्रकार बृहत्कल्प में भी कहा है। इसके अतिरिक्त विहार करने की इच्छा वाले साधु-साध्वी वसति (स्थान) का प्रमार्जन कर पुनः विहार करे ऐसा ओघानिर्युक्ति में उल्लेख है।

यथा;– "संमज्जिअ पडिस्सया पुव्वंति" इत्यादि ।

—प्रथम उपाश्रय का परिमार्जन-संमार्जन करके बाद में उपधि ले एवं शय्यातर को कहकर पुनः साधु साध्वी को विहार करना चाहिये।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न ८३:–किसी क्षेत्र में कोई साधु। रहते हों एवं वहां यदि कोई अतिथि (महमान) के रूप में साधु आजायँ तो वहां रहे हुए साधुओं को उनके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये।

उत्तर:— यदि भोजन करते समय नवीन अतिथि साधु आ जावे तो उनके मुख से निस्सही शब्द सुनने के पश्चात् मुख में रखे हुए ग्रास को खाकर पात्र में रखे हुए अन्न को छोड़ देना चाहिये। बाद में आगन्तुक साधु को यथोचित विधि से संक्षेप में आलोचना देकर मंडली में सामूहिक रूप से भोजन करे। यदि पूर्वानीत आहार में दोनों ही तृप्त हो जावें तो ठीक अन्यथा आगन्तुक साधुओं को आहार कराके अपने लिए पुन: दूसरा आहार ले आना चाहिये।

शंका-—इस प्रकार आगन्तुक साधुओं को कितने दिन तक आहार लाकर देना चाहिये ?

समाधान—

तिन्नि दिणे पाहुण्णं सव्वेसिं असहबाल बुड्ढाणं।
जे तरुणा सग्गामे वत्थव्वा बाहिं हिंडंति॥

—यदि आगन्तुक साधु असमर्थ बाल एवं वृद्ध हों तो तीन दिन तक उसको आहारादि लाकर देना चाहिये। इसके पश्चात् आगन्तुक साधु अपने ग्राम में गोचरी के लिये जावे और पूर्व में रहे हुए साधु गाँव से बाहर गोचरी लेने जावें। यदि वे आगन्तुक साधु अकेले गोचरी जाने में समर्थ न हो तो दोनों समूहों में से एक एक साधु मिलकर जावे। कहा भी है कि—

Aho ! Shrutgyanam

"संभोइआ ते चेवत्ति ।"

—यदि संभोगिक-अर्थात् एक समाचारी वाले साधु वहाँ हों तो वहां रहे हुए साधु ही गोचरी लावे । यदि संभोगिक के पास नवागन्तुक साधुओं का कोई भक्त श्रावक आकर यह कहे कि मेरे घर साधु को गोचरी के लिये भेजो तो वहां यह कहा जाय कि यहां रहने वाले साधु हो गोचरी के लिए आवेंगे । इतना कहने पर भी यदि श्रावक अधिक आग्रह करे तो "वत्थव्वेणं" वहां रहने वाले साधु के साथ एक साधु को जाना चाहिये । क्योंकि वहां रहने वाला साधु ही न्यूनाधिक वस्तु ग्रहण करने में आगन्तुकों का प्रमाण होता है । इस प्रकार यहां ओघनिर्युक्ति सूत्र की टीका का अर्थ संक्षेप में दिया गया है उसका विचार कर प्राघूर्णक विधि जाननी चाहिये। यह विधि एक समाचारी वाले साधुओं को आश्रित कर कही गई है । भिन्न समाचारी वाले साधुओं को तो पाट, पाटला आदि के लिये निमन्त्रित करना चाहिये, आहारादि के लिये नहीं । इस सम्बन्ध में आचारांग सूत्र-द्वितीय स्कन्ध-सप्तम-अध्ययन-प्रथम उद्देश की टीका में कहा है कि—

"असंभोगिकान् पीठ फलकादिना उपनिमन्त्रयेत् यतः तेषां तदेव पीठ फलकादि संभोग्यं नाशनादिकमिति ।"

—भिन्न समाचारी वाले साधुको पाट पाटला आदि के लिए ही निमन्त्रित करना, क्योंकि उनके लिये यही संभोग्य है आहारादि नहीं ।

प्रश्न ८४—साधु साध्वी रात्रि में उपाश्रय के द्वार बन्द करे कि नहीं ?

Aho ! Shrutgyanam

उत्तर:-- साध्वियों को रात्रि में उपाश्रय के द्वार अवश्य बन्द करना चाहिये। किन्तु जिनकल्पी साधु कदापि द्वार बन्द नहीं करे, स्थविरकल्पी कारणवश द्वार बन्द कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में बृहद्भाष्य की टीका में कहा है कि—

"साध्वीभिः निशि अवश्यं कपाटादिना वसति द्वारं स्थगनीयं अन्यथा प्रायश्चिताऽऽपत्तेः।" जिन-कल्पिकास्तु सर्वथा द्वारं नैव स्थगयन्ति निरपवादा-नुष्ठान परत्वात् तेषां, तथा च जिनानां भगवता-मियमाज्ञाऽस्ति यत् स्थविर कल्पिकः कारणे यत-नया द्वारं स्थगयन्ति।"

(इसका आशय ऊपर की पंक्तियों में दे दिया गया है।)

शंका-—द्वार बन्द करने का क्या कारण है ?

समाधान—

पडिणीअ तेण सावय उब्भामगगोण साणणप्पज्ज।
सीयं व दुरहियासं दीहा पक्खी वा सागरिए॥

—उपाश्रय के द्वार यदि खुले हों तो विरोधी मनुष्य प्रवेश करके हनन अथवा नाश कर सकता है, इसी प्रकार उपधि चोर, शरीरचोर, सिंह, व्याघ्र, आदि हिंसक जन्तु, परदारिक, गाय, बैल एवं श्वान आदि भी प्रवेश कर सकते हैं। "अणप्पजत्ति" व्यग्रचित्त परवशात्मा साधु, यदि द्वार खुले हों तो निकल कर जा सकता है। इसके अतिरिक्त असह्य हिमकण संयुक्त अत्यधिक शीत भी पड़ता है, सर्प, कौए, कबूतर आदि

Aho ! Shrutgyanam

के प्रवेश करने के साथ ही उपाश्रय के खुले हुए द्वार देखकर कोई भी गृहस्थ वहाँ आकर शयन कर सकता है अथवा विश्राम ले सकता है। इन कारणों से उपाश्रय के द्वार बन्द किये जाते हैं।

प्रश्न ८५:—अधिक दिनों तक उल्लंघन करने योग्य मार्ग में साधु अपने साथ कुछ भी पाथेय (मार्ग के लिए भोज्य पदार्थ) रखते हैं कि नहीं?

उत्तर:—उत्सर्गवश नहीं रखते हैं, किन्तु अपवाद से तो रख सकते हैं। अन्यथा प्रायश्चित आता है। इस संबंध में बृहत्कल्प भाष्य में कहा है कि—

"अग्गहणे कप्परस उ इत्यादि छिन्ने आछिन्ने वा पथि यदि अध्वकल्पं न गृह्णन्ति तदा चतुर्गुरवः।"

अधिक दिनों तक उल्लंघन करने योग्य चालू अथवा जिसमें कभी कोई नहीं चला हो ऐसे मार्ग में अपवाद से मार्ग में कल्पने योग्य पाथेय न ग्रहण करे तो चतुर्गुरु (उपवास) का प्रायश्चित आता है।

प्रश्न ८६:—गोचरी आदि के लिये गये हुए साधु गृहस्थ के घर का द्वार खोलें या नहीं।

उत्तर—उत्सर्ग से तो साधु गृहस्थ के घर का द्वार नहीं खोले परन्तु कारणवश खोलना अपवाद मार्ग है। इसी आशय को व्यक्त करते हुए श्री आचारांग सूत्रवृत्ति के द्वितीय स्कन्ध के अन्तर्गत प्रथम अध्ययन के पञ्चम उद्देश में इस प्रकार कहा है:—

Aho ! Shrutgyanam

यथा :-–"उत्सर्गतः साधुगृह द्वारं नोद्घाटयेत् सति कारणे अपवादम् ।"

इस सम्बन्ध में और भी यह कहा है कि वह साधु जिनका वह घर हो उनके सम्बन्धियों से अवग्रह की याचना करके प्रमार्जन करे एवं बाद में घर का द्वार खोले अर्थात् स्वतः द्वार को खोल कर प्रवेश नहीं करना चाहिये । यदि रुग्ण आचार्यादि के योग्य कोई प्रायोगिक द्रव्य वहां मिलता हो, वैद्य वहाँ रहता हो, उपचार के निमित्त दुर्लभ द्रव्य यदि मिलने की आशा हो, दुष्काल का समय हो तो इन कहे हुए कारणों के उपस्थित होने पर बन्द द्वार के समीप खड़े रहकर शब्द करे अथवा स्वयं विधि सहित द्वार खोलकर प्रवेश करे ।

प्रश्न ८७-कुछ निह्नव पाखण्डी अपने भोजन के पात्र में ही मूत्रोत्सर्ग कर उससे पात्र एवं वस्त्रादि धोते हैं । यह उचित है अथवा अनुचित ?

उत्तर— इस प्रकार का कृत्य करना अनुचित ही है । ऐसा करने से वृहत्कल्प भाष्यवृत्ति के अनुसार प्रायश्चित आता है । इस सम्बन्ध में यह पाठ है कि—

"वड्गा अद्धाणे वा" यश्च मोकेन पात्रकमाचामति तस्यापि चतुर्गुरवः प्रायश्चित्तं, कुतः इत्याह–यदि मोकेन धावति, तदाऽशैक्षाणामन्यथा भावो विपरिणमनं भवेत् विपरिणताश्च प्रतिगमनादीनि कुर्युः ।।"

—जो साधु मात्रा से पात्र को धोते हैं उनको चतुर्गुरु प्रायश्चित्त आता है, क्योंकि ऐसा करने से नवदीक्षितों की

Aho ! Shrutgyanam

भावना चारित्र्य पालन से गिर जाती है और वे दीक्षावस्था को भी छोड़ देते हैं।

इसी प्रकार उक्त कृत्य करने से पात्र में दुर्गन्ध भी आती है एवं भिक्षा के लिये पात्र आगे करने पर दुर्गन्धि वश लोग निन्दा करते हुए कहते हैं कि इन साधुओंने हड्डियों की माला पहिनने वाले कापालिकों को भी जीत लिया है, जिससे कि ये मात्रा से पात्र धोते हैं। इस प्रकार श्रावकों की भी भावना बदल जाती है।

इसके अतिरिक्त आचारांगादि में जो मोक प्रतिमा सुनी जाती है वह तो मात्र अभिग्रह रूप ही है, प्रवाह रूप नहीं। अतः उक्त उल्लेख से किसी प्रकार का विरोध नहीं होता।

प्रश्न ८८:—बृद्ध साधु छोटे साधुओं को तथा साधु साध्वियों को एवं पार्श्वस्थ आदि को वन्दन करे कि नहीं ?

उत्तर— उत्सर्ग से तो वृद्ध साधु लघु साधु को तथा साध्वियों को एवं पार्श्वस्थ आदि को वन्दन नहीं करे परन्तु अपवाद से वन्दन करना भी उचित है। ऐसा श्री वृहत्कल्प भाष्य में कहा है। संक्षेप में वह पाठ इस प्रकार है।

"अंतो इत्यादि"

साधु वेश में रहे हुए हों तो वन्दन को आश्रित कर **भजना** होती है। भजना कैसे होती है ? इसका समाधान इस प्रकार है कि "ओमिति" जो दीक्षा पर्याय में छोटा हो उसको भी प्रायश्चित आदि कार्य के निमित्त वन्दन करना चाहिये। बादमें दूसरे समय न करे। साध्वियों को भी उत्सर्ग से वन्दन नहीं करना चाहिये अपवाद से तो यदि कोई बहुश्रुत महत्तरा अपूर्व

Aho ! Shrutgyanam

श्रुतस्कन्ध को धारण करती है और उससे श्रुतस्कन्ध ग्रहण करना हो तो उद्देश समुद्देशादि के समय साधु उसको व्यवहार फेटा वन्दन करे। न केवल अन्दर ही किन्तु साधु यदि श्रेणी से बाहर रहे हों तो भी उनके वन्दन को आश्रित कर भजना मानना चाहिये। अतः उनको भी वन्दन करना उचित है। यदि उन्हें वन्दन न किया जाय तो महान् दोष होता है, जैसे कि अजापालक उपाध्याय को वन्दन न करने से अगीतार्थ शिष्य दोष को प्राप्त हुए।

प्रश्न ८९:—साधु साध्वी एवं गृहस्थ आदि का परस्पर वस्त्रादि देने लेने का व्यवहार किस प्रकार होता है।

उत्तर:——उत्सर्ग से साधु एक समाचारी वाली साध्वियों को वस्त्र एवं पात्र दे सकते हैं और कोई कारण उपस्थित हो जाय तो आहार भी देना चाहिये, परन्तु साध्वियों से साधु कुछ भी ग्रहण न करे। इसी प्रकार गृहस्थों से वस्त्र आदि साधु साध्वी ले सकते हैं परन्तु उनको कुछ भी देना नहीं चाहिये। बिना कारण यदि कुछ दिया जाय तो प्रायश्चित लगताहै। ऐसे ही सांभोगिक साधुओं से आदान-प्रदान दोनों हो सकते हैं किन्तु पार्श्वस्थादि को न तो कुछ देना चाहिये और न उनसे कुछ लेना ही चाहिये। इस सम्बन्ध में श्री पञ्चकल्पचूर्णि में कहा है कि——

"दाणग्गहण संभोगे चउभंगो दान संभोगो नामेगो नो गहण संभोगो ॥१॥ दाण संभोगो उस्सग्गेण संजईण संजएहिं वत्थपत्ताइं दायव्वाणि कारणम्मि य आहारो ताणंतिगे न किंचिघेतव्वं गहण संभोगो ॥२॥ गिहत्थन्न

Aho ! Shrutgyanam

तित्थि एहि तो तेसिं न किंचि दिज्जइ जइ तेसिं निक्कारणे देइ पायच्छितं विसंभोगो वा दाणसंभोगो गहणसंभोगो य ॥ ३॥ संभोइश्राणं दिज्जइ घेप्पइ य पासत्थाईणं ण दिज्जइ नय घेप्पइ ॥४॥ किंचिजइ तेसिं देइ गिण्हइ वा किंचि निक्कारणे पायच्छित्तं विसंभोगो वा ।''

—दान एवं ग्रहण के संभोग में चार भाग होते हैं। वे इस प्रकार हैं:—१. दान संभोग-देना परन्तु लेना नहीं। उत्सर्ग से साधु साध्वियों को वस्त्र पात्र देना, कारणवश आहार भी देना, परन्तु उनसे कुछ भी लेना नहीं। यह प्रथम भाग है। जिसको दान संभोग कहते हैं। २. ग्रहण संभोग–गृहस्थ से या अन्य दर्शनार्थियों से लेना, परन्तु कुछ देना नहीं। यदि बिना कारण दिया जाय तो विसंभोग नामक प्रायश्चित आता है। यह द्वितीय भाग है, जिसको ग्रहण संभोग कहते हैं। ३. दान संभोग एवं ग्रहण संभोग–एक समाचारी वाले साधुओं को संभोग एवं ग्रहण संभोग—एक समाचारी वाले साधुओं को वस्त्र पात्र देना एवं उनसे लेना, यह तृतीय भाग है, जिसको दान संभोग एवं ग्रहण संभोग कहते हैं। ४. न दान संभोग न ग्रहण संभोग–पार्श्वस्थ आदि को न कुछ भी देना और न उनसे कुछ भी लेना, यह चतुर्थ भाग है जिसका नाम न दान संभोग न ग्रहण संभोग है।

प्रश्न ६०–वाद कितने प्रकार का होता है एवं वह वाद साधुओं को किसके साथ करना चाहिये तथा किसके साथ नहीं ?

उत्तर—बाद तीन प्रकार का होता है—१. शुष्कवाद

Aho ! Shrutgyanam

२. विवाद ३. धर्मवाद। इनके लक्षण उत्तराध्ययन सूत्र के १६ अध्याय की टीका में इस प्रकार कहे हैं:—

शुष्कवादो विवादश्च, धर्मवादस्तथापरः।
राजन्नेष त्रिधा वादः कीर्त्तितः परमर्षिभिः ॥ १ ॥
अत्यन्त मानिना सार्धं, क्रूरचित्तेन वा दृढं।
धर्मद्विष्टेन मूढेन, शुष्कवादः प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥
विजयेऽस्यातिपातादि, लाघवं तत्पराजयात्।
धर्म्मस्येति द्विधाप्येषः तत्त्वतोऽनर्थवर्धनः ॥३॥
लब्धिख्यात्यार्थिना तु स्यात्, दुःस्थितेनाऽमहात्मना।
छलजातिप्रधानो यः स विवाद इति स्मृतः ॥ ४ ॥
विजयो ह्यत्र सन्नीन्या दुर्लभस्तत्ववादिनः।
तद्भावेऽप्यन्तरायादि दोषो ऽदृष्ट विघातकृत् ॥५॥
परलोक प्रधानेन मध्यस्थेन तु धीमता।
स्वशास्त्र ज्ञात तत्त्वेन धर्मवाद उदाहृतः ॥ ६ ॥
विजये ऽस्य फलं धर्म प्रतिपत्त्या ह्यनिन्दितम्।
आत्मनो मोहनाशश्च नियमात् तत्पराजयात् ॥ ७ ॥

—महर्षि ों ने वाद के तीन भेद कहे हैं–शुष्कवाद, विवाद एवं धर्मवाद। अत्यन्त अभिमानी, दुष्टचित्त एवं धर्म द्वेषी मूढ़ के साथ किया हुआ वाद शुष्कवाद होता है। शुष्कवाद में विजय मिलने से धर्म की हानि एवं पराजय से धर्म की लघता

Aho ! Shrutgyanam

होती है, अतः यह शुष्कवाद दोनों प्रकार से अनर्थ की वृद्धि करने वाला होता है। लाभ की इच्छा वाले, ख्याति की भावना वाले दुःस्थित दुर्जन के साथ जो छल एवं जाति हेत्वाभास रूपवाद किया जाय तो वह विवाद होता है। तत्ववादी को सन्नीति से इस विवाद में विजय मिलना दुर्लभ है। यदि कदाचित् विजय मिल भी जाय तो अदृष्ट रीति से हानिकारक एवं अन्तरायादि दोष रूप होती है। परलोक की प्रधानता माध्यस्थ के गुण एवं स्वशास्त्र को जानने वाले बुद्धिमान के साथ वाद करना धर्मवाद कहलाता है। इस धर्मवाद में विजय प्राप्त होने से धर्म की प्राप्ति एवं पराजय से मोह का नाश होता है। इस प्रकार धर्मवाद का फल जानना चाहिये। इन तीन प्रकार के वादों में कारण विशेष उपस्थित होने पर ही साधुओं को धर्मवाद करना चाहिये। परन्तु शुष्कवाद एवं विवाद नहीं करना। धर्मवाद भी साध्वियों के साथ नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार साध्वियों को भी साधुओं के साथ वाद नहीं करना अभीष्ट है। यदि किया जाय तो प्रायश्चित आता है। इस आधार पर एक समाचारी वाले साधुओं के साथ एवं पार्श्वस्थ आदि के साथ भी बिना कारण वाद नहीं करना चाहिये। कारण हो तो ही करना उचित है।

श्री पंचकल्प चूर्णी में कहा है कि—

"संभोइओ संभोइएण समं वायं करेइ कारणे।
परिक्खणा निमित्तं संभोगो सो पुण ॥"

—सांभोगिक साधु के साथ कारणवश वाद करना उचित है। क्योंकि संभोग भी परीक्षा के निमित्त होता है। छल, जाति रूप हेत्वाभास रहित पक्ष एवं प्रतिपक्ष का ग्रहण करना, यही वाद कहलाता है।

Aho ! Shrutgyanam

अन्यच्च—"संभोइओ संभोइण्ण सम निक्कारणे वादं करेइ पायच्छित्त विसंभोगो वा, एवं पासस्थाईहिं वि कारणे पुण जइ न करेइ पायच्छित्तं विसंभोगो वा, संजईहिं संभोइयो संभोइयाहिं कारणे निक्कारणे वा वायं करेइ पायच्छित्तं विसंभोगो वा, एवमेव "संजईण वा।"

—एक समाचारी वाला साधु अपने समाचारी वाले साधु के साथ बिना कारण वाद करे तो विसंभोग नामक प्रायश्चित आता है। इसी प्रकार कारण उपस्थित होने पर भी पार्श्वस्थादि के साथ यदि वाद न करे तो विसंभोग नामक प्रायश्चित आता है। सांभोगिक साधु सांभोगिक साध्वियों के साथ कारण या बिना कारण वाद करे तो भी विसंभोगक नामक प्रायश्चित आता है। यही नियम साध्वियों के लिये भी जानना चाहिये।

प्रश्न ९१—शक्तिशाली समर्थ संयमी साधु जिस प्रकार दुष्टराजा आदि से पीडित शुद्ध साधुओं की सहायता करते हैं, उसी प्रकार चारित्रहीन वेषधारी साधुओं की रक्षा करते हैं कि नहीं। इसी प्रकार देव द्रव्य का हरण करने वाले चैत्यादिका नाश करने वाले दुष्ट राजाओं को शिक्षा देते हैं कि नहीं ? तथा चैत्यनिमित्त नवीन चांदी-सोना आदि द्रव्य उपार्जित करते हैं या नहीं।

उत्तर— चरित्र निष्ठ शुद्ध साधु की सब प्रकार के प्रयत्नों से सहायता करनी चाहिये एवं चारित्रहीन साधु की एकवार सहायता कर यह उपालम्भ देना कि यदि

Aho ! Shrutgyanam

पुनः इस प्रकार का अकार्य करोगे तो मैं तुम्हारी सहायता नहीं करूँगा अर्थात् तुमको पीड़ा से मुक्त नहीं कराऊँगा। इसी प्रकार मर्यादा में रहा हुआ साधु यदि एक बार मुक्त कराने पर भी फिर पकड़ा जाय तो उसको सौ बार भी छुड़ाने का प्रयत्न करना चाहिये।

श्री पंचकल्प चूर्णी में यही बात कही है, जो इस प्रकार है :—

"समत्थेण साहुणा लिंगत्थाणं वि साहज्जं कीरइ "तत्र" चारित्र स्थितस्य सर्वप्रयत्नेन कर्तव्यम्, यः पुनश्चारित्र हीनस्तस्य सकृत कार्यम्।"

—समर्थ साधु वेषधारी साधु की भी सहायता करे। उनमें जो चारित्र्य में रहे हुए हों उनकी सब प्रकार के प्रयत्नों से सहायता करे एवं जो चारित्र हीन हो, उसकी एक बार सहायता करे।

"तस्स पुणो काउं उवालब्भइ जई पुणो एरिसं करेसि तो मे ण मोग्मो, लिंग अणुमुयंतस्स जीविया पोढस्स अपुट्ठधम्मस्स वि कीरइ जहेव संविग्गस्स।"

—चारित्र हीन की एकबार सहायता करके उपालम्भ रूप में यह कहे कि यदि ऐसा फिर करोगे तो मैं तुम्हें नहीं छुड़ाऊँगा! वेष की अनुमोदना करने वाले अपुष्टधर्मी चारित्रहीन की भी संविग्न साधु के समान सहायता करे।

Aho ! Shrutgyanam

"कयाइ मोइश्रो संतो पुणोवि घेपिज्जा किं मोएयव्वो न मोएअव्वो" उच्यते–सयं पि वारा मोएयव्वो मज्जाया पडिवन्नो ।"

शंका—चारित्र की मर्यादा में रहे हुए साधको एक बार छुड़ाने पर भी यदि फिर वह पकड़ा जाय तो छड़ाना कि नहीं ?

समाधान—

मर्यादा में रहे हुए साधु को सौ बार छुड़ाना चाहिये ।

चैत्यादि के नवीन चाँदी सोना एवं अन्य द्रव्यादि के उपार्जन का काम गृहस्थ का है, साधु का नहीं । यदि कोई साधु उपार्जन करता है तो ज्ञान-दर्शन-चरित्र की शुद्धि नहीं होती है । पंचकल्प चूर्णि में इसका निषेध है ।

इसी प्रकार चैत्य सम्बन्धी क्षेत्र स्वर्ण रजत पात्रादि का कोई वेषधारी साधु राजबल से अपहरण करे अथवा राजा के सुभट हरण करें तो तप-नियम में सम्यक् प्रकार से प्रवृत भी साधु यदि न छुड़ावे अथवा छुड़ाने का उद्यम न करे तो उसके ज्ञानादिक की शुद्धि नहीं होती और आशातना होती है ।

किस प्रकार मुक्त करावे ? इसके लिये कहा है कि ऐसा प्रसंग उपस्थित होने पर प्रथम राजादि को मधुरवचनों से राजा आदि को शिक्षा देवे, समझावे, अथवा धर्म का उपदेश देवे । शिक्षा एवं उपदेशों से न माने तो प्रासाद कम्पन आदि से भय एवं पीड़ा आदि उत्पन्न करने वाली शिक्षा देवे । श्री पंचकल्प भाष्यचूर्णि में "चेइय निमित्तं" आदि पाठ इसी आशय को व्यक्त करता है ।

Aho ! Shrutgyanam

इसी प्रकार यह भी कहा है कि—

"कुलगणसंघचेइय विणासाईसु कारणेसु नाण-दरिसण चरित्ताइयं पडिसेवमाणो सुद्धो जयणाए।"

—कुल, गण, संघ एवं जिन मन्दिर के विनाश के कारण उपस्थित हों तो ज्ञान, दर्शन-चारित्र में यतनापूर्वक अतिचार का सेवन करे तो भी शुद्ध ही गिना जाता है।

प्रश्न ६२:-जिन मन्दिर में जिन प्रतिमा के ऊपर भ्रमरी का घर आदि हो तो उस प्रकार के उपयोगी श्रावक के अभाव में सुविहित शुद्ध संयमधारी साधु स्वयं उसको दूर कर सकते हैं या नहीं ?

उत्तर— इस कार्य में अल्पदोष होने से साधु को स्वयं दूर कर देना चाहिये। यदि न करे तो गुरु प्रायश्चित आता है। इसके सम्बन्ध में बृहत्कल्प भाष्य में कहा है कि-

"लूआ कोलिग जालिग कोत्थलहारी अ उवरि-गेहे अ साडितम साडिंते लहुगा गुरुगा य भत्तीए।"

—कोई भी महात्मा किसी भी ग्राम में जिन प्रासाद को देखकर चैत्यको वन्दन करने जावे और वहां यदि मन्दिर में स्वच्छता न हो एवं भगवान की प्रतिमा के ऊपर मकड़ी का जाला, भंवरी का घर आदि होवे और उसे देखकर उपेक्षा करे अर्थात् स्वयं उनको दूर न करे तो गुरु प्रायश्चित को प्राप्त करता है, दूर करने पर लघु प्रायश्चित आता है, यही नियम जिन प्रतिमा के ऊपर आशातना के कारण भूत वृक्षादि के आश्रित होने पर भी जानना चाहिये।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न ६३:-साधुओं को वस्त्र कब धोने चाहिये एवं न धोवे तो क्या दोष है ?

उत्तर—साधुओं को वर्षाकाल के पूर्व ही वस्त्र धो लेने चाहिये। यदि न धोवे तो इस प्रकार दोष लगता है-

यथा—अइभार वुडणपणए सीयल पावरणऽजीर गेलन्ने।
ओभावण कायवहो वासासु अधावणे दोसा ॥

—वर्षाकाल के पूर्व वस्त्र न धोवे तो वस्त्र मैल से भारी हो जाता है, जीर्ण हो जाता है, उसमें फूलण आ जाती है, और इस प्रकार का वस्त्र धारण करने से अजीर्ण हो जाता है, बीमारी आती है, पराभव होता है एवं अप्पकाय के जीवों की विराधना होती है।

शंका—वर्षाकाल के पूर्व वस्त्र कब धोने चाहिये ?

समाधान—

वर्षाकाल आने के पूर्व ही पन्द्रह दिन के अन्दर समस्त उपधि को यतनापूर्वक धो लेनी चाहिये। गरम जल थोड़ा हो तो जघन्य से भी पात्र परिकर (झोली पल्ला आदि) धो लेना चाहिये, जिससे गृहस्थ भिक्षा देते हुए जुगुप्सा न करे। ऐसा ओघ नियुक्ति सूत्र की टीका में उल्लेख किया गया है। वस्त्र धोने के लिये गृहस्थों के पात्रों में घरों के छप्परों का जल, बादल वर्षा करके बन्द हो जावें, तब लेना एवं उस जल में क्षार डालना, जिससे जल सचित्त न होने पावे। वस्त्र धोने के बाद एक कल्याण अर्थात् दो उपवास का प्रायश्चित देना चाहिये।

यह सम्पूर्ण अधिकार आचारांग सूत्र में दिये गये "न

Aho ! Shrutgyanam

धोइज्ज" इस पाठ के द्वारा जानना चाहिये, जो जिनकल्पी मुनियों की अपेक्षा से दिया गया है।

प्रश्न ६४:–यदि वस्त्रों में यूका (जूं) उत्पन्न हो जाय तो वस्त्र प्रक्षालन के समय कौनसी विधि करनी चाहिये ?

उत्तर—वस्त्रों में यदि जूं उत्पन्न हो जाय तो वस्त्र के अन्दर हाथ रखकर यतनापूर्वक दूसरे वस्त्र पर जूं को चढ़ाकर पुनः वस्त्र धोना चाहिये। इसी आशय को व्यक्त करते हुए श्री ओघ निर्युक्ति सूत्र में इस प्रकार कहा है कि—

"जयणा संकामणा" यतनया वस्त्रान्तरित हस्तेन अन्यस्मिन् वस्त्रे षट्पदीः संक्रामयन्ति ततो धावन्ति।"

प्रश्न ६५:-स्थण्डिल जाने के लिये कितने साधु सम्मिलित रूप में (साथ साथ) जावें एवं कितना जल ले जावे ?

उत्तर— श्री ओघ निर्युक्ति में इस सम्बन्ध यह में कहा है कि— "दो दो गच्छन्ति"–दो दो साधु साथ साथ जावे, अकेला न जावे। दो साधु जब स्थण्डिल जावें तो अपने साथ तीन साधुओं के काम में आवे उतना जल ले जावें। दोनों को समश्रेणी में कभी नहीं बैठना चाहिये। इस प्रकरण को और अधिक विस्तार से जानने के लिये 'ओघनिर्युक्ति एवं वृहत्कल्प की टीका देखनी चाहिये।

प्रश्न ६६–साधु शयन करते समय परस्पर कितना अन्तर रखे एवं पात्रों से कितनी दूर शयन करें ?

उत्तर— उत्सर्ग मार्ग से साधुओं को परस्पर दो हाथ के अन्तर

Aho ! Shrutgyanam

से शयन करना चाहिये अन्यथा अनेक दोषों की सम्भावना रहती है। तथा मूषकादि निवारणार्थं पात्रों से २० अंगुल दूर शयन करना उचित है। इस विषय का विस्तार ओधनिर्युक्ति में हैं।

प्रश्न ९७—मार्ग में चलते हुए साधुओं को मार्ग किससे पूछना चाहिये ?

उत्तर-- साधुओं को चाहिये कि वे मार्ग में चलते हुए हो तो बाल-वृद्ध स्त्री एवं नपुंसक से मार्ग न पूछे, किन्तु मध्यम वयस्क दो पुरुषों से पूछे, वे दो पुरुष भी जहां तक हो साधर्मिक एवं गृहस्थ होने चाहिये। इनके अभाव में अन्यधर्मावलम्बी पुरुषों से धर्म-लाभ पूर्वक प्रेम से पूछे। वृद्धादि से पूछने पर जो दोष हैं, वे इस प्रकार हैं-- वृद्ध से पूछने पर वह मार्ग नहीं जानता है, बालक से पूछने पर वह हास्यादि प्रपंच करता है अथवा मार्ग नहीं जानता है, नपुंसक एवं स्त्री से पूछने पर दूसरों को शंका होती है। ऐसी स्थिति में किस प्रकार पूछना चाहिये। इस सम्बन्ध में कहा है कि—

पासट्ठिओ पुच्छिज्जा वंदमाणं अवंदमाणं वा।
अणुवइउण व पुच्छेज्जा तुण्हिक्कं नेव पुच्छिज्जा ॥

—पास में रहा हुआ कोई मनुष्य वन्दन करता हो तो उससे पूछे अथवा वन्दन न करके पास से होता हुआ कोई जाता हो तो उसके पीछे कुछ चलकर फिर पूछना चाहिये। यदि पूछने पर भी वह न बोलकर चुपचाप चला जावे तो नहीं पूछना चाहिए।

Aho ! Shrutgyanam

यदि ऊपर बताये हुए नियमों के अनुसार उसी प्रकार के कोई मनुष्य न मिले तो अच्छी स्मृति रखने वाले वृद्धादि से भी यतना पूर्वक पूछा जा सकता है। विशेषः-ओघनिर्युक्ति में इसका उल्लेख है।

प्रश्न ६८—ग्लान (रुग्ण) साधु की सेवा करने में जिस प्रकार प्रशंसा यश आदि ऐहिक गुणों का लाभ होता है, उसी प्रकार क्या पारलौकिक गुण भी होते हैं ?

उत्तर— ऐसे सेवा कार्य में पारलौकिक गुण हैं ही। आगम में इस प्रकार की सेवा को तीर्थ कर की भक्ति के समान कहा है और तीर्थंकर की भक्ति का फल स्वर्ग एवं अपवर्ग की प्राप्ति है। ओघनिर्युक्ति की टीका में कहा है कि-

"गिलाणत्ति"-साधु कदाचित् तत्र ग्रामे प्रविष्टः इदं शृणुयाद् यद् अत्र ग्लान आस्ते, ततश्च तत्परिपालनं कार्य परिपालने च कथं न पारलौकिक गुणा इति।"

—किसी समय साधु ग्राम प्रवेश करे, और यह सुने कि यहां कोई साधु ग्लान (रुग्ण) है, तो उसकी सेवा करनी चाहिये। सेवा करने में पारलोकिक गुण कैसे नहीं होते ? वे तो होते ही हैं।

"जो गिलाणं पडियरइ सो मं पडियरइ, जो मं पडियरइ सो गिलाणं पडियरइ "त्ति" वचन प्रामाण्यात्

—जो ग्लान (रुग्ण) की सेवा करता है, वह मेरी सेवा करता है और जो मेरी सेवा करता है वह रुग्ण की सेवा करता

Aho ! Shrutgyanam

है। इस वचन की प्रमाणिकता से भगवान की आज्ञा है। जो वृहत्कल्प वृत्ति के प्रथमखण्ड में इस प्रकार है:-

"जो गिलाणं पडियरइ से ममं नाणेणं दंसणेणं चरित्तेणं पडिवज्जइ इत्यादि भगवदाज्ञा ऽऽराधनात् ॥

—जो रुग्ण की सेवा करता है वह मेरी ज्ञान दर्शन एवं चारित्र से आराधना करता है।

इस प्रकार भगवान की दी हुई आज्ञा का आराधन करना चाहिये।

प्रश्न ६६—शुद्ध संयमी साधु ग्लान (रुग्ण) पार्श्वस्थादि की प्रतिचर्या (सेवा) करे कि नहीं ?

उत्तर— लोकापवाद के निवारण के लिये एवं पार्श्वस्थादि को सन्मार्ग पर लाने के लिये परिचर्यादि स्वोचित कर्म अवश्य करना चाहिये। इसके सम्बन्ध में ओघनिर्युक्ति में कहा है कि—

"एसगमो पंचएह वि नियाईणं गिलाणपडियरणे।
फासुअकरणनिकायण कहण पडिक्काभणागमणं॥२२॥

संभावणे विसद्दो देडलियखरंटजयण उवएसो।
अविसेसे निन्हगाण विन एस अम्हंतओ गमणं॥२३॥

तारेहि जयणाकरणं अमुगं आणोहऽकप्पजणपुरओ।
नवि एरिसिया समणा जणणाए तो अवक्कमणं॥

इन गाथाओं का संक्षेप में अर्थ इस प्रकार है :—

Aho ! Shrutgyanam

"नियाईणं त्ति" आदि शब्द से पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील एवं संसक्त इनको भी ग्रहण करना चाहिये ।)

—नित्यवासी आदि इन पाँचों की भी ग्लान परिचर्या में जो विधि है वह इस प्रकार है :—

शुद्ध आहारादि से सेवा करनी चाहिये तथा बाद में उन्हें यह कहना चाहिये कि स्वस्थ होने के पश्चात् जैसा मैं कहूं वैसा करना । इसके साथ ही उनसे धर्म कथा कहना, यदि वे उस स्थान से चलना चाहें तो उनको पकड़ कर चलना । (गाथा में अपि शब्द सम्भावना के अर्थ में है) इसके अतिरिक्त देव मन्दिर की रक्षा करने वाले वेषधारी यदि रुग्ण हों तो उनकी भी सेवा करनी चाहिये । उन्हें वस्त्र देना, धर्म के लिये उद्यम करो, ऐसा कहना । यह सब यतना पूर्वक करे, जिससे संयम को लांछन न लगने पावे । तथा उनको क्रिया विषयक उपदेश दे दे । इसी प्रकार जिस देश में साधु एवं निह्नवक का भेद न जाना जाता हो, उस देश में निह्नवकों की भी यतनापूर्वक सेवा करना चाहिये । यदि रुग्ण यों कहे कि यह हमारे पक्ष का नहीं है तो वहाँ से चला जाना चाहिये और यदि वह यह कहे कि मुझे इस रुग्णता से तारो तो यतनापूर्वक सेवा करना, अमुक वस्तु लाओ, ऐसा कहे तो जनता के सामने यह कहना कि यह वस्तु अकल्प्य है, साधु ऐसे नहीं होते हैं । जनता यदि साधु और निह्नवक का भेद जान जाय तो वहां से चले जाना ही चाहिये ।

इस प्रकार उपदेश माला में भी पार्श्वस्थादि की सेवा करने के सम्बन्ध में कहा है । उपदेश माला में तो यह भी कहा है कि यदि विपत्तिग्रस्त कोई श्रावक हो तो उसकी सेवा करनी चाहिये । इस आशय की दो गाथाएं इस प्रकार है ।

Aho ! Shrutgyanam

"हीणस्स वि सुद्धपरूवमस्स नाणाहियस्स कायव्वं ।
जणचित्तग्गहणत्थं करेंति लिंगावसेसेऽवि ।।३४६।।
ओसन्नस्स गिहिस्स व जिणपवयण तिव्वभावियमइस्स।
कीरइ जं अणवज्जं दढसंमत्तस्सऽवत्थासु ।।३५०।।

—भाव चारित्र रहित शुद्ध प्ररूपणा करने वाले ज्ञान गुण से अधिक हो तो उनकी ओर जिनके पास केवल वेष हो तो उनकी भी सेवा करनी चाहिये तथा जो जिन प्रवचन से तीव्र भावित मति वाला अवसन्न हो या दृढ़ सम्यक्त्वी गृहस्थ हो तो उसकी रुग्णावस्था में दोषरहित होकर सेवा करना चाहिये ।

प्रश्न १००–ग्लान (रुग्ण) एवं उनकी सेवा करने साधु वाले दूसरे साधुओं की भोजनादि मण्डली में प्रवेश करें या नहीं ?

उत्तर— ग्लान (रुग्ण) साधु एवं उनकी सेवा करने वाले साधु प्रायश्चित लेकर उनको पूरा करने के पश्चात् दूसरे साधुओं की मंडली में प्रवेश कर सकते हैं । ग्लान साधु को दश उपवास एवं परिचारक साधु को दो उपवास का प्रायश्चित आता है । मतान्तर से दोनों को दश उपवास का प्रायश्चित भी है । इस प्रकार के प्रायश्चित्त पूरे करने के पश्चात् दोनों साधु दूसरे साधुओं की भोजन मण्डली में प्रवेश करे । बृहत्कल्प की टीका में इसी आशय को इस प्रकार व्यक्त किया गया है:–

"ग्लाने प्रगुणीभूते सति ग्लानस्य पंच कल्याणकं प्रायश्चित्तं प्रतिचारकानां तु एककल्याणकं देयम् ।

Aho ! Shrutgyanam

आदेशान्तरेण वा द्वयोरपि पंचकल्याणकं मन्तव्यं, ततो व्यूढे प्रायश्चित्तो द्वावपि ग्लान प्रतिचारक वर्गौ भोजनादि मण्डलीं प्रविशत इत्यादि ।"

इन पंक्तियों का अर्थ ऊपर दे दिया गया है ।

प्रश्न १०१–वर्षाकाल (चातुर्मास) के अतिरिक्त शेष आठ मास के ऋतु बद्धकाल में साधु एवं पौषध व्रती श्रावक पाट पीठ फलक आदि ग्रहण करे कि नहीं ?

उत्तर— उत्सर्ग से तो ग्रहण नहीं करना चाहिये। ये ग्रहण करे तो वे अवसन्न (शिथिलाचारी) कहलाते है। जिसके सम्बन्ध में ज्ञाता अध्ययन में दिये गये शेलक के दृष्टान्त में कहा है कि—

"तएणं से सेलए उउबद्धपीठफलग सेवी सज्जा संथारए ओसन्ने जाएत्ति ।"

—इसके पश्चात वे शेलक मुनि शेषकाल में शय्या संथारा के लिये पाट पाटलादि का सेवन करने से अवसन्न हो गये ।

इसी प्रकार आवश्यक निर्यु क्ति में भी कहा है कि—

**"ओसन्नो विय दुविहो सव्वे देसे य तत्थ सव्वम्मि ।
उउबद्ध पीठ फलगो ठवियग भोई य नायव्वो ।।"**

—अवसन्ना के दो भेद होते हैं १ सर्व २ एक देश इनमें सर्व से अवसन्न, शेषकाल में पाट पाटलादि का उपयोग करते हैं तथा स्थापना व भोजन भी करते हैं ।

Aho ! Shrutgyanam

अपवाद मार्ग से शेषकाल में भी पाट पाटलादि के सेवन करने के सम्बन्ध में आगम में कहा है कि—

"जह कारणे तणाई उउबद्धम्मि य हवन्ति गहियाइं ।
तह फलगाणि वि गिण्हइ चिक्खिल्लाईहि कज्जेहिं ॥"

जिस प्रकार देशादि लक्षण कारण उपस्थित होने पर ऋतु-बद्धकाल में घास आदि ग्रहण किया जाता है, वैसे ही शेषकाल में कादव आदि (जीवोत्पत्ति, वनस्पति) कारण उपस्थित होने पर पाट पाटलादि ग्रहण किये जा सकते हैं।

प्रश्न १०२—मार्ग में वृक्षादि के नीचे विश्राम करने की इच्छा वाले साधु वहाँ किसकी आज्ञा से विश्राम करे ?

उत्तर— "अणुजाणह जसुग्गहो" (जिसका अवग्रह है वह आज्ञा देवे !) 'ऐसा कह कर साधु वृक्षादि से आज्ञा लेकर वहां विश्राम कर सकता है। आवश्यक सूत्र की टीका में इस प्रकार कहा है, जिसका संक्षेप में पाठ इस प्रकार है।

"साधूनाम् इयं समाचारी सर्वत्रैव अध्वादिषु वृक्षाद्यपि अनुज्ञाप्य स्थातव्यम्, तृतीयव्रत रक्षणार्थम्, एवं भिक्षाटनादावपि व्याघात सम्भवे क्वचित् स्थातुकामेन स्वामिनं तद् अभावे तदवग्रह देवतां वा अनुज्ञाप्य स्थेयम् ॥"

—साधुओं की यह समाचारी है कि—सर्वत्र मार्गादि में तृतीय व्रत की रक्षा के लिये वृक्षादि की आज्ञा लेकर ठहरना। इसी प्रकार गोचरी आदि लेने जाते समय यदि मार्ग में कोई व्याघात हो जाय तो किसी भी स्थान पर खड़े रहने के लिये

Aho ! Shrutgyanam

उस स्थान के स्वामी की अथवा उसके अभाव में अवग्रहदेव की आज्ञा लेकर पुनः ठहरना चाहिये।

प्रश्न १०३—साध्वियों के उपाश्रय में रात्रि के समय कोई चोर आदि प्रवेश करे तो उन्हें क्या बोलना चाहिये?

उत्तर— साध्वियों के उपाश्रम में रात्रि के समय यदि कोई चोर आदि प्रवेश करे तो द्वारस्थ साध्वी को "कौन है?" ऐसा नहीं बोलना चाहिये। ऐसा बोलने से पड़ोस में रहने वाले मनुष्यों को शंकादि हो जाती है। अतः "छु छु वाहड़ वाहड़" इस प्रकार बोलना चाहिये। अथवा हे अनाथ! क्या तेरे माता पिता नहीं है–जिससे तू इस समय घूमता है? और इस अन्योक्ति से उसको कहना चाहिये कि—हे दुष्ट बैल यहां हमारे उपाश्रय में क्यों घुस आया है, अरे अभागे! यहां तेरे योग्य कोई स्थान नहीं है, भाग जा! यहां क्या खावेगा?

ऐसा वृहत्कल्प की टीका में कहा है।

प्रश्न १०४—यदि कोई साधु परलोक गमन करे तो कौनसी विधि करनी चाहिये?

उत्तर— इसका उत्तर बृहत्कल्प भाष्यादि में जो दिया गया है, वह संक्षेप में इस प्रकार है।

"जं वेलं कालगओ निक्कारणे कारणे भवे निरूहो"

जग्गण बंधण छेयणे एतं तु विहिं तहिं कुज्जा ॥ १ ॥

—रात्रि में या दिन में जब भी साधु स्वर्गवासी हो, उसी

Aho ! Shrutgyanam

समय बाहर ले आना चाहिये। किसी वैयावच्चकर साधु को चाहिये कि वह मृतक को उठाकर एकान्त में शुद्ध भूमि पर परिष्ठापित कर देवे। यदि एक से मृतक न उठे तो अनेक मुनि मिलकर उठा सकते हैं। यह विधि निष्कारण रूप में कही गई है। कारण विशेष होने पर तो कितने भी समय तक मृतक को रखा जा सकता है। वहां जागरण, बन्धन, छेदन आदि विधि शास्त्र प्रमाण से करना चाहिये।

मृतक को किन-किन कारणों से रखा जा सकता है, ? इस सम्बन्ध में कहा है कि—

"हिम-तेण-सावयभयापिहिता दारा महाणिणादो वा।
ठवणा णियगा व तहिं आयरिय महा तवस्सी वा २॥

—रात्रि में असह्य हिमपात होता हो, चोर तथा हिंसक जीवों का भय हो, बाहर निकलने जैसी स्थिति न हो, नगर द्वार उस समय बन्द हों, महान् निनाद (भयंकर) गर्जना होती हो, महाजनों को ज्ञात हो गया हो, तो उस मृतक को ग्राम या नगर में ही रखना चाहिये। इसी प्रकार ग्रामादिक में रात्रि में मृतक को निकालने की व्यवस्था न हो अथवा उस ग्राम या नगर में मृतक के सम्बन्धी या ज्ञातिजन हों और कहें कि हमसे पूछे बिना मृतक को नहीं निकालना, या वह उस नगर में अतीव प्रसिद्ध आचार्य हो, महातपस्वी हो, चिरकाल से अनशन करने वाला हो, मास क्षमण किया हो, इन कारणों से रात्रि में मृतक को वहीं रखा जा सकता है। इसी प्रकार मृतक को आच्छादित करने के लिये उज्ज्वल वस्त्र न हों अथवा राजादि नगर में प्रवेश करते हो या निकलते हो तो दिन में भी न निकालो द्वार बन्द होने की

Aho ! Shrutgyanam

सम्भावना हो तो रात्रि में मृतक को नहीं निकालना चाहिये।

मृतक के शीर्षद्वार के सम्बन्ध में कहा है कि—

"जत्तो दिसाई गामो तत्तो सीसं तु होइ कायव्वं।
उट्ठंतरक्खणट्ठा अमंगलं लोग गरहा य॥"

—जिस दिशा में गांव हो उस दिशा में मृतक का मस्तक उपाश्रय से ले जाते समय या परिष्ठापन करते समय करना चाहिये। जिससे यदि कदाचित् मृतक उठ जाय तो उपाश्रय की ओर न आ सके। इसी प्रकार जिस दिशा में गांव हो उस ओर मृतक के पांव करने से अमंगल होता है एवं लोक निन्दा भी होती है कि ये साधु इतना भी नहीं जानते हैं कि गांव के सामने मृतक को नहीं किया जाता है।

परिष्ठापन करते समय रजोहरण (ओघा) मुखवस्त्रिका (मुंहपत्ती) चोलपट्टक (अधोवस्त्र) आदि उपकरण मृतक के के पास रखना। यदि ये उपकरण न रखे जावें तो चतुर्गुरु प्रायश्चित एवं आज्ञा भंग का दोष आता है। तथा मृतक मिथ्वात्व भाव को प्राप्त करता है अर्थात् मृतक देवलोक जाने पर अवधिज्ञान का उपयोग छोड़ने के पश्चात् उपकरणों को न देखे तो वह यह जानता है कि गृहस्थलिंग से ही मैं देव हुआ हूं। इस प्रकार वह मिथ्यात्व को प्राप्त करता है। अथवा राजा लोग परम्परा से इसको जानकर, कि कोई मनुष्य लोगों के द्वारा उपद्रवित हुआ है, इस बुद्धि से कुपित होकर समीप के दो तीन गांवों में प्रति बन्ध लगादे। इस मृतक के पास उपकरणादि अवश्य रखने चाहिये।

अब काउसग्ग द्वार के सम्बन्ध में कहा जाता है:—

चेइ अधरुवस्सए वा हायंतिओथुईउ तो चिंते।
सारवणं वसहीए करेइ सव्वं वसइ पालो॥ १॥

Aho ! Shrutgyanam

पश्चात् उपाश्रम या देशभर में आकर हीयमाना स्तुति बोलना चाहिये। इसके पूर्व परिष्ठापक करने वाला जहाँ तक पुनः न आवे वहाँ तक वसतिपाल वसति का प्रमार्जन आदि समस्त कार्य करे।

इस सम्बन्ध में चूर्णिका विशेष पाठ इस प्रकार है :--

"ततो आगम्म चेइयघरं गच्छंति चेइयाणि वंदित्ता, संति निमित्त अजियसंति त्थवो परिकड्डिज्जइ तिन्नि थुईओ परिहायंतीओ कड्ढिजंति तओ आगंतु अविहिपरिट्ठावणियाए काउसग्गो कीरइ त्ति॥"

—वहाँ से आकर देरासर में जावे और चैत्यवन्दन कर शान्ति के लिये अजितशान्ति स्तव बोले तथा 'परिहायंती' तीन स्तुति करे। इसके पश्चात् आकर "अवधि-परिट्ठावणियाए" का काऊसग्ग करे।

इस प्रकार व्यवहार दृष्टि से मृतक की गति जाननी चाहिये।

"थलकरणे वेमाणिओ जोइसिओवाण मंतरो समम्मि। गड्डाइ भवणवासी एस गती से समासेण॥"

जब मृतक के शरीर को ऊंचे स्थल पर रखे व शिविका (पालखी) में पारिष्ठापित्त करे तो उस समय वह वैमानिक हो गया है, ऐसा मानना चाहिये। समभूमि पर हो, तो ज्योतिष्क अथवा व्यन्तर में वह उत्पन्न हुआ है, ऐसा जानना। गर्त (गड्डे) में स्थापित किया हो तो भवनवासियों में गया है ऐसा जानना चाहिए। मृतक की इस प्रकार की गति का विवेचन संक्षेप में यहां किया गया है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न १०५-विहार आदि करने की इच्छा वाले आचार्यादि को चन्द्र बल-तारा बल आदि निमित्त देखना चाहिये या नहीं ?

उत्तर— विहारादि करने की इच्छा वाले आचार्यादि को प्रायः करके चन्द्र बल-ताराबल देखना चाहिये। बृहत्कल्प वृत्ति के द्वितीय खण्ड में कहा है कि—अणुकुलेत्यादि" आचार्यों को जब चन्द्र बल-ताराबल अनुकूल हो तब बिहार (प्रस्थान) करना चाहिये। उपाश्रय से निकलने के बाद जबतक सार्थ का साथ न हो तब तक स्वयं ही शकुन ग्रहण करे, सार्थका साथ होने पर उसके शकुन से प्रमाण करना चाहिये।

इस गणिविज्जापइन्नग सूत्र में भी शुभ निमित्तादि लेना कहा है।

प्रश्न १०६-जिनकल्प शब्द में जिन पद से तीर्थंकर एवं सामान्य केवली लेना चाहिये या अन्य कोई। और जिनकल्पी साधु उसी भव में मोक्ष जाते हैं या नहीं ? यदि नहीं जाते हैं तो किस कारण से ?

उत्तर—यहां जिन शब्द से तीर्थंकर एवं सामान्य केवली नही लेना क्योंकि ये स्थविरकल्पिक एवं जिनकल्पिक से भिन्न होने के कारण कल्पातीत कहे जाते हैं किन्तु गच्छ में से निकले हुए साधु विशेष लेना चाहिये। जैसा कि प्रवचनसारोद्धार की टीका के ६३ वें द्वार में कहा है कि—

"जिनाः गच्छनिर्गतसाधु विशेषाःतेषां कल्पः समाचार स्तेन चरन्तीति जिनकल्पिका इत्यादि।"

Aho ! Shrutgyanam

—जिन अर्थात् गच्छ में से निकले हुए साधु विशेष, उनका कल्प अर्थात् आचार उसका जो पालन करें वे जिन कल्पिक होते हैं।

ये जिन कल्पिक मुनि उस भव में मोक्ष में नहीं जाते हैं। क्योंकि आगम में इनके लिये केवल ज्ञान का निषेध किया हुआ है। बृहत्कल्प वृत्ति में कहा है कि वेद को अङ्गीकार कर जिनकल्प ग्रहण करते समय स्त्रीवेद को छोड़कर असंक्लिष्ट पुरुषवेद या नपुंसक वेद उसको होता हैं। जिनकल्प स्वीकार किया हुआ मुनि सवेदी भी होता है एवं अवेदी भी। ऐसी स्थिति में जिनकल्पिक मुनि को उस भव में केवल ज्ञान की उत्पत्ति का निषेध है। उपशमश्रेणी में वेद के उपशमित होने पर ही अवेदकत्व प्राप्त होता है। जैसा कि कहा है--

"उवसम सेढीए खलु वेदे उवसामिअम्मि उ अवेदो।
नवि खविए तज्जम्मे केवल पडिसेह भावाओ॥"

--उपशम श्रेणी में वेद के उपशमित होने के बाद ही अवदेकत्व प्राप्त होता है, परन्तु वेद के उपशमिन होने के कारण उस भव में केवल ज्ञान का निषेध है।

उपशमश्रेणी के अतिरिक्त शेषकाल में तो सवेदी होता है।

इस विषय में कतिपय आधुनिक जन ऐसा कहते हैं कि जिनकल्पित साधुओं का आचार हठगर्भित होता है, क्योंकि ये साधु सिंह आदि को सम्मुख आता हुआ देख कर उसी मार्ग से जाते हैं, दूसरे मार्ग से नहीं। इसलिये उस भव में उनकी मुक्ति नहीं होती। ऐसा इनका कहना युक्तिसंगत नहीं है

Aho ! Shrutgyanam

क्योंकि वे तो भगवान के कहे हुए निरपवाद अनुष्ठान के करने वाले हैं, उनका इसमें तनिक भी हठवाद नहीं है। उनकी आचार विषयक भगवान की आज्ञा में सर्वथा हठवाद का अभाव है। इसके सम्बन्ध में श्री आचाराङ्ग सूत्र के छठे अध्ययन के तृतीय उद्देशय में जिनकल्पिक एवं स्थविरकल्पिकादि समस्त मुनियों को जिनाज्ञा के अनुसरण करने वाल एवं सम्यग् दर्शनी कहा है। कहा है कि—

"जिन कल्पिक कश्चिदेककल्पधारी द्वौ त्रीन् वा बिभर्त्ति स्थविर कल्पिको वा मासार्धमासक्षपक स्तथा विकृष्ट-ऽविकृष्टतपश्चारी प्रत्यहभोजी कूरगडुको वा एते सर्वेऽपि तीर्थकृद्वचनानुसारतः परस्पराऽनिन्दया सम्यक्त्व दर्शिनः ॥"

—जिनकल्पिक कोई एक वस्त्र धारण करता है, कोई दो या तीन वस्त्र धारण करता है, एवं स्थविर कल्पी कोई मास क्षमण या अर्धमासक्षमण, कोई विकृष्ट तीन, चार या पांच उपवास, कोई अविकृष्ट उपवास करता हैं अथवा कूरगडु के समान नित्य भोजन करता है। ये सभी साधु तीर्थकरों के वचनानुसार ही परस्पर अनिन्दा के भाव से सम्यग् दर्शी होते हैं।

इस सम्बन्ध में और भी कहा है कि—

"जो वी दुवत्थ तिवत्थो एगेण अचेलगो व संथरइ।
न हु ते हीलंति परं सव्वे वि हु ते जिणाणाए ॥"

—जो कोई भी साधु दो तीन एक वस्त्र धारण कर

Aho ! Shrutgyanam

अथवा वस्त्र रहित होकर अपने आचार का पालन करते हैं। एवं परस्पर किसी को निन्दा नहीं करते हैं तो वे सभी साधु जिनाज्ञा के पालन करने वाले हैं, ऐसा मानना चाहिये।

इसी प्रकार जिनकल्पिक या प्रतिमाधारी कोई साधु अपने कल्प (आचार) के अनुसार छ मास तक भी भिक्षा प्राप्त न कर सके तो भी वह कुरगडुक को भी "तू ओदनमुण्ड है ?" ऐसा कहकर उसकी निन्दा न करे।

स्थविरकल्पिक मुनियों को तीन वस्त्र अवश्य ग्रहण करने चाहिये। चाहे वे एक वस्त्र से शीत परीषह सहन करने में समर्थ हो तो भी तीन ग्रहण करना यह भागवती आज्ञा है।

अन्य कुछ यह कहते हैं कि जिनकल्पिक उत्कृष्ट क्रिया करते हैं, इससे उनको उत्कृष्ट पुण्य संचय की प्राप्ति होती है, वह पुण्य संचय विशिष्ट स्वर्गादि सुखों का उपभोग किये बिना क्षय नहीं होता है वास्तविक तत्व तो भगवान् केवली ही जानें।

प्रश्न १०७-अर्णिका पुत्र आचार्य ने अपनी शिष्या साध्वी को केवल ज्ञान की उत्पत्ति जानने के बाद, वन्दन किया कि नहीं ?

उत्तर—साध्वी को केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया है। ऐसा जानने के बाद आचार्य अर्णिका पुत्र ने साध्वी को वन्दन किया हो ऐसा नहीं मालूम होता है। क्योंकि आवश्यक सूत्र की वृहत् टीका में "खामिओ केवलि आसाइओ त्ति" ऐसा खमाने का ही पाठ है।

पाठांश इस प्रकार है:—

Aho ! Shrutgyanam

"जाणामि कहं अतिसएण केण केवलेण स्वामिओ केवलिआसाइओत्ति,"

छद्मस्थ गुरु के द्वारा केवलज्ञानवती साध्वी वन्दनीय नहीं है।

प्रश्न १०८--जिस प्रकार कई साधु गांव से बाहर लम्बी भुजाएं कर, कई भुजाएं एवं एक पाँव ऊँचा कर आतापना करते हैं, उसी प्रकार साध्वियां भी कर सकती हैं या नहीं ?

उत्तर-- साध्वियां इस प्रकार नहीं कर सकती हैं। बृहत्कल्प में "नोकप्पईत्यादि" इस पाठ के द्वारा निषेध करते हुए उनके लिए आतापना की लेने की विधि इस प्रकार कही है कि—

"आर्याया ग्रामाद् बहिरूर्ध्वं मुखोबाहू कृत्वा एकं पाद-मूर्ध्वमाकुञ्च्य आतापना भूमौ आतापयितुं न कल्यते किन्तु उपाश्रय मध्ये संघाटी प्रतिबद्धायाः प्रलम्बबाहायाः समतल पादिकायाः स्थित्वा आतापयितुं कल्पते, यद्वाङ् मुखं निपत्य आतापना क्रियते सा उत्कृष्टोत्कृष्टा इत्यादि; ।"

—साध्वियाँ गांव से बाहर दोनों भुजाएं ऊंची करके एक पांव ऊँचा संकुचित कर आतापना भूमि पर आतापना नहीं ले सकती हैं, किन्तु अपने ओढ़ने के वस्त्र के अन्दर भुजाएं लम्बी करके दोनों पांवों को समान रखकर आतापना ले सकती हैं !

प्रश्न १०९—पांच आश्रवों से रुकना इत्यादि संयम के १७ प्रकार के भेद तो प्रसिद्ध हैं, परन्तु प्रकारान्तर से

Aho ! Shrutgyanam

भी मनु संयम एवं असंयमके १७ भेद शास्त्रों में सुने जाते हैं। उनको किस प्रकार जानना चाहिये ?

उत्तर— पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिइन्द्रिय,, पंचेन्द्रिय; इन नौ प्रकार के जीवों में यतनापूर्वकप्रवृत्ति करना अर्थात् इनकी सुरक्षामें विवेक के साथ काम करना ये नौ प्रकार का संयम कहलाता है। तथा अजीवसंयम, प्रेक्षासंयम, उपेक्षा-संयम परिष्ठापना संयम. प्रमार्जना संयम, तथा मनवचन काया के योग को शुभ कर्म में प्रवृत करना एवं अशुभ कर्मों से रोकना ये तीन प्रकार का मनोवाक्‌काय (मन-वचन काया का) संयम इस प्रकार कुल सतरह प्रकार का संयम एवं इससे विपरीत असंयम होता है।

अजीव संयमादि पांच संयमों का अर्थ ओघनिर्युक्ति आदि सूत्रों से जानना चाहिये। इस सम्बन्ध में इस प्रकार पाठ है :—

"पुढवि दग अगणि मारुअ वणस्सई वेइंदिय तेइन्द्रिय चउरिंदिय पंचेंदिया।"

"तथा अजीवत्ति" अजीवों में फूलण शीत आदि लगी हुई पुस्तकादि ग्रहण करने से असंयम होता है इससे इसका ग्रहण नहीं करना! आदि शब्द से पांच प्रकार के वस्त्र पांच प्रकार के घास पांच प्रकार का चर्म इनको ग्रहण करने से असंयम एवं ग्रहण नहीं करने से संयम होता है।

इस प्रकार अजीव संयम का अर्थ जानना चाहिये। शेष

Aho ! Shrutgyanam

प्रेक्षासंयम, उपेक्षासंयम, परिष्ठापनासंयम एवं प्रमार्जना संयम के अर्थ क्रमशः इस प्रकार है :--

प्रेक्षासंयम---प्रथम चक्षु से भूमि को देख कर पश्चात् का उसग्ग शयन आदि करना।

उपेक्षा संयम--उपेक्षा दो प्रकार की होती है, १. संयम-व्यापार उपेक्षा, २. गृहस्थ व्यापार उपेक्षा।

संयम में प्रमाद करते हुए मुनिको देखकर उसको संयम-व्यापार में प्रेरणा देना यह संयम व्यापार उपेक्षा, एवं सावद्य कार्य करते हुए गृहस्थ को देखकर प्रेरित न करना गृहस्थ व्यापारोपेक्षा होती है।

परिष्ठापना संयम--आवश्यकता से अधिक वस्त्र·भात जल आदि का विधि पूर्वक त्याग करने (परिष्ठापन करते) समय संयम रखना। अर्थात् त्याज्य पदार्थों को विधि पूर्वक निर्जीव स्थान पर डालना।

प्रमार्जनासंयम--"सागारिय पमज्जणसंजमो–" गृहस्थों के देखते हुए उनके सामने रजोहरण से प्रमार्जन नहीं करना। यही संयम है। "सेसेपमज्जणयत्ति"–गृहस्थों के अभाव में विधिपूर्वक विवेक से प्रमार्जन (पडिलेहण) करना।

मनःसंयम–दुष्टपरिणामों, असद् विचारों एवं व्यर्थ कल्प-नाओं को त्याग कर पवित्र, उन्नत एवं शुभ परिणाम रखना।

वचनसंयम--अपवित्र, असत्य, अहितकर एवं अप्रियवचन न कहना।

कायसंयम--दुष्ट चेष्टाओं, व्यर्थ चेष्टाओं एवं विवेकशून्य क्रियाओं का न करना।

Aho ! Shrutgyanam

इस प्रकार ये सतरह संयम हैं।

श्री समवायाङ्गवृत्ति में इनका यह विशेष अर्थ इसप्रकार दिया गया है। यथा—

अजीव संयम—विकट सुवर्ण, बहुमूल्य वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि ग्रहण करना अजीवकाय असंयम कहलाता है एवं ग्रहण नहीं करना अजीव संयम होता है।

उपेक्षा संयम—असंयम योगों में प्रवृत्त होना एवं संयम योगों में अप्रवृत्त होना यह उपेक्षा असंयम एवं इसके विपरीत अर्थात् असंयम योगों में प्रवृत्त न होना एवं संयम योगों में प्रवृत्त न होना एवं संयम योगों में प्रवृत्त होना उपेक्षासंयम है।

प्रमार्जनसंयम—पात्रादिका प्रमार्जन न करना. अथवा अविधि से करना यह प्रमार्जना असंयम एवं इसके विपरीत विधि सहित पात्रादिका प्रमार्जन करना—प्रमार्जन संयम होता है।

पहिले जो यह कहा है कि—अग्राह्यं "दूसपणमित्यादि" इसका अर्थ यह है कि-जिनमें रुई भरी हुई हो ऐसे पांच प्रकार के वस्त्रों का प्रतिलेखन नहीं किया जा सकता। क्योंकि उनके अन्दर का भाग आंखों से नहीं दीखता।

पांच प्रकार के वस्त्रों की विवेचना इस प्रकार है:—

"कुंचिकादिकं दुष्प्रतिलेखित दूष्य पंचकम्-तथाहि, कुञ्चिका, पूरिका, प्राचार, दाढिकालि, जयनानि।"

—कुञ्चिका, पूरिका, प्राचार, दाढिकालि एवं जयनानि ये पांच प्रकार के दुष्प्रतिलेखित वस्त्र हैं। कुञ्चिकादि के लक्षण ये हैं:—

Aho ! Shrutgyanam

कुञ्चिका--रूई से भरा हुआ वस्त्र ।

पूरिका--मोटे सन के डोरों से बना हुआ वस्त्र ।

प्राचार--दो तार मिला कर बनाया गया वस्त्र बड़ा कम्बल आदि ।

दाढिकालि-जुड़े हुए दो सूत का बना हुआ वस्त्र इसको विरलिका भी कहते हैं, जो ऊन व सूत की भी होती है ।

जयनानि--जीन इस नाम से प्रसिद्ध वस्त्र ।

यह उल्लेख बृहत्कल्प में किया गया है ।

इसी प्रकार शुषिरतृणादि (फूलण वाला घास) एवं रोम युक्त चर्म भी अग्राह्य है ।

प्रश्न ११०--कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त, क्षेत्रातिक्रान्त, एवं प्रमाणातिक्रान्त आहार आदि मुनियों को कल्पता नहीं है, परन्तु इन चारों अतिक्रान्तों का क्या अर्थ है ।

उत्तर-- तीन पहर से ऊपर रखा हुआ आहारदि कालातिक्रान्त होता है, अर्धयोजन से अधिक दूर आहारादि लेजाना या लाना अध्वातिक्रान्त होना है, साधुओं के लिये यह अपरिभोग्य है (इसमें साधुओं को विवेक से काम लेना चाहिये ।) जीतकल्पवृत्ति में क्षेत्रातिक्रान्त की परिभाषा देते हुए कहा है कि--

"क्षेत्रं सूर्यसम्बन्धिताप क्षेत्रं दिनमित्यर्थः तदातिक्रान्तं यत् यत् क्षेत्रातिक्रान्तम् "

सूर्य सम्बन्धी तापक्षेत्र दिन ही क्षेत्र है, उससे जो अतिक्रान्त है वह क्षेत्रकातिक्रान्त है ।

Aho ! Shrutgyanam

सूर्योदय के पूर्व ही आहारादि लाकर-सूर्योदय के पश्चात् भक्षण करना क्षेत्रातिक्रान्त कहलाता है।

इसी प्रकार बत्तीस कवल खाने के प्रमाण से अधिक खाना- प्रमाणातिक्रान्त होता है।

श्री भगवती सूत्र में कहा है कि-

"जेणं निग्गंथो वा निग्गंथी वा फासुएसणिज्जं असणं पाणं खाइमं साइमं अणुग्गेए सूरिए पडिग्गहित्ता उग्गए सूरिए आहारं आहारेइ एस णं गोयमा खित्तातिक्कंते पाण भोयणे।"

-जो साधु साध्वी अचित एवं निर्दोष अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम इस चार प्रकार के आहार को सूर्योदय से पूर्व ग्रहण करके सूर्योदय के बाद भक्षण करे तो हे गोतम ! वह अहार एवं जल क्षेत्रा-तिक्रान्त कहलाता है।

प्रश्न १११ प्रतिक्रमण सूत्र में कहे हुए अतिक्रम, व्यतिक्रम अतिचार एवं अनाचार का क्या स्वरूप है ?

उत्तर-- आवश्यक सूत्र की बृहद्वृत्ति में दिया गया उत्तर इस प्रश्न का उत्तर जानना चाहिये। आवश्यक वृत्ति का वह पाठ इस प्रकार है:--

आहाकम्मणिमंतणे पडिसुणमाणे अइक्कमो होइ।
पदभेदादि वइक्कमो गहिते तईओ तरो गिलिते॥

—कोई गृहस्थ आधाकर्मी अहार के लिये निमन्त्रण करे, और इसको मैं ग्रहण करूंगा" इस अभिप्राय से साधु यदि श्रवण भी करे तो साधु क्रिया का उल्लंघन रूप अतिक्रम दोष

Aho ! Shrutgyanam

होता है, क्योंकि ऐसा वचन सुनना भी साधु को नहीं कल्पता है, तो फिर ग्रहण कैसे किया जासकता है ?

निमन्त्रण आने पर पात्रादि ग्रहण करे वहाँ तक अतिक्रम दोष जानना। उसके पश्चात् पात्रादि का उपयोग करने पर स्वस्थान से प्रस्थान कर गृहस्थ के घर पहुंचे एवं दाता (गृहस्थ) आहारादि को पात्र में देवे वहाँ तक व्यतिक्रम, पश्चात् आहार ग्रहण कर जबतक उपाश्रय में आवे एवं इरियावहि की आलोचना करके कवल (ग्रास) हाथ में ले वहाँ तक अतिचार तथा उसके पश्चात् उत्तरकाल में अर्थात् ग्रास को मुंह में डाल देने पर अनाचार से दोष होता है। इस प्रकार आधाकर्मी आहार के दृष्टान्त से अतिक्रमादि चारों दोषों का स्वरूप बताया है, जिसको अन्यत्र भी जानना चाहिये।

प्रश्न ११२—स्थूल ब्रह्मचर्य व्रतधारी श्रावक, स्वदारसन्तोषी एवं परदार वर्जक इस प्रकार दो प्रकार के होते हैं। इन दोनों के इत्वर परिग्रहगमनादिक पाँच अति-चार कहे हैं। वे पाँच अतिचार दोनों को समान रूप से लगते हैं या न्यूनाधिक ?

उत्तर--प्रवचन सारोद्धार की टीका में इस सम्बन्ध में तीन मतों का उल्लेख किया गया है। जो इस प्रकार है।

कोई मनुष्य थोडे समय के लिये किराया आदि के द्वारा वेश्या को अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार कर उसका सेवन करे और अपनी बुद्धि की कल्पना से उस वेश्या को अपनी स्त्री मान लेता है तो उसका मन व्रत की उपेक्षा वाला होता है एवं थोड़े समय के लिये सेवन करने पर बाह्य दृष्टि से व्रत भंग भी नहीं होता परन्तु वस्तुतः परस्त्री होने से भंग होता है। अतः भंग **एवं अभंग** रूप यह प्रथम अतिचार है।

Aho ! Shrutgyanam

इसी प्रकार किसी से भी ग्रहण नहीं की गई, अन्य प्रकार का किराया देकर रखी हुई वेश्या को जिसका पति परदेश गया हो उस (प्रोषितभर्तृका)को, स्वैरिणी (स्वेच्छा से विचरण करने वाली को, कुलाङ्गना या अनाथ स्त्री को सेवन करने पर दूसरा अतिचार होता है। यह अनुपयोग से या अति-क्रमादिको लेकर अतिचार है। अतिक्रमादि का अर्थ ऊपर कह दिया गया है। वह अर्थ यहां मैथुनादि से आश्रित कर ग्रहण करना चाहिये। यहां इसका यह परमार्थ है कि जब तक अपने शरीर के साथ उसके शरीर का स्पर्शन करे तब तक अति-चार है।

"तद्वाच्य प्रदेशे स्वाऽवाच्यप्रक्षेपेतु अनाचार एवेति"

ये दो अतिचार स्वदार सन्तोषी के जानने चाहिये, परस्त्री त्याग करने वाले के नहीं। थोड़े समय के लिये रखी गई स्त्री वेश्या होने से एवं अपरिगृहीता अनाथ होने से इनमें परदारत्व का अभाव है। शेष तीन अतिचार तो दोनों को लगते हैं। यह हरिभद्रसूरि का मत है, यही सूत्रानुसारी भी है। कहा भी है कि--

"सदार सन्तोसस्स इमे पंच अइयारा जाणियव्वा न समाअरियव्वा ॥"

--स्वदार सन्तोषी को ये पांच अतिचार जानने चाहिये, किन्तु इनका आचरण नहीं करना।

दूसरे तो यह कहते हैं कि-'इत्वरपरिगृहीता यह अतिचार वस्दारसन्तोषी को होता है। पूर्व के अनुसार अपरिगृहीता का सेवन यह अतिचार तो परस्त्री का त्याग करने वाले को होता है, क्योंकि अपरगृहीता अर्थात् वेश्या ने यदि दूसरे किसी से

Aho ! Shrutgyanam

किराया लिया हो और वह उसके साथ गमन करे तो परदारगमन के दोष की सम्भावना होती है, क्योंकि कथंचित् उसमें परस्त्रीत्व है ; अतः व्रतभंग एवं वेश्या होने से अभंगत्व भी है। इससे भंगाऽभंग रूप अतिचार लगता है। यह दूसरा अतिचार है। यह दूसरा मत है।

दूसरे पुनः इस प्रकार कहते हैं :—

परदार वज्जिणो पंच हुंति तिन्नि उ सदारसंतुट्ठे ।
इत्थीइ तिन्नि पंच व भंग विगप्पेहि अइयारा ॥

—थोड़े समय के लिये दूसरे के द्वारा किराया देकर रखी गई वेश्या के साथ गमन करने वाले परदार त्यागी का व्रत भंग होता है, क्योंकि उसमें कथंचित् परदारत्व है, परन्तु लोक में वह परस्त्री के रूप में प्रसिद्ध नहीं है, इसलिये व्रतभंग नहीं भी होता है। इस प्रकार यह भंगाभंगरूप अतिचार है। तथा अपरिगृहीता, अनाथ या कुलांगना के साथ परदारत्यागी गमन करे तो अतिचार लगता है, परन्तु उसको कल्पना से तो दूसरे भर्ता का अभाव होने से वह परस्त्री नहीं है, इसलिये व्रत का अभंग है एवं लोक में तो वह परस्त्री के रूप में प्रसिद्ध है, इससे व्रत भंग है। अतः पूर्ववत् यह भंगाभंगरूप अतिचार है। शेष तीन अतिचार तो दोनों के होते हैं,

स्त्रियों में तो स्वपुरुषसन्तोष एवं परपुरुष के त्याग में कोई भेद नहीं होता; क्योंकि उसके लिये तो अपने पुरुष के अतिरिक्त सभी परपुरुष ही हैं। स्वदार सन्तोषी के समान स्त्रियों के भी स्वपुरुष विषयक परविवाह आदि तीन अतिचार होते हैं अथवा पांच अतिचार भी।

Aho ! Shrutgyanam

ये अतिचार किस प्रकार होते हैं ? इसका समाधान इस प्रकार है कि--दो आदि के दो अतिचार तो जब अपने पति के वारे के दिन सौतने वारा लिया हो और सौत के वारे को लुप्त कर पति का सेवन करे तो स्त्री को पहिला अतिचार लगता है। तथा स्त्री पति को छोड़ कर अतिक्रमादिक से दूसरे पुरुष के पास जाय अथवा ब्रह्मचारिणी अतिक्रमादि से अपने पति के पास जाय तब दूसरा अतिचार लगता है। शेष तीव्र अतिचार तो स्त्रियों को भी पूर्ववत् लगते हैं। इसी प्रकार तीव्र कामाभिलाषी होने पर कामभोगों में अतृप्तता के कारण तीसरा अतिचार होता है तथा कामक्रीड़ा एवं अनङ्गक्रीड़ा के हेतु श्रावक, अत्यन्त पाप भीरु होने से ब्रह्मचर्य पालने की इच्छा रखने वाला होता हुआ भी जब वेदना उदय की असहिष्णुता के कारण ब्रह्मचर्य का पालन न कर सके तब वेदनी शान्ति के लिये स्वदार सन्तोषादि व्रत ग्रहण करता है, तो उसका यह स्वदार रमण कर्म कामतीव्राभिलाषा एवं अनंगक्रीड़ा के अर्थ से निषिद्ध है, क्योंकि उसके सेवन में किसी प्रकार का गुण नहीं होता, अपितु राजयक्ष्मादि दोष ही होते हैं। इस प्रकार निषेध का आचरण करने पर भंग एवं अपने नियम में बाधा न आने से अभंग होता है। इस प्रकार भंगाभंग रूप अतिचार जानना। तीव्र कामाभिलाष एवं अनंगक्रीड़ा रूप इन दो अतिचारों का विवेचन दूसरे आचार्य विभिन्न रूप से करते हैं। यथा-वह स्वदार सन्तोषी विचार करता है कि मैंने तो मैथुन का ही प्रत्याख्यान (पच्चक्खग) किया है, इस प्रकार की अपनी कल्पना से वह वेश्यादि में उसका त्याग करता है, परन्तु आलिंगन आदि का नहीं। कथंचित् व्रत की सापेक्षता से ये अतिचार गिने जा सकते हैं। इसी प्रकार 'अपने-अपने पुत्रादिक से भिन्न दूसरों के पुत्र-पुत्री आदि का विवाह करना, कन्यारूपी

Aho ! Shrutgyanam

फल की इच्छा से अथवा स्नेह सम्बन्ध से परिणयन विधान करना, यह कार्य स्वदार सन्तोषी को अपनी स्त्री एवं परदार वर्जक को अपनी स्त्री एवं वेश्या के अतिरिक्त दूसरी किसी स्त्री के साथ मन वचन काया से मैथुन नहीं करना एवं नहीं कराना चाहिये। इस प्रकार जब व्रत ग्रहण किया हो तो पर विवाह करना मैथुन का कारण है। अर्थात् यह अर्थ से निषिद्ध ही है। मैथुनव्रतकारी यह मानता है कि--मैं तो यह विवाह ही करा रहा हूं मैथुन थोड़े ही करा रहा हूँ। इस दृष्टि से व्रत की सापेक्षता होने के कारण यह परविवाह करण अभिचार रूप ही है। कन्याफल की इच्छा तो सम्यग्दृष्टि की अव्युत्पन्न अवस्था में सम्भव होती है एवं मिथ्यादृष्टि की भद्रक अवस्था में होता है, परन्तु उपकार के लिये व्रतदान में वह सम्भव है।

शंका--पर विवाह के समान अपने पुत्र-पुत्री के विवाह में भी यह दोष समान ही है ?

समाधान--यह सत्य है, परन्तु अपनी कन्या आदि का विवाह यदि न कराया जाय तो वह स्वच्छन्द हो जाती है, जिससे शासन का उपघात होता है। विवाह करने से तो पति के नियन्त्रण में रहने के कारण स्वच्छन्द नहीं होती है, जैसा कि यादव शिरोमणि, कृष्ण एवं चेटक महाराज के अपने पुत्र-पुत्रियों के सम्बन्ध में भी विवाह का नियम सुना जाता है। यह चिन्ता करने वाले दूसरों के प्रति सद्भाव से जानना चाहिये। इस सम्बन्ध में योगशास्त्र की टीका में भी उल्लेख किया गया है।

प्रश्न ११३—साधु एवं श्रावक जो चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि तप करते हैं उसके प्रथम एवं अन्तिम दिन एकाशन का पच्चक्खाण करने का नियम है या नहीं ?

Aho ! Shrutgyanam

उत्तर-- तप के आदि अन्त में एकाशन करने का नियम नहीं है, ऐसा जाना जाता है।

चतुर्थ भक्त अर्थात् चार समय खाने का जहाँ त्याग हो वह चतुर्थभक्त कहाता है। यह चतुर्थभक्त शास्त्रोक्त होने से नियम क्यों नहीं है ? यदि ऐसी शंका है तो सुनो ! चतुर्थभक्त यह तो व्युत्पत्ति मात्र है। जैसे गच्छतीति गौः-जाती है वह गाय, इस व्युत्पत्ति के समान चार बार जो खाया गया वह चतुर्थभक्त, इस प्रकार यह व्युत्पत्ति है। इसका तात्पर्य यह है कि चतुर्थभक्त यह तो उपवास की संज्ञा है।

श्री भगवती सूत्र की टीका के द्वितीय शतक के अन्तर्गत चतुर्थ उद्देश में कहा है कि--

"चउत्थं चउत्थेणं" चतुर्थं भक्तं यावद् भक्तं त्यज्यते तत्र तत् चतुर्थमियं चोपवासस्य संज्ञा। एवं षष्ठादिकमुपवास द्वयादेरिति "अन्तकृद्दशावृत्तौ अप्युक्तंरत्नावली तपोऽधिकारे, चतुर्थमेकेन उपवासेन षष्ठं द्वाभ्याम्, अष्टमं त्रिभिरिति" किञ्चयदि चतुर्थादेराद्यन्तदिनयो रेकाशनकानियमो भवेत् तर्हि" वासा वासं पज्जोसवियाण छट्ठभत्तियस्स कप्पंति दोगोअरकाला" इत्यादि कल्पसूत्र पाठो विरुध्येत् !

--चार समय जिसमें भोजन का त्याग किया जाय वह चतुर्थ भक्त, चतुर्थ यह उपवास की संज्ञा है इसी प्रकार दो दो उपवास का नाम छट्ठ, है अन्तकृद्दशा वृत्तिमें भी रत्नावली तप के अधिकार में एक उपवास के लिये चतुर्थ, दो के लिये छट्ठ, तीन के लिये अट्ठम कहा है। यदि चतुर्थआदि के प्रथम एवं

Aho ! Shrutgyanam

अन्तिम दिन में एकाशन करने का नियम हो तो चातुर्मास में छट्ठतप वाले साधु को दो बार गोचरी जाना कल्पता है, इत्यादि कल्पसूत्र के पाठ के साथ विरोध आता है क्योंकि वहां छट्ठ के पारणे में दो बार गृहस्थ के घर आहार के निमित्त जाने का कहा है ।

प्रश्न ११४--श्रावक रात्रि भोजन का त्याग तो भोगोपभोग परिमाण नामक सप्तम व्रत ही अभक्ष्य के त्याग के साथ कर देता है, फिर श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं में जो पांचवी प्रतिमा है, उसमें रात्रि भोजन का त्याग कैसे लिखा है ?

उत्तर-- प्राय: पूर्व में अशन खादिम का त्याग किया था एवं पान (पेय पदार्थ) तथा स्वादिम को परतन्त्रता वश खुला रखा था । पांचवी प्रतिमा में तो इन दोनों के त्याग का भी उल्लेख है । इसलिये ऐसा लिखने में कोई दोष नहीं है ।

प्रश्न ११५--दैवसिक आदि पंच प्रतिक्रमण में गमा अर्थात् सदृश-पाठ कितने हैं तथा आवश्यक निर्युक्ति आदि ग्रथों में समस्त प्रतिक्रमणों की आदि में दैवसिक प्रतिक्रमण की गणना किसलिये की है ?

उत्तर--दैवसिक आदि पंच प्रतिक्रमण में तीन गमा हैं । वे इस प्रकार हैं :--देव वन्दन करके चार क्षमाश्रमणपूर्वक आचार्यादि गुरुजनों को वन्दन कर "सव्वस्सवि" बोलने के बाद जो करेमि भंते इत्यादि उक्ति-पूर्वक इच्छामि ठामिउं काउसग्गं इत्यादि बोला जाता है

Aho ! Shrutgyanam

यह प्रथम गम है। २. चतुर्थआवश्यक में करेमिभंते इत्यादि उक्तिपूर्वक जो इच्छामि पडिक्कउं इत्यादि बोला जाता है, यह द्वितीय गम है। ३. तथा पंचम आवश्यक में जो करेमिभंते इत्यादि उक्तिपूर्वक "इच्छामि ठामिउं काउसग्गं" इत्यादि बोला जाता है यह तृतीय गम है। इसी प्रकार दैवसिक की प्रथम गणना तो दिन की प्रधानता से की गई है। आवश्यक निर्युक्ति की बृहट्टीका में इस सम्बन्ध में कहा है कि--

"देवसिय राइय पक्खिय चाउम्मासे तहेव वरिसे य
इक्केक्के तिन्नि गमा नायव्वा पंचसुएतेसु।"

--दिवस में जो हो उसको दैवसिक कहते हैं, ऐसे दैवसिक में तथा इसी प्रकार रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक एवं वार्षिक इन पांचों प्रतिक्रमणों में अर्थात् दैवसिक आदि एक.एक प्रतिक्रमण में तीन गमा होते हैं। इन पाँचों प्रतिक्रमणों में तीन गमा इसलिये होते हैं कि १ सामायिक करके कायोत्सर्ग करना, २ सामायिक करके प्रतिक्रमण करना, ३ एवं सामायिक करकेही पुनः कायोत्सर्ग करना होता है।

प्रश्न ११६--कोयोत्सर्ग में उच्छ्वास आदि किस विधि से लेना चाहिये ?

उत्तर-- कायोत्सर्ग में उच्छ्वास आदि सम्यक् यतना से लेना चाहिये। यतना का स्वरूप आवश्यक बृहद् वृत्ति से जानना चाहिये, तत्सम्बन्धी संक्षिप्त पाठ इस प्रकार है :--

Aho ! Shrutgyanam

"उसासं न णिरुंभई–कायोत्सर्गे उच्छ्वासं न निरुणद्धि, किन्तु सूक्ष्मोच्छ्वासमेव यतनया मुंचति नोल्वणं, माभूत् सत्त्व विघात इति, एवं कासक्षुतादीनि अपि कायोत्सर्गे अग्रतो हस्त दानेन यतनया क्रियन्ते न निरुध्यन्ते, वात निसर्गे च शब्दस्य यतना क्रियते न निसृष्टमुच्यते इत्यादि ।"

कायोत्सर्ग में उच्छ्वास रोकना नहीं चाहिये, परन्तु सूक्ष्म यतना से छोड़ना चाहिये, जोर से नहीं, जिससे किसी सत्त्व का घात न हो। इसी प्रकार खाँसी, छींक आदि भी काउसग्ग में मुख के आगे हाथ रखकर यतना करना चाहिये परन्तु रोके नहीं। वात संचार होतो शब्द की यतना करे, किन्तु निकला हो ऐसा नहीं छोड़ना चाहिये।

यहां जीतकल्प वृत्ति में इतनी विशेषता है कि--

"अधोवात निर्गमे च करेण एक पुताकर्षणं कार्यं येन् महान् कुत्सितः शब्दो न भवति, अन्यथा तु अविधिरिति।"

--अधोवात निकले उस समय हाथ से एक पुता का आकर्षण करना चाहिये, जिससे महान् कुत्सित शब्द न हो। यदि ऐसा नहीं किया जाय तो अविधि होती है।

प्रश्न ११७--एकाशन आदि पच्चक्खाण में "पारिट्ठावणियागारेणम्" ऐसा आगार का पाठ आता है, इसका अर्थ क्या है ? तथा परठा जाने वाला पदार्थ किसको देना चाहिये ?

Aho ! Shrutgyanam

उत्तर— परिष्ठापन अर्थात् सर्वथा त्याग करना। पच्चक्खाण की किये विगय आदिका मूलतः त्याग करना ही परिट्ठावणियागार कहलाता है। दूसरे स्थान पर इन पदार्थों का त्याग किया जाय तो बहुदोष की सम्भावना रहती है। आगमिक न्याय से आश्रित करने पर गुण की सम्भावना रहती है। इसलिये गुरु आज्ञा से उपभोग करने से पच्चक्खाण का भंग नहीं होता है। ऐसा आशय प्रवचन सारोद्धार की टीका में है। परठने की वस्तु किसको देना, इस सम्बन्ध में कहा है एक साधु आयम्बिल वाला हो एवं दूसरा चतुर्थभक्त वाला हो चतुर्थभक्तिक को देना चाहिये। चतुर्थ-भक्तिको में बाल एवं वृद्ध हो तो बालक को देना। वह बालक भी सशक्त एवं अशक्त हो तो अशक्त को देना, भ्रमण शील एवं बैठा रहने वाला हो तो भ्रमण-शील को देना, वह भ्रमणशील भी यदि प्राघूर्णक (आगन्तुक) एवं वहाँ रहने वाला होतो आगन्तुक को देना एवं आगन्तुक के अभाव में वहीं के रहने वाले को देना चाहिये। इस प्रकार चार पदों से १६ भंग होते हैं। अन्तिम भंग तो वृद्ध सशक्त अभ्रमण-शील एवं वहीं रहने वाले का होता है। इनमें पहले भंग वाले को देना, उसके अभाव में दूसरे भंग वाले को देना, इसीप्रकार अन्तिम भंग वाले को भी देना चाहिये। ऐसे ही आयम्बिल के समान छट्ठवाले में एवं अट्ठम भक्त वाले में १६ भंग होते हैं। तथा आयम्बिल एवं निर्विकृतिक में भी १६ भंग होते हैं।

परिष्ठायनिक पदार्थ न केवल आयम्बिल वाले को ही देना

Aho ! Shrutgyanam

किन्तु गुरु से पच्चक्खान लिये हुए को भी देना चाहिये। दशम-भक्तिक आदि को नहीं देना। यह आगार साधुओं के लिए ही है श्रावक तो इस सूत्र पाठ की अखण्डता के लिये उच्चारण करता है।

आवश्यक लघुवृत्ति में वृहद्वृत्ति का पाठ तो इस प्रकार है:– यहाँ शिष्य प्रश्न करता है:—

"केरिसयस्स साहुस्स पारिट्ठावणियं दायव्वं न दायव्वं वा। आयरिओ भणइ आयंबिल मणायंबिले।"

व्याख्या—

पारिट्ठावणिय भुंजणे जोग्गा साधू दुविहा आयंबिलग्गा अणायं बिलग्गा, अणायं बिलग्गा विरहिया एक्कासणेक्कट्ठाण चउत्थछट्ठट्ठम निव्विगइय पज्जवसाणा दसमभत्तियादीणं मंडलीए उव्वरियं पारिट्ठावणियं न कप्पति दाउं, तेसिं पेज्जं उण्हयं वा दिज्जइ अविय तेसिं देवया वि होज्जा।"

अर्थ:—परिष्ठापनिक पदार्थ भोजन करने योग्य साधु दो प्रकार के हैं:—

१. आचम्ल वाले २. असाचाम्ल वाले एकाशन, एकलठाणा, चतुर्थ अमात् उपवास, छटठ-वेला-अट्ठम-तेला और निर्विकक्रतिक पत्त पर्यन्त वाले, दशमभक्त आदि ऊंची तपस्या वालों को पारिष्ठापनिक पदार्थ देना नहीं

Aho ! Shrutgyanam

कल्पता है। उन्हें पानी भी गर्म दिया जाता है; और उनका शरीर देवाधिष्ठित भी हो जाता है। अतः देने का निषेध है।

प्रश्न ११८—साधु एवं श्रावकों को कितनी साक्षी से प्रत्याख्यान करने चाहिये।

उत्तर— साधु एवं श्रावकों को आत्म, देव एवं गुरु इन तीन साक्षियों से प्रत्याख्यान करने चाहिये। पहिले आत्म-साक्षी से, पश्चात् देवसाक्षी से एवं अनन्तर गुरुसाक्षी से करना।

ततो गुरूणा मभ्यर्णे, प्रतिपत्ति पुरस्सरम्।
विदधीत विशुद्धात्मा, प्रत्याख्यानप्रकाशनम्॥

—उसके बाद निर्मल चित्त वाला वन्दना-पूर्वक गुरु के पास पच्चक्खाण करे। अर्थात् देववन्दन के लिये आये हुए, स्नानादि दर्शन एवं धर्मकथादि के लिये वहीं बैठे हुए धर्माचार्य गुरु के पास उचित प्रदेश में निर्मल चित्त एवं दम्भरहित होकर वन्दन-पूर्वक प्रत्याख्यान करना चाहिये। देव के समीप किये हुए प्रत्याख्यान का प्रकाशन गुरु के सामने प्रगट करना चाहिये। इस प्रकार प्रस्चायान का विधान, आत्मसाक्षिक, देवसाक्षिक एवं गुरुसाक्षिक रूपमें तीन प्रकार का होता है।

प्रश्न ११९—छद्मस्थ साधु तो प्रतिलेखना करते ही हैं, किन्तु केवल ज्ञानी भी प्रतिलेखना करते हैं या नहीं।

उत्तर— यदि वस्यादिक जीव संसक्त हों तो केवली भी प्रति-

Aho ! Shrutgyanam

लेखना करते हैं, अन्यथा नहीं। छद्मस्थ मुनियों को तो वस्यादि जीवसंसक्त हों या न हों, प्रतिलेखना करनी ही चाहिये। जैसा कि भद्रबाहु स्वामी ने ओधनिर्युक्ति में कहा है :—

"पाणीहिं संसत्ता पडिलेहा हुंति केवलीणं तु।
संसत्तम संसत्ता छउमत्थाणं तु पडिलेहा॥"

—वस्यादि को जीव लगे हों तो केवली प्रतिलेखना करते हैं एवं छद्मस्थ तो जीव लगे हों या न लगे हों तो भी प्रति लेखना करते ही हैं।

प्रश्न १२०—आधुनिक कई वेशधारी निह्नव सर्वदा डोरी से मुंह पर मुँहपत्ती बाँधे रहते हैं, यह जिनाज्ञानुसारी है या जिनाज्ञा विरुद्ध ?

उत्तर—यह जिनाज्ञाविरुद्ध ही मालूम होता है। किसी भी सूत्र में यह विधि नहीं कही गई है। शास्त्रों में जहॉ मुख-वस्त्रिका का अधिकार है, वहाँ कहीं भी डोरे का नाम भी नहीं है। इसी प्रकार सुधर्मा स्वामी से लेकर अवि-च्छिन्न वृद्ध परम्परा से भी किसी भी धर्म-गच्छ में डोरे से मुखवस्त्रिका को बाँधना दिखाई नहीं देता है। इसलिये यह जिनागम एवं सुविहित आचरणों से विरुद्ध ही है। दूसरे, गणधरों ने भी मुँहपत्ती बाँधी थी, परन्तु वह यथावसर ही बाँधी, सर्वदा के लिये नहीं। यदि सर्वदा ही मुँहपत्ती बँधी हुई हो तो विपाकसूत्र का यह पाठ असंगत हो जाता है। विपाकसूत्र के एकादशाङ्ग के प्रथमअध्ययन का वह पाठ इस प्रकार है :—

Aho ! Shrutgyanam

"तएणं सा मिया देवी तं कट्ठसगडियं अणुकड्ढ माणी जेणे व भूमि घरए तेणेव उवागच्छइ उवागच्छइत्ता चउप्पुडेणं वत्थेणं मुहं बंधमाणी, भगवं, गोयमा," एवं वयासी तुब्भेविणं भंते मुहपोत्तियाए मुहं बंधह तएणं से भगवं गोयमा मियादेवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधइ त्ति,"

—इसके बाद मृगावती देवी काठ की सिगड़ी को खींच कर जहाँ भूमिधर (भोंयरा) है, वहां आती है। आकर चार पड़ वाले वस्त्र में मुख बाँधकर भगवान गौतम स्वामी को कहती है कि—भगवन् ! आप भी मुंहपत्ती से मुख बांधो ! उसके पश्चात् गौतम स्वामी मुंहपत्ती से मुख बांधते हैं।

इस पाठ से मुखवस्त्रिका से सदा के लिये मुखको बांधने वाले लिंगी सूत्र के उत्थापक होने से महा मिथ्या दृष्टि होते हैं, ऐसे महा मिथ्यादृष्टियों का मुख सम्यक् दृष्टि वालों के लिये अदृष्टव्य होता है, अर्थात् इनका मुख सम्यक् दृष्टियों को नहीं देखना चाहिये।

आगम में कहा भी है कि—

**"जे जिणवयणुत्तिरणं वयणं भासंति अहव मन्नंति ।
सम्मदिट्ठीणं तद्दंसणं पि संसार वुड्ढिकरं ॥"**

—जो जिन वचनों से विरुद्ध वचन बोलते हैं या मानते हैं, उनका दर्शन भी सम्यक्दृष्टि वालों के लिये संसार-वर्धक होता है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न १२१--इस समय कुछ साधु रजोहरण (ओघे) के ऊपर ऊन की निशिथिया (ओघेरिया) सर्वदा बांध कर रखते हैं, यह क्या आगम के अनुसार है या रूढि-मात्र ही है ।

उत्तर— यह रूढ़िमात्र ही मालूम होता है । आगम में समयानुसार बैठने के लिये उसका उपयोग करना, ऐसा आदेश है । यह बृहत्कल्पवृत्ति के द्वितीय खण्ड में कहा है कि—

"पाणिदय इत्यादि" गाथायाम् "निसिज्जित्ति"

रजोहरण की दो निषद्या बैठने के लिए रखी जाती है । यहां यद्यपि दो निषद्या कही है, किन्तु इसी शास्त्र में अन्त में एक का ही उल्लेख किया गया है । उसका पाठ इसप्रकार है:—

"औपग्रहिक्यां निषद्याया मुपविष्टश्चार्थंशृणोतीति"—

औपग्रहिकी में निषद्या ऊपर बैठे हुए मुनि अर्थ सुनते हैं । इसी प्रकार योगशास्त्र वृत्ति में भी प्रथम प्रकाश के चरित्र अधिकार में कहा है कि "जिस स्थान पर बैठने की इच्छा हो उस स्थान को चक्षु से न देखकर रजोहरण से प्रमार्जित करके निषद्य को बिछाकर बैठे ।" ऐसा ही पाठ प्रवचन सारोद्धार की बृहद्वृत्ति में एवं श्रीमलयागिरिजी कृत पिण्डनिर्युक्ति की टीका में भी है ।

प्रश्न १२२—साधु साध्वी एवं श्रावक श्राविका आदि कितनी साक्षी से प्रत्याख्यान करें ?

उत्तर:— आत्मसाक्षी, देव साक्षी, और गुरु साक्षी, इन तीन साक्षी से करें । पहले आत्म साक्षी से प्रत्याख्यान

Aho ! Shrutgyanam

करके फिर क्रमशः देव साक्षिक और गुरु साक्षिक करना चाहिये । जैसा कि योग शास्त्र के तृतीय प्रकाश में कहा है:—

"ततो गुरूणामभ्यर्णे, प्रतिपत्ति पुरस्सरम् ।"
विदधीत विशुद्धात्मा, प्रत्याख्यान प्रकाशनम् ॥"

इसके पश्चात् देवन्दन के लिए पधारे हुए अथवा स्नात्र पूजा देखने या धर्म कथादि के लिए मन्दिर में विराजमान आचार्य आदि गुरुओं के समीप उचित स्थान में औचित्य पूर्वक साढ़े तीन हाथ प्रमाण क्षेत्र से बाहिर बहुमान करता हुआ अथवा द्वादशावर्त वन्दनादि पूर्वक प्रत्याख्यान करे। विशुद्धात्मा, निर्मलचित्त होना चाहिये । दम्भ (ढोंग) आदि से युक्त न हो । भगवान् वीतरागदेव के सामने किये हुये प्रत्याख्यान को गुरु महाराज के सामने प्रकाशित करना भी आवश्यक है ।

इस प्रकार आत्मसाक्षिक, देव साक्षिक एवं गुरुसाक्षिक प्रत्याख्यान करना युक्त है। सारांश कि प्रतिक्रमण में स्वयं कर ले, फिर मन्दिर में देव के सम्मुख, और उपाश्रय में गुरुमुख से करना चाहिये ।

प्रश्न १२३—साधुओं को दिन में शयन करना शास्त्रनिषिद्ध होने से दैवसिक प्रतिक्रमण में "इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसिज्झाए" इत्यादि सूत्र से दिन से शयन करने के अतिचार का प्रतिक्रमण किस-प्रकार संगत हो सकता है ? इसी प्रकार रात्रि में गोचरी जाना असम्भव होने पर भी रात्रि के

Aho ! Shrutgyanam

प्रति्क्रमण में "पडिक्कमामि गोयर चरियाए" इत्यादि सूत्र से तद् विषयक अतिचार का प्रतिक्रमण किस प्रकार उचित है ?

उत्तर— उत्सर्ग से दिन में शयन का निषेध होने पर भी अपवाद से मार्ग के श्रम के कारण निषेध न होने से कोई दोष नहीं है। यहां इस विषय में यह सूत्र ही अर्थ का ज्ञापक जानना चाहिये, जैसा कि साधु प्रतिक्रमण सूत्र की अवचूर्णि में कहा है कि—

"दिवा शयनस्य निषिद्धत्वात् असम्भव एव अस्यातिचारस्य, न अपवाद विषयत्वात् अस्य। तथाहि—अपवादतः सुप्यते एव साध्व खेदादौ इदमेव ज्ञापकमिति" एवमावश्यक बृहद्वृत्तावपि ज्ञेयम्।

—दिन में शयन निषेध होने से यह अतिचार असम्भव है इस शंका का समाधान यह है कि—यह सूत्र अपवाद विषयक है अतः दिन में शयन करने का निषेध नहीं है। अपवादवश मार्ग में चलते हुए यदि कोई थक जाय तो शयन करना ही है। इस प्रकार यह सूत्र ही इस अर्थ का ज्ञापक है। आवश्यक वृत्ति में भी इस प्रकरण का उल्लेख है।

इसी प्रकार रात्रि में गोचरी जाना असम्भव होने पर भी स्वप्नादि में यह सम्भव है। इसलिये रात्रि प्रतिक्रमण में भी गोचरी के अतिचार का प्रतिक्रमण उचित हो है। इसमें कोई दोष नहीं है। श्री प्रतिक्रमण सूत्र की अवचूर्णि में कहा है कि—

रात्रिप्रतिक्रमणे "इच्छामि पडिक्कमिउं गोयर चरियाए" यह सूत्र निरर्थक, क्योंकि "रात्रौ अस्य असम्भवात्"—रात्रि

Aho ! Shrutgyanam

में गोचरी का होना असम्भव है। इस शंका के समाधान में पुनः कहा है कि—स्वप्नादौ सम्भवादित्यदोषः"–स्वप्नादि में गोचरी का होना सम्भव है, इसलिए दोष नहीं है।

प्रश्न १२४—केवल ज्ञानी साधु मोक्ष को जाते हुए चौदहवें गुणस्थानक के चरम समय में जिन कर्म पुद्गलों को निर्जरा करते हैं वे परित्यक्त कर्म स्वभाव वाले पुद्गल परमाणु कितने क्षेत्र को स्पर्श करते हैं ?

उत्तर— वे पुद्गल सारे ही लोक को स्पर्श करते हैं। श्री प्रज्ञापना सूत्र के इन्द्रिय पद के अन्तर्गत प्रथम उद्देशक में इस सम्बन्ध में इस प्रकार का पाठ है :—

"अणगारस्स णं भंते भावियप्पणो मारणंतियसमुग्धाएणंमोहयस्स जे चरिमा निज्जरा पोग्गला सुहुमाणं ते पोग्गला पण्णत्ता समणाउसो सव्वं लोगं पि य णं ते ओगाहित्ता णं चिट्ठंति हंता गोयमा।"

—हे भगवन् ! मारणान्तिक समुद्घात से भावित्तात्मा अर्थात् ज्ञान दर्शनादि गुणों से स्पष्ट मुनि के शैलेशीकाल में अन्त्य समय में होने वाले निर्जरा के पुद्गल कर्मभाव से रहित परमाणुओं को आपने निश्चित रूपसे सूक्ष्म होने से चक्षु आदि इन्द्रियों के अविषय भूत कहे हैं।

इस प्रकार गौतमस्वामी द्वारा प्रश्न करने पर भगवान् कहते हैं कि—हंता गोयमा—'हे आयुष्मन् ! श्रमण ! इस प्रकार से निश्चित है कि वे पुद्गल सूक्ष्म हैं एवं सर्वलोक को स्पर्श करके रहते हैं।

Aho ! Shrutgyanam

शंका–इन पुद्गलों को छद्मस्थ जीव जानता है व देखता है कि नहीं ?

समाधान–इन पुद्गलों को केवली समस्त आत्म प्रदेशों से जानते हैं व देखते हैं। विशिष्ट अवधि ज्ञानरहित छद्मस्थ जीव न जानता है व न देखता ही है। इसी प्रकार कोई देव भी नहीं जानता है व न देखता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य तो किस प्रकार जान सकता है व देख सकता है ? इत्यादि अधिकार पन्नवणा सूत्र से जानना चाहिये।

प्रश्न १२५– दर्पण को देखने वाला मनुष्य क्या दर्पण को देखता है या अपने शरीर को देखता है अथवा अपने प्रतिबिम्ब को देखता है ?

उत्तर– प्रत्यक्षरूप में सामने होने से दर्पण को देखने वाला मनुष्य दपण तो देखता ही है, परन्तु अपने शरीर को नहीं देखता ! क्योंकि उसका अपना शरीर अपनी आत्मा में स्थित रहता है, दर्पण में नहीं। वह अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को देखता है, क्योंकि उसमें छाया का पुद्गलरूप है। श्री प्रज्ञापना सूत्र की वृत्ति में कहा है कि –

"आयंसो पहमाणो"–

दर्पण को देखने वाला मनुष्य क्या दर्पण को देखता है या शरीर के प्रतिबिम्ब को ? "भगवान् आह–" भगवान् बोले–दर्पण को तो वह देखता ही है क्योंकि उसका प्रत्यक्षरूप व्यवस्थित रूप से उसके द्वारा जाना गया है, किन्तु अपने शरीर को नहीं देखता है क्योंकि उसका उस (दर्पण में)अभाव है,

Aho ! Shrutgyanam

इसलिये कि उसका अपना शरीर उसकी अपनी आत्मा में स्थित है, दर्पण में नहीं। अतः अपने शरीर को वह कैसे देख सकता है! "पालिभागमिति"--अपने शरीर के प्रतिबिम्ब को वह देखता है। प्रतिबिम्ब-छाया का पुद्गल है। तथा समस्त ऐन्द्रिक वस्तु स्थूल एवं वृद्धिहानि की धर्मवाली है। किरणों के समान समस्त किरणे होती हैं, इसप्रकार छाया का पुद्गलरूप व्यवहृत होता है। ये छाया पुद्गल प्रत्यक्ष ही सिद्ध हैं। अतएव प्रत्येक स्थूल वस्तु की छाया की प्रतिति प्रत्येक प्राणी को होती है।

प्रश्न १२६--कम्बलादि वस्त्र अतिशय दृढ़ता के साथ वेष्टित होने पर जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहित (स्पर्श) करता है, क्या खुला करने (फैलाने) पर भी उतने ही आकाश प्रदेशों को अवगाहित करता है या न्यूनाधिक आकाश प्रदेशों को।

उत्तर— दोनों प्रकार से भी वह वस्त्र समान आकाश प्रदेशों को स्पर्श करता है न्यूनाधिक रूप में नहीं। इसमें केवल धन और प्रतर मात्र की विशेषता है–प्रदेश संख्या तो दोनों में बराबर है। श्री प्रज्ञापना सूत्र-वृत्ति में इन्द्रियपद के अन्तर्गत प्रथमोद्देशक में "कंबल साडएणं भंते—" इत्यादि पाट में यह अधि-कार है।

प्रश्न १२७—"अचित्त जोणि सुरनिरय" इस वचन से सूत्र में देव एवं नारकों की सचित्त योनि कही है, वह कैसे सम्भव है? क्योंकि सूत्र में सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव को सर्वलोक व्यापी कहा है!

उत्तर— सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सर्वलोक में व्याप्त होने पर भी उनके प्रदेशों से देव एवं नारकों के उपपात स्थान के

Aho ! Shrutgyanam

पुद्गल परस्पर अनुपम से सम्बद्ध नहीं है, इसलिये उनकी अचित्त योनि होती ही है, ऐसा कहने में कोई दोष नहीं है जैसा कि श्री प्रज्ञापना सूत्रके नवम पद में कहा है—

यथ:—"यद्यपि च सूक्ष्मैकेन्द्रियाः सकल लोक व्यापिनः तथापि न तत्प्रदेशैरूपपात स्थान पुद्गलः अन्योन्यानुगमेन सम्बद्धा, इति अचिता एवं तेषां योनिरिति। एवं संग्रहणी वृत्तावपि बोध्यम्। श्रीभगवती वृत्तौ दशम शतके द्वितीयोद्देशकेऽप्युक्तं-तथाहि" सत्यपि एकेन्द्रिय सूक्ष्मजीव निकाय सम्भवे नारकदेवानां यद् उपपात क्षेत्रं तन्न केनचिज्जीवेन परिगृहीतमिति अचित्ता तेषां योनिरिति।"

--यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सकल लोक व्यापी है तो भी उनके प्रदेशों से देव नारकों के उपपात स्थान के पुद्गल परस्पर अनुगम से सम्बद्ध नहीं है, इसलिये उनकी अचित्त योनि ही है। यही पाठ संग्रहणी वृत्ति में भी है। श्री भगवतीसूत्र की टीका में दशम शतक के द्वितीय उद्देशक में भी कहा है कि—"सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव निकाय सम्भव है, फिर भी देव एवं नारकों का जो उपपात क्षेत्र है, वह किसी भी जीव से ग्रहण किया हुआ नहीं है, इससे उनकी योनि अचित्त है।

प्रश्न १२८—-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय एवं जीवास्तिकाय, इन चारों ही द्रव्यों के जो जो आठ मध्य प्रदेश हैं, वे रूचक प्रदेश कहलाते हैं।

Aho ! Shrutgyanam

उनमें आकाश के आठ मध्यप्रदेश तो समभूतल प्रदेश में मेरु के मध्य स्थित हैं ही यह प्रसिद्ध ही है, किन्तु धर्म, अधर्म और जीवास्तिकाय के मध्य-प्रदेश कहाँ रहते हैं ? तथा केवली भगवान् जब समुद्धान करते हैं, तब जीव के आठ मध्य प्रदेश कहां रहते हैं ? (१) और वे आठ जीव प्रदेश कितने आकाश प्रदेशों में अवगाहन करते हैं ? (२) तथा वे आठ प्रदेश कर्मों से लिप्त होते हैं कि नहीं ? (३)

उत्तर — धर्मास्तिकाय एवं अधर्मास्तिकाय के जो आठ प्रदेश हैं वे सर्वदा आकाशास्तिकाय के आठ रूचक प्रदेशों में रहते हैं, क्योंकि इन दोनों के प्रदेश लोकाकाश के समान प्रमाण वाले हैं तथा अपने प्रदेशों से लोकाकाश प्रदेशों में व्याप्त होकर सर्वदा अविचल रूप में रहते हैं।

जीवों के आठ मध्यप्रदेश तो अपने अपने शरीर के मध्य-भाग में ही सर्वदा रहते हैं तथा केवली समुद्धात के समय ये मेरू पर्वत के मध्य में स्थित आकाशास्तिकाय के आठ रूचक प्रदेशों में रहते हैं। एदं अन्य समय में अविचल हैं ही। (१)

जीवों के ये आठ रुचक प्रदेश जघन्य से एक आकाश-प्रदेश में अथवा तीन, चार पांच या ६ आकाश प्रदेशों में भी रहते हैं, क्योंकि इनमें संकोच एवं विकास का स्वभाव रहता है। उत्कृष्ट से आठ आकाश प्रदेशों में (एक एक प्रदेश में) अव-गाहन करते हैं। परन्तु सात आकाश प्रदेशों से अवगाहन नहीं करते क्योंकि इनका वैसा ही स्वभाव है। (२)

जीवों के ये आठ रूचक प्रदेश अविचल होने से कर्मों से लिप्त नहीं होते। सर्वदा निराकरण ही रहते हैं। शेष आत्म

Aho ! Shrutgyanam

प्रदेश उबलते हुए जल के समान निरन्तर उद्वर्तन परिवर्तन-शील (चल स्वभावी) होने से कर्म लिप्त होते हैं। (३) यह सम्पूर्ण अधिकार श्री भगवती सूत्र, पच्चीसवें शतक के चतुर्थ उद्देशक में, स्थानाङ्ग सूत्र के आठवें सूत्र में एवं आचाराङ्ग सूत्र में द्वितीय अध्ययन के प्रथम उद्देशक में तथा ज्ञान दीपिका में भी कहा है।

प्रश्न १२९—स्थानाङ्गादि शास्त्रों में जीव, अजीव आदि नव तत्त्व कहे हैं परन्तु पुण्यादि सात तत्व जीव अजीव से व्यतिरिक्त (भिन्न) नहीं हैं। क्योंकि ये संयोग से बने हुए हैं। अर्थात् पुण्य एवं पाप ये कर्म हैं एवं बन्ध भी कर्म का ही होता है और कर्म पुद्गलों का परिणाम है तथा पुद्गल अजीव ही हैं। इसी प्रकार मिथ्या दर्शन दिरूप आश्रव तो जीव का परिणाम एवं आश्रव निरोध रूप संवर भी निवृत्ति रूप जीव का परिणाम है। कर्म रूप पुद्गल परमाणुओं का नाश करना निर्जरा है तथा अपनी शक्ति से कर्म एवं जीव का मूलतः पार्थक्य होना अर्थात् सर्वकर्म विरहित होना ही मोक्ष है। अतः जीव और अजीव ये दो ही तत्त्व हैं।

उत्तर — यह सत्य है । सामान्यतया जीव एवं अजीव ये दो ही पदार्थ सूत्र में कहे हैं, परन्तु विशेषरूप से इन दोनों तत्त्वों को नव तत्त्वों के रूप में (नव प्रकार से) वहाँ कहा है क्योंकि प्रत्येक पदार्थ सामान्य एवं विशेष रूप से होता है। (यहां नवतत्त्व की व्याख्या विशेष रूप से है।) वह

Aho ! Shrutgyanam

इस प्रकार कि-आश्रव से बन्ध होता है एवं बन्ध द्वारा पुण्य और पाप बनते हैं, जो संसार के कारण भूत हैं। तथा संवर एवं निर्जरा ये दोनों मोक्ष के कारण हैं । संसार के कारणभूत पुण्य पाप तत्त्वों के परित्याग से ही संवर एवं निर्जरा की प्रवृत्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं । और सम्पूर्ण निर्जरा से मोक्ष होता है। इसलिये इसको प्राप्त करने के लिये उपर्युक्त छः तत्त्व भी आवश्यक हैं ऐसी स्थिति में नव तत्त्व कहने में कोई दोष नहीं । नव तत्त्व की यह समस्त व्याख्या स्थानाङ्ग वृत्ति के आधार पर की गई है, अतः विशेष जिज्ञासु को वहीं से जानना चाहिये ।

प्रश्न १३०—षडशीतिक कर्म ग्रन्थ में "मणणाण चक्खुवज्जा अणाहारे" इस गाथा में मनःपर्यवज्ञान एवं चक्षु दर्शन के बिना शेष दश उपयोग अनाहारक में होते हैं। इस कथन से आचार्य भगवान ने विग्रह गति आदि में चक्षु दर्शन का निषेध किया हैं एवं अचक्षु दर्शन स्वीकृत किया है। यह कैसे सम्भव हो सकता है; क्योंकि अनाहारक अवस्था में एक भी इन्द्रिय नहीं होने से चक्षु अचक्षु दोनों का संभव नहीं है। अर्थात जिस प्रकार विग्रह गति में चक्षु इन्द्रिय का उपयोग नहीं होता वैसे ही शेष इन्द्रियों का भी नहीं होता । क्योंकि उस समय एक भी इन्द्रिय की निष्पत्ति नहीं होती ।

उत्तर — इन्द्रियों के आश्रय के बिना सामान्य उपयोग मात्र

Aho ! Shrutgyanam

को भी अचक्षु दर्शन कहा है एवं उस समय इसका सद्भाव (सामान्य उपयोग) अनाहारक में भी होने से उक्त दोष के लिये कोई अवकाश नहीं अर्थात् कोई दोष नहीं। श्री भगवती सूत्र के तेरहवें शतक के प्रथम उद्देशक में उसका विवेचन इसी प्रकार कियागया है।

प्रश्न ६३१—समस्त युगलिक मनुष्यों का कितना आयुष्य शेष रहे तब उनके सन्तानोत्पत्ति होती है ?

उत्तर — इनका छः मास आयुष्य शेष हो तब सन्तान की उत्पत्ति होती है इसके पश्चात् प्रथम आरे में ४८ दिन, दूसरे में ६४ दिन एवं तीसरे में ७८ दिन तक वे सन्तानों का पालन करते हैं।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के प्रथमारक स्वरूपाधिकार में जीवाभिगम सूत्र के अन्तरद्वीपाधिकार में कहा है कि—

"छम्मासावसेसाउ या जुगलं पसवंति त्ति"

युग्मं सुतसुतारूपं षण्मासशेषजीविताः। प्रसूय यान्ति त्रिदिवमेते मृत्वा समाधिना ॥१॥

इत्यादि लोक प्रकाशेऽपि एतेन एकोनाशीत्यादि दिनानि अपत्यपालनं विधाय तत्कालं युगलिनो म्रियन्ते इति भ्रान्तिः परास्ता।

युगलिक छः मास आयुष्य रहे तब पुत्र पुत्री रूप युगल को जन्म देते हैं। लोक प्रकाश में भी कहा है कि ये युगलिक

Aho ! Shrutgyanam

जन्म देकर समाधिपूर्वक मृत्यु को प्राप्त करते हुए स्वर्ग में जाते हैं। इस प्रकार समस्त युगलिक अपना आयुष्म छः मास शेष रहे तभी युगल को जन्म देते हैं। इससे ७८ दिन, ६४ दिन एवं ४८ दिन सन्तानों का पालन करके शीघ्र ही मर जाते हैं यह भ्रान्ति दूर होती है।

प्रश्न १३२—तीन पल्योपम आयुष्य वाले एवं तीन गव्यूत ऊंचाई वाले युगलियों को २५६ पृष्टिकरण्डक कहा है एवं दो पल्योपम आयुष्य वाले तथा दो गव्यूत ऊंचाई वाले युगलियों को १२८ पृष्टि-करण्डक एवं एक पल्योपम आयुष्य वाले व एक गव्यूत ऊंचाई वाले तथा पल्योपम के असंख्येय भाग युक्त आयुष्य वाले एवं ८०० ऊंचाई वाले युगलियों को ६४ पृष्टि करण्डक कहा है। यह पृष्टिकरण्डक क्या है अर्थात् पृष्टि करण्डक शब्द से क्या समझना चाहिये ?

उत्तर — पृष्टिकरण्डक शब्द का अर्थ पृष्टि वंश होता है अतः यहां पृष्टि करण्डक शब्द से पृष्टि वंश समझना चाहिये। जिस प्रकार अपने जैसे छोटे शरीर वालों का एक पृष्टि वंश होता है वैसे ही बड़े शरीर वालों के उतने ही पृष्टिवंश होते हैं जैसा कि जीवाभिगम वृत्ति में कहा है कि अन्तर दीपक मनुष्य ८०० धनुष जितने ऊंचे हैं तो वे ६० पृष्टि वंश के होते हैं इसी प्रकार अधिक प्रमाण के शरीर वालों के बहुत पृष्टि वंश

Aho ! Shrutgyanam

होते हैं। यही कथन अन्य स्थान पर भी युगलिकाधिकार में भी है।

प्रश्न १३३—मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा मैं समभूतल पृथ्वी से लेकर क्रम से नीची जाती हुई भूमि, नालिनावती एवं अविजय नाम के क्षेत्र में एक हजार ऊंडी (नीची) हो जाती है। वहां के जितने भी ग्राम हैं वे अधोग्राम कहलाते हैं उस प्रदेश में शीतोदा नदी भी समभूतल की अपेक्षा से एक हजार योजन नीचे बहती है एवं जयन्त नाम के द्वार से मुक्त जगती एवं समुद्र ये दोनों नदी के अपेक्षा से एक हजार योजन ऊपर (ऊंचे) हैं। ऐसी स्थिति में जगती किसके ऊपर स्थित है तथा शीतोदा नदी का जल समुद्र में कैसे प्रवेश करता है ?

उत्तर —— अधोग्रामों के अन्त में एक हजार योजन ऊंची भूमि भिति (दीवाल) है। उसके ऊपर जयन्त नामक द्वार से युक्त जगती की दीवाल है तथा शीतोदा नदी भी जगनी के नीचे की एक हजार योजन की दीवाल को भेद कर समुद्र में प्रवेश करती है। जैसा कि लोक प्रकाश के सप्तदशमम (१७वें) सर्ग में कहा है:——

विजये नलिनावत्यां वप्राख्ये चान्तवर्त्तिनः।

सहस्रयोजनान्युण्डा ग्रामा भवन्ति केचन ॥ २४ ॥

तनोऽधोलौकिकग्रामा इतितेख्यातिमैयसः।

Aho ! Shrutgyanam

तेषामन्ते स्थिता भूमि भित्ती रोद्धु मिवार्णवम्॥२५॥
तत्रैव जगती भित्तिर्जयन्त द्वार राजिता ।
ऊर्ध्वं स्थिताऽधोग्रामाणां दिदृक्षुरिव कौतुकम् ॥२५॥
शीतोदाऽपि तत्रीस्वभावा, दिवाऽधोगामिनीकमात् ।
योजनानां सहस्रेषु, याति भित्त्वा जगत्यधः ॥२७॥

इन श्लोकों का अर्थ ऊपर की पंक्तियों में व्यक्त किये गये समाधान में आ गया है ।

प्रश्न १३४---पुष्करार्ध द्वीप में मानुषोत्तर पर्वत की ओर जो प्रवाहशील नदियाँ हैं उनका जल कहाँ जाता है ? क्योंकि उनके आगे समुद्र का अभाव है एवं मानुषोत्तर पर्वत वलयाकार में चारों ओर स्थित है ?

उत्तर -- उन नदियों का जल मानुषोत्तर पर्वत के नीचे के प्रदेशों में जाता है । ऐसा क्षेत्र समास सूत्र वृत्ति में कहा है :--

यथाः -तह इह बहिमुह सलिला पविसंति य नरगस्स अहोत्ति"

पुष्करार्ध क्षेत्र में मानुषोत्तर पर्वत की ओर बहने वाली नदियों का जल आगे समुद्र का अभाव होने से मानुषोत्तर पर्वत के नीचे जाता है ।

त्र में कहीं ऐसी गाथा देखने में आती

क—

Aho ! Shrutgyanam

भाणेयमिणं पुक्खरवहिगामिणीउ सालेला ओ।
भिंदित्तु माणुस नगं प्रक्खर उदहिं समल्लीणा ॥१॥

—पुष्करार्ध क्षेत्र में मानुषोत्तर पर्वत की ओर बहने वाली नदियां मानुषोत्तर पर्वत को भेदकर पुष्करवर समुद्र में मिलती हैं। परन्तु मनुषोत्तर पर्वत के बाहर नदियों का अभाव कहने से उन नदियों का पुष्करवर समुद्र जाना कैसे सम्भव है यह विचारणीय है ?

लोक प्रकाश में भी इस प्रकार कहा है :—

यथाः—एवं नरोत्तर नगाऽभिमुखाः सरितोऽखिलाः।

विलीयन्त इह ततः परं तासामभावतः ॥७५७॥

—इस कार मानुषोत्तर पर्वत की ओर बहने वाली समस्त नदियां, उनके आगे कुछ नहीं होने से यहीं विलीन हो जाती हैं।

इसी प्रकार स्थानाङ्ग सूत्र के सप्तम स्थान में तो यह पाठ है :—

यथाः—"पुक्खरवरदीवड्ढपुरात्थिमद्धेणं सत्त वासा तहेव नवरं पुरत्थाभिमुहीओ पुक्खरो दसमुद्दं समुप्पेंति। पञ्चत्थाभि मुहीओ कालोद समुद्दं।"

(इसका अर्थ ऊपर की पंक्तियों में दे दिया है)

यहां साक्षात् पाठ दर्शन से ऊन नदियों का पुष्करोदधि में जाना युक्त ही है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न १३५—जिस प्रकार जीवों को देवत्व एवं नृपत्व आदि भाव अनन्त बार प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार इन्द्रत्व, तीर्थङ्करत्व, भावितात्मा अनगारत्व चक्रवर्त्तित्व अर्धचक्रवर्त्तित्व आदि भाव भी अनन्त-बार प्राप्त हुए है या नहीं ?

उत्तर — देवेन्द्रत्वादि भाव अनन्तबार प्राप्त नहीं हुए हैं। शेष भाव तो सभी अनन्तबार प्राप्त हुए हैं।

आचाराङ्ग सूत्र वृत्ति के प्रथम उद्देशक में जैसा कि इसी आशय को व्यक्त करते हुए कहा है:—

यथाः—देविंदचक्कवट्टित्तणाइ मो-त्तुण तित्थयर भावं।
अणगार भावियाप्पा विय सेसा य अणंतसो पत्ता ॥

—देवेन्द्रत्व एवं चक्रवर्तित्वादि तथा तीर्थङ्करत्व और भावितात्मा-अनगारत्व भाव को छोड़कर शेष समस्त भाव अनन्तबार प्राप्त होते हैं।

यहां यह शंका होती है कि यदि आचाराङ्ग सूत्र वृत्ति के उक्त सिद्धान्त को मान लिया जाय तो "मरण विधि प्रकीर्ण" में दी गई निम्न गाथा का भाव असंगत हो जाता है। वह गाथा इस प्रकार है :—

देविंद चक्कवट्टित्तणाइ रज्जाइ उत्तमा भोगा।
पत्ता अनन्त खुत्तो न य हं तित्तिं गओ तेहि ॥

—मैंने देवेन्द्रत्व एवं चक्रवर्त्तित्व राज्य आदि भोग अनन्तबार प्राप्त किये हैं, फिर भी मैं उनसे तृप्त नहीं आ।

Aho ! Shrutgyanam

इस प्रकार "मरणविधि प्रकीर्णक" के ये विचार आचाराङ्ग सूत्र वृत्ति के पाठ से विरुद्ध पड़ते हैं, क्योंकि "मरणविधि प्रकीर्णक" के इन विचारों में वे भाव अनन्तबार प्राप्त होते है, ऐसा बताया गया है।

इसका समाधान इस प्रकार है कि सिद्धान्त के वचन परस्पर अविरोधी होने से यहां प्रकारान्तर से इस प्रकार अर्थ लगाना चाहिये। उपर्युक्त गाथा में, प्रथम पद में "अणेगसो" (अनेकशः) यह पद अध्याहार से लेने पर ऐसा अर्थ करना कि "देवेन्द्र चक्रवर्तित्वादि पद मैंने अनेक बार प्राप्त किये है तथा अन्य राज्यादि उत्तम भोग अनन्त बार प्राप्त किये हैं फिर भी मैं उनसे तृप्त नहीं हुआ।" इस प्रकार अर्थ योजना से कोई विरोध उत्पन्न नहीं होता। अथवा दूसरे प्रकार से भी आप्तोक्तियों के बुद्धिमान वेत्ताओं को इस प्रकार की अर्थ योजना करनी चाहिये।

पुनः यहां कोई प्रश्न करता है कि देवेन्द्रत्वादि भाव यदि अनन्तबार प्राप्त नहीं किये तो कितनी बार प्राप्त किये ?

इसका समाधान इस प्रकार है कि तीर्थङ्करत्व भाव यदि कोई जीव प्राप्त करता है तो वह एक बार ही नहीं बार बार प्राप्त करता है, यह प्रसिद्ध है। तथा भावित्तात्मत्व एवं अन-गारात्वभाव कतिपय जीव आठ बार प्राप्त करते हैं, क्योंकि आठभवों में ही उनकी प्राप्ति का उल्लेख श्री भगवती सूत्रवृत्ति में किया गया है, जो इस प्रकार है:--

यथाः—कति विहाणं आराहणा पण्णत्ता, गोयमा। तिविहा आराहणा पण्णत्ता तं जहा-णाणाराहणा "उपधाना-द्युपचार करणं" दंसणाराहणा निःशङ्कितत्वादि तदाचारानु-

Aho ! Shrutgyanam

पालनं, चरित्ताराहणा निरतिचारता, णाणाराहणाणं, भंते, कई विहापण्णत्ता, गोयमा, तिविहा पण्णत्ता तं जहा उक्कोसिया मज्झिमा जहण्णा, दंसणाराहणाणं भंते कति विधा पण्णत्ता एवं चे व तिविहा वि एवं चेव चरित्ताराहणावि, जस्स णं भंते, उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा, जस्स उक्कोसिया दंसणाणाराहणा, गोयमा, जस्स उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स दंसणाराहणा, उक्कोसा वा अजहण्णुक्कोसा वा "उत्कृष्ट ज्ञानाराधनावतोहि आद्ये द्वे दर्शनाराधने भवतो न पुनस्तृतीया तथा स्वभावत्वात् तस्येति" जस्स पुण उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स णाणाराहणा उक्कोसा वा जहण्णा वा अजहण्णमणुक्कोसा वा, जस्स णं भंते, उक्कोसिया णाणाराहणा तस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा जस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स उक्कोसिया णाणाराहणा। जहा उक्कोसिया णाणाराहणा य दंसणाराहणा य भणिया तथा उक्कोसिया णाणाराहणा य चरित्ताराहणा य भाणियव्वा" उत्कृष्ट ज्ञानाराधन वतो हि चारित्रं प्रति नाऽल्पयत्तम प्रयत्नता स्यात् तत्स्वभावत्वात् तस्येति" जस्स णं भंते, उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा जस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्सुक्कोसिया दंसणाराहणा, गोयमा, जस्सुक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स चरित्ताराहणा

Aho ! Shrutgyanam

उक्कोसिया वा जहण्णा वा अजहण्णमणुक्कोसा वा, जस्स पुण उक्कोसिया चारित्ताराहणा तस्स दंसणाराहणा नियमा उक्कोसा उक्कोसियाणं भंते णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झइ जाव अंतं करेइ" उत्कृष्ट चारित्राराधना सद्भावे "अत्थे गइए कप्पोवएसु" कल्पोपगेषु सौधर्मादिदेवलोकोपगेषु देवेषु मध्ये उपपद्यते मध्यम चारित्राराधनासद्भावे" कप्पातीत एसु वा तिग्रैवेय कादिदेवेषु उववज्जइ उपपद्यते मध्यमोत्कृष्ट चरित्राराधना सद्भावे "उक्कोसियाणं भंते दंसणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गाहणेहि एवं चेव। उक्कोसियेणं भंते चरित्ताराहणं आराहेत्ता एवं चेव, नवरं अत्थे गइए कप्पातीतएसु उववज्झति" उत्कृष्ट चरित्राराधनवतः सौधर्मादि कल्पेष्वगमनात्, माज्झिमियाणं भंते णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झइ जाव अंतं करेति, गोयमा, अत्थे कतिए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति जाव अंतं करोति।" अधिकृत मनुष्यभवापेक्षया द्वितीयेन मनुष्य भवेनेति" । तच्चं पुण भवग्गहणं णातिक्कमति" एताश्च चारित्राराधनाः संवलिताः ज्ञानाधाराधना इह विवक्षिताः कथमन्यथा जघन्य ज्ञानाराधनाम् आश्रित्य वक्ष्यति "सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण णाइक्कमति त्ति" यनश्चरित्रराधनाया एवेदं फलम् उक्तं, यदाह—"अट्ठभवाउ चरत्तेत्ति" श्रुतसम्पक्त्व

देश विरतिभवास्तु असंख्येया उक्तास्ततः चरणाराधना-रहित ज्ञान दर्शनाराधना असंख्येय भविका अपि भवन्ति नतु अष्टभविका एवेति । "मज्झिमियंणं भंते दंसणाराहणं आराहेत्ता एवं चेव, एवं मज्झिमियं चरित्ताराहणंपि जहण्णियं णं भंते णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गह णेहिं सिज्झति, जाव अंतं करेति, गोयमा, अत्थेगइए तच्चेणं भवग्गणेणं सिज्झति जाव अंतं करेति, सत्तट्ठभवग्ग हणाइं पुण णाइक्कमति एवं दंसणाराहणं पि एवं चरित्ताराहणंपि" इति भगवत्यष्टमशते दशमोद्देशके विशेषार्थस्तु एतद्वृत्त र्ज्ञेयः ।

"तथा इन्द्रत्व चक्रित्व वासुदेवत्वादिभावान् जीवः संसारे वसन् कति वारान् प्राप्नोतीति तु क्वापि शास्त्रे दृष्टं नास्तीति न लिख्यते, हीरप्रश्नेऽपि एतत्प्रश्नस्य इदमेव उत्तरं प्रोक्तमस्ति इति ॥"

भावार्थः—हे भगवन् आराधना कितने प्रकार की होती है? गौतमस्वामी के द्वारा इस प्रश्न करने पर भगवान ने कहा—गौतम ! आराधना तीन प्रकार की होती है जो इस प्रकार है:—ज्ञानाराधना, २ दर्शनाराधना एवं ३ चारित्राराधना। ज्ञानाराधना में उपधान आदि किये जाते हैं, दर्शनाराधना तब होती है, जब जिन वचनों में किसी भी प्रकार की भी शंका न की जाय एवं चार का पालन किया जाय तथा अतिचार रहित चरित्र के पालन करने का नाम चारित्राराधना है।

Aho ! Shrutgyanam

हे भगवन् ! ज्ञान की आराधना कितने प्रकार की होती हैं ? गौतम ! ज्ञान की आराधना तीन प्रकार की होती है। यथाः १. उत्कृष्ट, २. मध्यम एवं जघन्य।

हे भगवन् ! दर्शनाराधना कितने प्रकार की है ?

गौतम ! उपर्युक्तानुसार तीन प्रकार की होती है, यही तीन प्रकार दर्शनाराधना के भी हैं।

हे भगवन् ! जिसको उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना हो तो उसको क्या उत्कृष्ट दर्शन की आराधना होती है। एवं जिसको उत्कृष्ट दर्शन की आराधना हो, तो उसको क्या उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना होती है।

हे गौतम ! जिसको उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना होती है उसको उत्कृष्ट दर्शन की आराधना होती है अथवा मध्यम आराधना भी होती है। उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना करने वालो को आदि के दो दर्शन की आराधना होती है, तीसरे की नहीं, क्योंकि उसका वैसा ही स्वभाव है। एवं जिसको उत्कृष्ट दर्शन की आराधना होवे उसको ज्ञान की आराधना उत्कृष्ट, मध्यम एवं जघन्य तीनों प्रकार की होती है।

हे भगवन् ! जिसको उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना होवे उसको उत्कृष्ट चारित्र की आराधना होती है। एवं जिसको उत्कृष्ट चारित्र की आराधना होती है, उसको क्या उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना होती है ?

हे गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना एवं दर्शन की आराधना कही है उसी प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना एवं उत्कृष्ट चारित्र की आराधना भी जाननी चाहिये। उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना वाले को चारित्र की

Aho ! Shrutgyanam

ओर अल्पप्रयत्नता नहीं होती क्योंकि उसका वैसा ही स्वभाव है।

हे भगवन्! जिसको उत्कृष्ट दर्शन की आराधना होती है तो क्या उसको उत्कृष्ट चारित्र की आराधना होती है? तथा जिसको उत्कृष्ट चारित्र की आराधना हो तो क्या उसक उत्कृष्ट दर्शन की आराधना होतो है?

हे गौतम! जिसको उत्कृष्ट दर्शन की आराधना हो, उसको चारित्र की आराधना उत्कृष्ट, मध्यम एवं जघन्य तीनों प्रकार की होती है। इसी प्रकार जिसको उत्कृष्ट चारित्र की आराधना हो उसके दर्शन की आराधना उत्कृष्ट नियमा होती है।

हे भगवन्! उत्कृष्ट ज्ञान की आराधना करके जीव कितने भवों में सिद्ध होता हैं? जब तक कर्म का क्षय करे।

हे गौतम! कितने ही जीव उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं जब तक कर्म का क्षय करें। कितने ही दूसरे भव में सिद्ध होते है, यावत् कर्म का क्षय करें। उत्कृष्ट चारित्र की आराधना हुई हो तो कितनेक जीव कल्पोपन्न सौधर्मादिक देवों के मध्य उत्पन्न होते हैं एवं मध्यम चरित्र की आराधना हुई हो तो कल्पा तीन ऐसे ग्रैवेयकादि देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

हे भगवन्! उत्कृष्ट दर्शन की आराधना करके जीव कितने भव में मोक्ष जाता है?

हे गौतम! ऊपर कहे हुए के अनुसार उसी भव में या दूसरे भव में मोक्ष जाता है।

Aho ! Shrutgyanam

हे भगवन् ! उत्कृष्ट चारित्र की आराधना करके कितने भव में मोक्ष जाता है ?

हे गौतम ! उपर्युक्त कथनानुसार ही; परन्तु विशेष में यह है कि कोई एक जीव कल्पातीत ग्रेवेयकादि में उत्पन्न होते हैं। उत्कृष्ट चारित्र की आराधना वाला सौधर्मादि देवलोक में उत्पन्न नहीं होते।

हे भगवन् ! ज्ञान की आराधना मध्यम रीति से करके जीव कितने भव में सिद्ध होता है ?

हे गौतम ! कुछ जीव दूसरे भव में सिद्ध होते हैं। अधिकृत मनुष्य भव की अपेक्षा से द्वितीय मनुष्य भव लेकर तीसरा भव नहीं करते हैं।

हे गोतम ! कुछ जीव दूसरे भव ते सिद्ध होते हैं अधिकृत मनुष्य भव लेकर तीसरा भव नहीं करते हैं।

यहां चारित्र की आराधना ज्ञान की आराधना के साथ विवक्षा की हुई है इसके अतिरिक्त तो जघन्य ज्ञान की आराधना को आश्रित कर सात आठ भवसे अधिक भव नहीं होते हैं ऐसा कहेंगे तो यह कैसे सम्भव है ? क्योंकि चारित्र की अराधना का फल होता है, जिसके सम्बन्ध में कहा है कि जघन्य चारित्र की आराधना करने वाला अधिक में अधिक आठ भव में तो सिद्ध होता ही है श्रुत सम्यक्त्व एवं देश विरति वाले के भव तो असंख्यात कहे हैं। इसीलिये चरित्र की आराधना से रहित ज्ञान एवं दर्शन की आराधना असंख्यात भव वाली होती है, सात–आठ भव वाली नहीं।

हे भगवन् ! मध्यम रीति से दर्शन की आराधना करके जीव कितने भव में मोक्ष जाता है ?

Aho ! Shrutgyanam

हे गौतम ! पूर्व के अनुसार ही मध्यमरीति से चरित्र की आराधना करके जीव कितने भव में सिद्ध होता है ? क्या यावत् कर्म का अन्त करता है ?

हे गौतम ! कुछ जीव तीसरे भव में सिद्ध होते हैं। यावत कर्म का अन्त करते हैं। सात आठ से तो अधिक भव नहीं करते हैं। इस प्रकार जधन्य दर्शन की आराधना एवं चारित्र की आरावना के सम्बन्ध में जानना चाहिये।

इस सम्बन्ध में यह प्रकरण भगवती सूत्र के अष्टम शतक के अन्तर्गत दशम उद्देशक में कहा है। विशेषार्थ उसकी टीका से जानना चाहिये।

इसके अतिरिक्त इन्द्रत्व, चक्रवर्त्तित्व एवं वासुदेवत्व आदि भावों को संसार में रहता हुआ जीव कितनी बार प्राप्त करता है ? इस प्रश्न का उत्तर किसी भी शास्त्र में देखने में नहीं आया। तीन प्रश्न भी इस प्रश्न का यही उत्तर दिया गया है इन्द्रत्व, चक्रवर्तित्व आदि भावों के जीवों ने अनन्त बार प्राप्त नहीं किये।

प्रश्न १३६—द्रव्यमन एवं भाव मन का स्वरूप क्या है ? तथा द्रव्यमन के विना भावमन होता है कि नहीं ? एवं भाव मन के बिना द्रव्यमन होता है कि नहीं ?

उत्तर— संज्ञि पंचेन्द्रिय जीव मनः पर्याप्ति नाम कर्म के उदय से मन के योग्य पुद्गल द्रव्यों को ग्रहण करके उनको मनन रूप में परिणित करता है, तो द्रव्यमन कहलाता है। एवं उन मन द्रव्यों का

Aho ! Shrutgyanam

आलम्बन कर जीव का जो मनन रूप व्यापार चलता है, वह भावमन कहलाता है, जिनके सम्बन्ध में नन्दी अध्ययन में चूर्णिकार इसी प्रकार कहते हैं कि—

"मणपज्जत्ति नाम कम्मोदयतो जोगे मणो दव्वे घेतु । मणत्तेण परणामिया दव्वा दव्वमणो भण्णइ" ॥

"जीवो पुण मणण परिणाम किरियावं तो भावमणो किं भणियं होइ मणदव्वालम्बणो जीवस्य मणणवावारो भाव मणो मन्न इति"

इसका अर्थ ऊपर दे दिया गया है।

द्रव्य मन के बिना असंज्ञी के समान भावमन नहीं होता। किन्तु भवस्थ केवली के समान भावमन के बिना भी द्रव्यमन होता है। इसके सम्बन्ध में प्रमाण स्वरूप लोकप्रकाश में कहा है कि:-

द्रव्यचित्तं विना भावचित्तं न स्यादसंज्ञिवत् ।
विनाऽपि भावचित्तं तु द्रव्यतो जिनवद् भवेत ॥

इस प्रकार भावमन के बिना भी भवस्थ केवली के समान द्रव्यमन होता है। ऐसा प्रज्ञापना वृत्ति में भी कहा है। ऐसा कहने से समस्त एकेन्द्रियादि असंज्ञि जीवों के द्रव्यमन का अभाव होने से भावमन नहीं है यह स्पष्ट है। तथा जब 'भाव मन' शब्द से चैतन्य मात्र विवक्षा की जाती है तो द्रव्यमन के बिना भी 'भावमन' होता है एवं वह असंज्ञी जीवों के भी है ही। इसी अभिप्राय से श्रीभगवती सूत्र की वृत्ति में भी भावमन से

Aho ! Shrutgyanam

युक्त जीवों की उत्पत्ति परभव में कही है उसका पाठ इस प्रकार है:--

"नो इंदिओ उवउत्ता उववज्जंति" नो इन्द्रियं मनः तत्र च यद्यपि मनःपर्यात्यभावे द्रव्यमनो नास्ति तथापि भावमनसश्च चैतन्य स्वरूपस्य सदा भावात्, तेनोपयुक्तानामुत्पत्तेः नो इन्द्रियोपयुक्ता उत्पद्यन्ते इत्युच्यते ।"

--जीव मन सहित परभव में उत्पन्न होता है। उसमें यद्यपि मन:पर्याप्ति के अभाव में द्रव्य मन नहीं है, तथापि चैतन्यस्वरूप भावमन सर्वदा होने से भावमन सहित उत्पत्ति होने के कारण मन सहित उत्पन्न होता हैं।

प्रश्न १३७--"सव्वजीवाणं पियणं अक्खरस्स अणंतो भागो निच्चुग्घाडिओ" शास्त्र के इस वचन से समस्त जीवों के अक्षर का अनन्त भाग सर्वदा अनाच्छादित रहता है। इस सैद्धान्तिक वचन से कहे गये "अक्ष " का क्या अर्थ है ?

उत्तर-- मुख्यतया अक्षर शब्द से यहाँ केवलज्ञान अर्थ लेना चाहिये और प्रसंगवश मतिज्ञान एवं श्रुत ज्ञान का भी अर्थ बोध होता है। बृहत्कल्पवृत्ति में अक्षर श्रुताधिकार में तथा नन्दीसूत्र की वृति के श्रुतज्ञान अधिकार में इसी प्रकार कहा है।

तथा च तावद् बृहत्कल्प वृत्ति पाठः--उक्तं सर्वाऽऽकाश-प्रदेशेभ्योऽनन्तगुणं ज्ञानम् ।

बृहत्कल्पवृति में कहा है कि समस्त आकाश प्रदेशों से भी ज्ञान अनन्त गुना है।

अब वह 'ज्ञान' अक्षर कैसे कहलाता है यह बताया जाता है।

Aho ! Shrutgyanam

णाणं तु अक्खरं जेण खरति न कयाइ तं तु जीवा ।
तो तस्स उ अणंत भागो न वरिज्जति सव्व जीवाणं ॥

जिस कारण से वह ज्ञान कभी भी जीव से पृथक नहीं होता है न क्षर (क्षय) होता है उसी कारण से ज्ञान को अक्षर कहा जाता है यथाः– (न क्षरति इति अक्षरः)

शंका—ज्ञान जीव से कभी भी पृथक् नहीं होता यह कैसे जाना जा सकता है ?

समाधान—उस अक्षर (ज्ञान) का अनन्तवां भाग संसारस्थ समस्त जीवों के अत्यन्त प्रबल ज्ञानावरण के उदय से भी आच्छादित नहीं होता ।

जिससे ज्ञान का अनन्त भाग नित्य उदघाटित है अर्थात् नित्य अप्रावृत्त (अनाच्छादित) है वह किससे आच्छादित होता है ? इस सम्बन्ध में पुनः कहा है । कि—

इक्केक्को अियदेसो नाणावरणस्स हुंतणं तेहिं ।
अविभागेहि आवरितो सव्वजियाणं जिणे मोत्तुं ॥

—केवल ज्ञानियों को छोड़कर संसारी समस्त जीवों के आत्म प्रदेश, ज्ञानावरणीय कर्म के अनन्त अविभक्त परिच्छेदों से आच्छादित है ।

यदि ऐसा है तो ज्ञान का अनन्त भाग नित्य अनावृत रहता है, ऐसा क्यों कहा गया ? इस सम्बन्ध में समाधान इस प्रकार है;—

जह पुण सो विवरेज्जइ तेणं जीवो अजीवयं गच्छे ।
सुट्ठु वि मेहसमुदये होइ पहा चंद सूराणं ॥

Aho ! Shrutgyanam

—जैसे सघन बादलों के आने पर भी उस प्रकार के अपने स्वभाव से चन्द्र सूर्य की प्रभा तो रहती ही है उसी प्रकार जीव के एक एक प्रदेश ज्ञानावरणीय कर्म के अनन्त अविभक्त परिच्छेदों से आच्छादित होने पर भी उस प्रकार के अपने स्वभाव से ज्ञान का अनन्तवां भाग सर्वदा अनाच्छादित ही रहता है। यदि वह भी आच्छादित हो जाय तो एकान्ततः निश्चेतन होने से जीव घट के समान अजीवता को प्राप्त कर लेता है।

शंका—पृथ्वी काय आदिका ज्ञान सर्वथा आच्छादित रहता है तो ज्ञान का अनन्तवां भाग सर्वदा अनाच्छादित रहता है, यह कैसे हो सकता है?

समधान—

अव्वत्तमक्खरं पुण पंचराह वि थीणगिद्धिसहिएणं।
नाणावरणुदएणं बिंदिय माईक्कमविसोही ॥

—पृथ्वी काय से लेकर वनस्पतिकाय तक के पांच प्रकार के एकेन्द्रिय जीवों के थीणद्धि निद्रा सहित ज्ञानावरणीय उदय से सुप्त मदोन्मत्त एवं मूर्च्छित आदि के समान अक्षर-ज्ञान, अव्यक्त-अस्पष्ट होता है। इससे उनमें भी सर्वथा ज्ञान आच्छादित नहीं होता। उसमें भी पृथ्वी काय के जीवों का ज्ञान अतीव अव्यक्त होता है। उससे भी बढ़कर अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय एवं वनस्पति काय के जीवों का अनुक्रम से अधिकाधिक विशुद्ध होता है। उसके पश्चात् अनुक्रम से द्वीन्द्रिय आदि जीवों के ज्ञान की विशुद्धि वहां तक होती है, जहां तक अनुत्तरोपपातिदेवों की व उससे भी बढ़कर चतुर्दश पूर्वियों के ज्ञान की विशुद्धि अधिक रूप में होती है। यह चूर्णिकार का मत है।

Aho ! Shrutgyanam

कहा भी है:—

तं चिय विसुज्जमाणं विंदियमादिक्कमेण विन्नेयं,
जा होंति णुत्तरसुरा सव्वाविशुद्धं तु पुव्वधरे ॥

इस गाथा का ही अर्थ ऊपर दिया गया है।

यहां यद्यपि प्रथम सर्वाकाश प्रदेशों से अनन्त गुना अक्षर ज्ञान कहा है, जो केवल ज्ञान की अपेक्षा से कहा गया है, एवं उसी का अनन्त भाग सर्वदा अनावृत रहता है, तथापि केवल ज्ञान के समान श्रुतज्ञान का अनन्त भाग अनावृत रहता है। इसलिये अन्त में अक्षरश्रुत कहा ऐसी योजना की है।

नन्दी वृत्ति का पाठ इस प्रकार है :—

यथाः—"तथा च आकरादिकं सर्वद्रव्य परिमाणं तथा मत्यादीनि अपि ज्ञानानि द्रष्टव्यानि ज्ञानस्य समानत्वात्, इह यद्यपि सर्वं ज्ञानम् अविशेषेणाऽक्षर-मुच्यते सर्वद्रव्य परिमाणं भवति। तथापि श्रुताधिकाराद् इह अक्षरं श्रुतज्ञानम् अवसेयं, श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाऽविना भूतं ततो मतिज्ञानमपितदेवं यत् श्रुत ज्ञानमकारादिकं चोत्कर्षतः सर्व द्रव्य पर्याय परिमाणं तच्च सर्वोत्कृष्ट श्रुतकेवलिनो द्वादशाङ्ग-विदः संगच्छते न शेषस्य, ततोऽनादिभावः श्रुतस्य जन्तूनां जघन्यो मध्यमो वा दृष्टव्यो न तु उत्कृष्ट इति स्थितम्! अपर आह—

Aho ! Shrutgyanam

ननु अनादि भाव एव श्रुतस्य कथं उपपद्यते यावता यदा प्रबल श्रुतज्ञानावरण स्त्यानर्द्धि निद्रारूप दर्शनावरणोदयः सम्भवति तदा सम्भाव्यते साकल्येन श्रुतस्याऽऽवरणं, यथाऽवध्यादि ज्ञानस्य ततोऽवध्यादि ज्ञानमिव आदिमदेव युज्यते श्रुतमपि नाऽनादिमदिति कथं, तृतीय चतुर्थभङ्ग सम्भवः? अत आह—"सव्वजीवाणंपि" इत्यादि सर्वजीवानामपि णमिति वाक्यालङ्कारेऽक्षरस्य श्रुत ज्ञानस्य, ' श्रुतज्ञानं च मतिज्ञानाऽविनाभावि, ततो मतिज्ञानस्यापि अनन्तभागो अनन्ततमो भागो नित्यो-द्घटितः सर्वदैवाऽनावृतः, सोऽपि च अनन्ततमो भागो-ऽनेकविधस्तत्र सर्व जघन्यश्चैतन्यमात्रं तत्पुनः सर्वोत्कृष्ट श्रुतावरण स्त्यानर्द्धि निद्रोदयभावेऽपि नाऽवियते तथा जीवस्व भावात् तथा च आह—"जईत्यादि" यदि—पुनः सोऽपि अनन्ततमो भागोऽपि आव्रियते तेन तर्हि जीवः—अजीवत्वं प्राप्नुयाद्, जीवो हि चैतन्यलक्षणः ततो यदि प्रबलश्रुतावरण स्त्यानर्द्धि निद्रोदयभावे चैतन्यमात्र मपि आव्रियते तर्हि जीवस्य स्वभाव परित्यागेन अजीवतैव संपनीपद्येत न चैतद् दृष्टमिष्टं वा सर्वस्य सर्वदा स्वस्व-भावाऽतिरस्कारात् तत्रैव दृष्टान्तमाह—"सुट्ठु वित्यादि" सुष्ठु अपि मेघसमुदये भवति प्रभा चन्द्रसूर्ययोः इयमत्र भावना यथा निबिडनिबिडतर मेघ पटलैराछादितयोः सूर्यचन्द्रमसो

Aho ! Shrutgyanam

नैकान्तेन तत् प्रभानाशः सम्पद्यते सर्वस्य सर्वथा स्वभावापनयस्य कर्तुम् अशक्यत्वात् ! एवम् अनन्तानन्तैरपि ज्ञानदर्शनावरण कर्मपरमाणुभिरेकैकस्यापि आत्मप्रदेशस्यावेष्टित परिवेष्टितस्यापि नैकान्तेन चैतन्यमात्रस्याभावो भवति, ततो यत्सर्वजघन्यं तन्मति श्रुतात्मकम् अतः सिद्धोऽक्षरस्यानन्ततमो भागो नित्योद्घाटितः ।" तथा च सति मतिज्ञानस्य श्रुतज्ञानस्य चानादिभावः प्रतिपद्यमानो न विरुध्यते इति स्थितम् ।

जिस प्रकार सर्व द्रव्य पर्याय का परिणाम वाला श्रुतज्ञान है, उसी प्रकार मति आदि ज्ञान भी जानना चाहिये । क्योंकि इनमें न्याय की समानता है । यहां यद्यपि सामान्यतया सर्वज्ञान 'अक्षर' कहलाता है, और वह सर्व द्रव्य पर्याय का परिणाम वाला होता है, तथापि यहाँ श्रुत ज्ञान का अधिकार होने से 'अक्षर' अर्थात् श्रुतज्ञान ऐसा जानना चाहिये । एवं श्रुतज्ञान मतिज्ञान के बिना नहीं होता, इसलिये मतिज्ञान को भी उतने ही परिणाम वाला जानना चाहिये । उससे इस प्रकार जो अकारादिक श्रुत ज्ञान उत्कृष्ट से सर्व द्रव्य पर्याय परिणाम वाला है, वह सर्वोत्कृष्ट श्रुत ज्ञानी जैसे द्वादशाङ्ग के ज्ञाताओं को घटित होता है, दूसरों को नहीं । इसलिये प्राणियों का जो श्रुत ज्ञान अनादिकाल का कहा है, उसको जघन्य अथवा मध्यम जानना चाहिये, उत्कृष्ट नहीं ।

शंका—यहां कोई अन्य कहते हैं कि—श्रुत ज्ञान अनादिकाल का ही है यह कैसे घटित होता है ? जैसे जब प्रबल श्रुत ज्ञानावरण एवं थिणद्धि निद्रारूप दर्शनावरण का उदय होता

Aho ! Shrutgyanam

है तो सम्पूर्णता से श्रुतज्ञान के आवरण की सम्भावना रहती है एवं जिस प्रकार अवधि आदि ज्ञान का सम्पूर्ण आवरण होता है उसी प्रकार उसी अवधि आदि ज्ञान के समान श्रुत ज्ञान भी आदिकाल वाला होना चाहिये, अनादिकाल वाला नहीं। इस दृष्टि से तृतीय चतुर्थ भङ्ग की सम्भावना कैसे हो सकती है ?

समाधान—"सव्वजीवाणं पि" इत्यादि वचन से समस्त जीवों का मतिज्ञान एवं श्रुतज्ञान का अनन्तवां भाग सर्वदा अनावृत ही रहता है। यह अनन्तवां भाग अनेक प्रकार का होता है। सर्व जघन्य चैतन्य मात्र, सर्वोत्कृष्ट श्रुतज्ञानावरण एवं थिणद्धि निद्रोदय के समय भी आच्छादित नहीं होता है। क्योंकि वैसा ही जीव का स्वभाव होता है। और यदि वह अनन्तवां भाग भी उससे आच्छादित हो जाय तो जीव के स्वभाव का त्याग होने से अजीवत्व प्राप्त हो जाता है। क्योंकि जीव चैतन्य लक्षणवाला है इसीसे प्रबल श्रुत ज्ञानावरण एवं थिणद्धि निद्रोदय के समय चैतन्य मात्र भी आच्छादित हो जाय तो जीव के स्वभाग का परित्याग होने के कारण अजीवता ही प्राप्त होती है। यह कभी भी न देखा न इष्ट ही है कि प्रत्येक वस्तु अपना स्वभाव छोड़ देती हो। इस सम्बन्ध में दृष्टान्त कहते हैं कि "सुट्ठुवित्यादि"—सघन बादल आसमान में छा जावें तो भी चन्द्र सूर्य की प्रभा तो रहती ही है। यहां यह कहना है कि जिस प्रकार अत्यन्त सघन बादलों से सूर्य चन्द्र की प्रभा का एकान्ततः नाश नहीं होता, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ का अपना स्वभाव दूर होना सर्वथा अशक्य है, उसी प्रकार जीव के एक एक प्रदेश अनन्तानन्त ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण कर्म के परमाणुओं से अत्यन्त आवृत हो जावें, फिर भी उनमें एकान्ततः चैतन्य मात्र का

Aho ! Shrutgyanam

अभाव नहीं होता है । इस कारण से जो सर्वजघन्य चैतन्य मात्र है वह मति-श्रुत रूप है । अतः अक्षर का अनन्तवां भाग सर्वदा अनाच्छादित होता है, यह सिद्ध हो गया एवं ऐसा होने से मतिज्ञान श्रुतज्ञान अनादिकाल के हैं इसमें भी कोई विरोध उत्पन्न नहीं हो सकता यह भी सिद्ध है ।

प्रश्न १३९— केवली भगवान् केवलज्ञान के द्वारा सर्व द्रव्य एवं सर्वपर्यायों को प्रति समय साक्षात् जानते हैं, परन्तु केवल ज्ञान सम्बन्धी जिस स्वभाव से एक पर्याय को जानते हैं, क्या उसी स्वभाव से दूसरे पर्यायों को जानते हैं ? या अन्य स्वभाव से जानते हैं ?

उत्तर — दूसरे पर्यायों को भिन्न स्वभाव से ही जानते हैं। उस स्वभाव से नहीं । अन्यथा दोनों पर्यायों में एकत्व का प्रसंग आजाता है । इसलिये जितने जानने योग्य पर्याय हैं उतने ही उन पर्यायों का ज्ञान करानेवाले केवलज्ञान के स्वभाव जानना चाहिये । जैसा कि नन्दीसूत्र वृत्ति में कहा है:—

"यावन्तो जगति रूपि द्रव्याणां ये गुरुलघुपर्याया-स्तान् सर्वानपि साक्षात् करतल कलितमुक्ता फलवत् केवलाऽऽलोकेन प्रतिक्षणम् अवलोकते भगवान् । न च येन स्वभावेन एकं पर्य्यायं परिच्छिन्नत्ति तेनैव स्वभावेन पर्य्यायान्तरमिति तयोः पर्य्याययोः एकत्व प्रसक्तेः ॥"

इस पाठ का अर्थ ऊपर की पंक्तियों में दे दिया है ।

Aho ! Shrutgyanam

घट के पर्याय को जानने के स्वभाव वाला जो ज्ञान है, वह जब पट के पर्याय को जानने के लिये समर्थ होता है तो पट पर्याय को भी घट पर्यायरूपता की आपत्ति होती है, अन्यथा घटपर्याय को जानने वाला ज्ञान पट पर्याय को नहीं जान सकता। क्योंकि उसका वैसा स्वभाव है। इसलिये जितने जानने योग्य पर्याय हैं उतने ही उनको ज्ञान कराने वाले केवल ज्ञान के स्वभाव जानना चाहिये एवं जितने स्वभाव हैं उतने ही पर्याय होते हैं। इसी कारण से पर्यायों की अपेक्षा से सर्व द्रव्य एवं सर्व पर्याय के परिणाम युक्त केवल ज्ञान को कहा है।

शंका—अकारादि श्रुतज्ञान एवं केवल ज्ञान के पर्यायों का परिणाम समान होता है अथवा न्यूनाधिक होता है?

समाधानः—

दोनों के पर्यायों का परिणाम समान ही होता है। केवल स्व एवं पर पर्याय रूप विशेषता है। जैसा कि नन्दीसूत्र वृत्ति में कहा है:—

"पर्याय परिमाण चिन्तायां परमार्थतो न कश्चिद् अकारादि श्रुतकेवलज्ञानयोर्विशेषः। अयं तु विशेषः, केवल ज्ञानं स्वपर्य्यायैरपि सर्वद्रव्य परिणाम तुल्यम्, अकारादि तु स्वपर पर्य्यायैरेवेत्यादि ॥"

—पर्याय परिणाम की विचारणा में वास्तविक रीति से अकारादि श्रुत ज्ञान एवं केवल ज्ञान का कोई भेद नहीं है। मात्र इतनी विशेषता है कि केवल ज्ञान स्वपर्यायों से सर्वद्रव्य के परिणाम जितना है एवं अकरादि श्रतज्ञान स्व एवं पर पर्यायों से सर्व द्रव्य पर्यायों के परिणाम जितना है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न १३९—विजय वैजयन्त, जयन्त एवं अपराजित इन चारों विमानों में उत्पन्न जीव वहां से च्यवकर (गिरकर) मनुष्य भव को प्राप्त करके (मरने के बाद) नैरयिक, भवनपति, तिर्यक्, व्यन्तर, एवं ज्योतिषी देवों में उत्पन्न होते हैं या नहीं ?

उत्तर — विजयादिक विमानों से प्रवतरित होकर मनुष्य भव समाप्त करने के बाद जीव ऊपर बताये हुए स्थानों में तो नहीं जाते हैं, परन्तु सौधर्मादि देवलोकों में जाते हैं। ऐसा श्री प्रज्ञापना सूत्र वृत्ति के पन्द्रहवें इन्द्रिय पद में कहा है:—

यथाः—इह विजयादिषु चतुर्षु विमानेषु गतो जीवो नियमात् तत उद्वृत्तो न जातु कदाचिदपि नैरायिकादिषु पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् पर्यवसानेषु तथा व्यन्तर ज्योतिष्केषु च मध्ये समागमिष्यति, मनुष्येषु सौधर्मादिषु चागामेष्यतीति।''

इसका अर्थ उत्तर में दे दिया गया है।

प्रश्न १४०—भरत चक्रवर्ती का जीव निगोद आदि में से निकल कर कितने भवों में मोक्ष को गया तथा सम्यकत्व प्राप्त कर जो कभी भी वमन नहीं करता है, अर्थात् जिसका कभी पतन नहीं होता है। वह कितने भवों में मोक्ष को प्राप्त होता है ?

उत्तर — भरत चक्रवर्ती का जीव सात आठ भव करके मुक्ति को प्राप्त हुआ है, ऐसा सम्भव है।

Aho ! Shrutgyanam

इस सम्बन्ध में आचाराङ्ग सूत्रवृत्ति के अन्तर्गत लोकसार अध्ययन के तृतीय उद्देश में कहा है कि —

"भावयुद् वाऽर्हं शरीरं लब्ध्वा कश्चित् तेनैव भवेन अशेष कर्मक्षयं विधत्ते, मरुदेवी स्वामिनीवत् कश्चित् सप्तभिरष्टभिर्वा भवैर्भरतवत्, कश्चित् अपार्द्ध पुद्गल परावर्तन, अपरो न सेत्स्यति एवेति ।'-

—भावयुक्त एवं योग्य शरीर को प्राप्त करके कोई ही उसी भव में मोक्ष जाता है, मरुदेवी स्वामिनी के समान कोई सात आठ भव में मोक्ष जाता है एवं भरत चक्रवर्ती के समान कोई अपार्ध पुद्गल परावर्त काल में मोक्ष जाता है। सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना तो कोई भी मोक्ष नहीं जा सकता।

सम्यक्त्व प्राप्त करके जो कभी भी वमन नहीं करते हैं वे सात आठ भव तक संसार में रहने के बाद अवश्य मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

जैसा कि सूत्र कृताङ्ग वृत्ति के चौदहवें अध्ययन में कहा है कि:—

"अप्रतिपतित सम्यक्त्वो जीवः उत्कृष्टतः सप्ताष्टौ वा भवान् म्रियते नौर्ध्वमिति ।"

(इसका अर्थ ऊपर दे दिया है।)

प्रश्न—१४१ सूक्ष्म निगोद में से निकलकर कतिपय जीव कालान्तर से पुनः सूक्ष्म निगोद में जाते हैं तो वहां उत्कर्ष से कितने काल तक रहते हैं? तथा सूक्ष्म निगोद में से निकलकर कतिपय जीव बादर

Aho ! Shrutgyanam

निगोद में ही गति-आगति करते उत्कर्ष से कितने काल तक उसमें रहते है ? कभी सूक्ष्म निगोद में एवं कभी बादर निगोद में जाते हुए जीव उत्कर्ष से कितने काल तक रहते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म बादर साधारण एव प्रत्येक रूपी वनस्पति काय मात्र में उत्कर्ष से जीव कितने काल तक रहते है ?

उत्तर-(१) व्यवहार राशि में आये हुए जीव यदि सूक्ष्म निगोद में जावें तो उत्कर्ष से असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक उसमें रहते हैं।

(२) बादर निगोद में उत्कर्ष से ७० कोटा कोटि सागरोपम तक रहते है, इससे अधिक नहीं।

(३) सामान्य निगोद में ढाई पुद्गल परावर्त काल तक अर्थात् अनन्त काल तक रहते हैं।

(४) वनस्पति काय मात्र में असंख्यात पुद्गल परावर्त काल तक रहते हैं एवं वे पुद्गल परावर्त आव-लिकाके असंख्यातवे भाग में जितने समय है उतने समय तक मानना चाहिये। यह सारी स्थिति व्यवहार राशि में आये हुए जीवों को आश्रित कर कही है। जिससे मरुदेवी आदि अधि-कारों में दोष नहीं आता। आगम में कहा है कि

"सुहुम निगोए णं भंते, सुहुम निगोए त्ति कालओ किय च्चिरं होइ, गोयमा जहण्णेणं अन्तो मुहुतं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं, असंखिज्जाओ उस्सप्पिणि ओसप्पिणी-ओ।"

Aho ! Shrutgyanam

--हे भगवन्त ! सूक्ष्म निगोद में सूक्ष्म निगोद होकर जीव कि कितने काल तक रहता है ?

हे गौतम ! जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट से असंख्येय काल-असंख्याति उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तक रहता है।

संग्रहणी वृत्ति में भी "गोला य असंखेज्जा" इत्यादि गाथा के द्वारा यही अर्थ जानना चाहिये।

प्रश्न-१४२ जिनकी रोमावली से रत्नकम्बल वस्त्र उत्पन्न होता है वे मूषक अग्नि में उत्पन्न होते हैं। इसीलिये उसकी वस्त्र की मलिनता उसको अग्नि में डालने से स्वच्छ होती है ऐसी उक्ति सुनी जाती है। क्या यह सत्य है ? मूषक की उत्पत्ति अग्नि में होती है, ऐसा किसी शास्त्र में कहा है या नहीं ! तथा किसी के पेट में गृह कोकिला उत्पन्न होती है ऐसा भी सुना जाता है। इसका क्या कारण है ?

उत्तर अनुयोग द्वार वृत्ति में आवश्यक निक्षेप अधिकार है, उसमें अग्नि में मूषक की उत्पत्ति कही है। उसका यह पाठ है:—

"इष्ट का पाकाद्यग्निर्मूषिकावास इत्युच्यये तत्र हि अग्नौ किल मूषिकाः सन्मूर्च्छन्तीनि"

—ईंटों के पकाने की अग्नि, मूषकों का आवास है ऐसा कहा जाता है।

तथा पेट में गृहकोकिला की उत्पत्ति का कारण निशीथ चूर्णि में कहा है। उसका पाठ इस प्रकार है:—

"गिहकोइल अवयवसंमिस्सेण भुत्तेण पोट्टे किल गिह को इला संमुच्छंति त्ति।"

Aho ! Shrutgyanam

—गृह कोकिला के अवयव मिश्रित भोजन से पेटगृह-कोकिला उत्पन्न होती है ।

प्रश्न–१४३ कतिपय आधुनिक पाखण्डी निन्हव ऐसा कहते हैं कि अभयकुमार के द्वारा भेजे गये रजोहरणादि के दर्शन से आर्द्रकुमार प्रतिबोध को प्राप्त हुआ था। यह वचन आगम के अनुसार है या आगम विरुद्ध है ?

उत्तर यह वचन आगम विरुद्ध ही जानना चाहिये। उत्सूत्र भाषी के अतिरिक्त अन्य कौन इस प्रकार स्वकपोल कल्पित सूत्र विरुद्ध वचन कहने का साहस कर सकता है । क्योंकि सूत्र में, साक्षात् एकान्त में जिन प्रतिमा को देखकर आर्द्रकुमार ने प्रति-बोध प्राप्त किया था, ऐसा कहा है। इस सम्बन्ध में सूत्रकृताङ्ग सूत्र के आर्द्रकीय अध्ययन की निर्युक्ति का जो पाठ है, वह इस प्रकार है:–

यथाः—"संवेग समावन्नो मायी भत्तं चइत्तु दिय लोए ।
चइऊणं ऊदहरे ऊद्दसुओ ऊदओ जाओ ॥६३॥
पीतो दोण्हउ दूओ पुच्छणा अभयस्स पट्ठवे सो वि ।
तेण वि सम्मदिट्ठित्ति होज्ज पडिमा रहस्स गयं ॥६४॥
दट्ठु सबुद्धो रक्खिओ य आसाए वाहण पलाओ ।
पव्वइयं तो धरिओ रज्जं न करेइ को अण्णो ॥६५॥

-- आर्द्रकुमार का जीव पूर्व भव में वसन्तपुर में सामायिक नाम का खेडूत था। उसने अपनी पत्नी के साथ दीक्षा ली। एक समय गोचरी जाते हुए दोनों मिल गये । पत्नी को देख

Aho ! Shrutgyanam

कर सामायिक उस पर अनुरागी हो गया । यह बात जान कर उसकी पत्नी, जो साध्वी थी, वह अनशन करके स्वर्ग में गई। यह जानकर मायावी उस सामायिक को वैराग्य हो गया एवं अनशन करके वह देव लोक में गया। वहाँ से अवतरित होकर आर्द्रपुर में आर्द्रक राजा का आर्द्रकुमार पुत्र हुआ। उस आर्द्रक राजा की राजागृह के राजा श्रेणिक के साथ मित्रता थी, जिसके कारण पारस्परिक भेंट आदि वस्तुओं के आदान प्रदान के प्रसंग में एक समय आर्द्रक राजा ने भेंट भेजी। उस समय आर्द्रकुमार ने भी अभयकुमार के लिये उपहार भेजा । उससे अभयकुमार ने विचार किया कि यह भवी जीव है, इसलिये मेरी मित्रता चाहता है। अतएव उसको सम्यक्त्व की प्राप्ति हो इस दृष्टि से उसने एकान्त में जिन प्रतिमा भेजी। उसको देखकर आर्द्रकुमार प्रतिबोध को प्राप्त हुआ एवं विषयों से विरक्त हो गया । उसको विरक्ति को देखकर कहीं यह भग न जाय इस दृष्टि से उसके पिता ने उसके ऊपर ५०० राजकुमारों का नियन्त्रण करवा दिया। इतना नियन्त्रण होते हुए भी अश्वक्रीडा के बहाने वहां से भाग कर एवं आर्य देश में आकर आर्द्रकुमार ने दीक्षा ले ली। उस समय आकाश वाणी हुई कि—"तेरे अभी बहुत भोगावली कर्म शेष हैं"

इस प्रकार देवताओं द्वारा रोकने पर भी "मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन राज्य नहीं करता है ।" ऐसा कहकर देवता के वचनों की अवगणना करते हुए उसने चारित्र ग्रहण कर लिया।

इस प्रकार इस पाठ से यह ज्ञान होता है कि आर्द्रकुमार जिन प्रतिमा के दर्शन से ही प्रतिबोध को प्राप्त हुए थे।

Aho ! Shrutgyanam

निर्युक्ति का यह वचन सूत्र वचन नहीं है, ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्योंकि श्रुत केवली श्री भद्राबाहु स्वामी के द्वारा निर्युक्ति की रचना हुई है, अतः यह सूत्र जैसी ही है।

"सुयकेवलिणा रइयामिति" वचनात्।

और भी श्री भगवती सूत्र के अनुयोग द्वार में भी कहा है।

यथाः—सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ निज्जुत्ति मीसिओ भणियो। तइओ य निरवसेसो एस विही होइ अणुओगे ॥"

इत्यादि वचन से निर्युक्ति भाष्य चूर्णि आदि प्रमाणी कृत है। इसलिये जो इनके वचनों को नहीं मानते हैं वे सूत्र के उत्थापक हैं, ऐसा जानना चाहिये।

प्रश्न १४४—आधुनिक कुछ पाखण्डी गृहस्थों को भी अंगोपांग आदि सिद्धान्तों का पाठ पढ़ाते हैं। यह जिनेश्वर की आज्ञा के अनुसार है या विरुद्ध है?

उत्तर — यह कृत्य जिनेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध ही है, ऐसा जानना चाहिये क्योंकि निशीथ सूत्र के उन्नीसवें उद्देशक में गृहस्थों को सूत्र वाचन के लिये निषेध कहा है।

इस सम्बन्ध का वह पाठ इस प्रकार है:—

यथाः—जे अण्णउत्थियं वा गारत्थियं वा वाएत्ति वायं तं वा साइज्जति से आवज्जति चाउम्मासियं परिहारट्ठाणं उग्घाइयं ॥"

Aho ! Shrutgyanam

जो अन्य तीर्थियों एवं गृहस्थों को वाचना देते हैं (अर्थात् सूत्र पाठ पढ़ाते हैं) अथवा उनको सहायता देते हैं। उनको चातुर्मासिक परिहारस्थान उद्घातिक प्रायश्चित आता है।

इसीलिये श्री अरिहन्त भगवन्त के चरणों में, श्रावकों के वर्णन में प्रतिपद "लद्धट्ठा गहियट्ठा" अर्थ प्राप्त किया, (अर्थ ग्रहण किया) इत्यादि पाठ ही देखने में आता है, परन्तु सूत्र का अध्ययन किया ऐसा पाठ नहीं देखा गया।

यदि ऐसा है तो दशवैकालिक सूत्र भी श्रावकों को नहीं पढ़ाना चाहिये? इसका उत्तर देते हुए कहते है कि श्रावकों को दशवैकालिक सूत्र के षड्जीवनिकाय नामक चतुर्थ अध्ययन तक ही पढ़ाना चाहिये, शेष छः अध्ययन नहीं पढ़ाना चाहिये। आवश्यक चूर्णि में कहा है कि—

"श्रावकाणां" जहन्नेणं अट्ठपवयण मायाओ उक्कोसेणं छज्जीवणिया सुत्तओ अत्थओ वि पिंडेसणं न सुत्तओ अत्थओ पुण उल्लावेणं सुणाइत्ति।"

—श्रावकों को जघन्य से अष्ट प्रवचन माता एवं उत्कृष्ट से षट्जीवनिकाय अध्ययन तक पढ़ाना चाहिये। पिण्डेषणा अध्ययन अर्थ से पढ़ाना, परन्तु सूत्र से नहीं। अर्थ भी वे केवल सुनें।

अन्यत्र भी कहा है कि दशवैकालिक को षड्जीव निकाय से पूर्व या पश्चात् जो श्रावकों को पढ़ाता है वह अपने मन से कल्पित कदाचरण वाला होता है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न १४५—श्री महावीर स्वामी का अम्बड़ नाम का एक श्रावक था वह जाति से ब्राह्मण था या क्षत्रिय ? तथा उसमें जो विविध रूप करने का सामर्थ्य था वह तपस्या से उत्पन्न वैक्रियलब्धि आदि के बल से था या प्रसन्न हुए किसी देवता के द्वारा दत्त विद्याबल से था ? और आगामी चतुर्विंशतिका में तो तीर्थङ्कर होने वाला है वह अम्बड़ कौन है ?

उत्तर — यहां शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर तो यह ज्ञात होता है कि श्री महावीर स्वामी के अम्बड़ नाम के दो श्रावक हुए ऐसा सम्भव है ? इस सम्बन्ध में औपपातिक उपाङ्ग में कहा है कि वीर स्वामी का श्रावक अम्बड़ परिव्राजक जाति से ब्राह्मण था। तथा छट्ठ, अट्ठम आदि की अधिक तपस्या से उसको अवधि ज्ञान एवं वैक्रियलब्धि आदि उत्पन्न हो गई थी। उसके ७०० शिष्य थे। अन्त में वह अनशन से ब्रह्मलोक को गया व बाद में वह महाविदेह क्षेत्र में मोक्ष को प्राप्त करेगा। इस सम्बन्ध में कहा भी है कि—

“तत्थ खलु इमे अट्ठ माहणा परिव्वायगा भवंति तं जहा-कण्हे य १ करकंडेय २ अंबडे ३ परासरे ४ कण्हे ५ दीवायणे ६ चेव देवगुत्ते य ७ नारए ८।”

इत्यादि सूत्र की विवेचना सूत्र से ही जानना चाहिये विवेचन अधिक होने के कारण यहां नहीं लिखा जाता है।

Aho ! Shrutgyanam

श्री मुनि रत्न सूरिकृत अम्बड चरित्र में तो ऐसा कहा है कि—

रथपुर में रहने वाला अम्बड़ नाम का राजा जाति से क्षत्रिय था। उसको सांख्य मत की गोरख योगिनी ने सात देश दिये थे। उसके बत्तीस सुन्दर स्त्रियां थी एवं विशाल राज्य की समृद्धि वाला था। उसको प्रसन्न हुए सूर्यादि देवों ने अनेक विद्याएं दी थी। कुछ समय बाद श्री कोशी गुरु के उपदेश से सम्यक्त्व प्राप्त कर उसने उन्हीं के वचन से श्री महावीर प्रभू की चरण सेवा प्राप्त की थी, परन्तु मन की शिथिलता के कारण उसने १८ बार सम्यक्त्व छोड़ा और स्वीकार किया था। इसके पश्चात्, श्री वीर प्रभु के द्वारा बनाई गई सुलसा श्राविका की दृढ़ता को देखकर उसका सम्यक्त्व अत्यन्त दृढ़ हो गया एवं उसके फलस्वरुप अपने पुत्र को राज्य देकर अनशन से मृत्यु को प्राप्त हुए वह स्वर्ग में चला गया। दूसरे अम्बड़ चरित्र में यही अम्बड़ राजा आगामी चतुर्विंशतिका में तीर्थङ्कर होगा, ऐसा कहा है।

स्थानाङ्ग वृत्ति में भी दो अम्बड श्रावकों की सम्भावना की है, परन्तु उसमें अम्बड परिव्राजक को ही सुलसा परीक्षक कहा है और वही भावी तीर्थङ्कर जीव है तत्व तो केवली या बहुश्रुत ही जानते हैं। यहां तो जो है, वही प्रमाण वस्तु है।

प्रश्न १४६—शास्त्रों में जो नौ प्रकार के पाप निदान (निर्माण) कहे हैं वे कौन कौन से हैं ?

उत्तर — (१) भवान्तर में मैं राजा बनूं ऐसी प्रार्थना करना यह प्रथम निदान है।

(२) बहु व्यापार एवं राज्य होने पर भी मैं समृद्धि-

Aho ! Shrutgyanam

मान् गृहस्थी बनूं, ऐसी प्रार्थना करना यह द्वितीय निदान है।

(३) पुरुष के विविध कष्टों को देखकर मैं स्त्री बनूं ऐसी प्रार्थना तृतीय निदान है।

(४) स्त्री के परवशतादि कष्ट को देखकर मैं पुरुष बनूं ऐसी प्रार्थना करना चतुर्थ निदान है।

(५) मनुष्य सम्बन्धी विषयों की अशुचिता से देव सम्बन्धी अधिक विषयों की प्रार्थना करना यह पञ्चम निदान है।

(६) जो देव, स्व एवं पर देव देवी के सेवन में तथा अपने द्वारा विकुर्वित देव देवी के सेवन में आसक्त है, वे बहुत (अधिक आसक्त) कहलाते हैं। एव जो देव स्वयमेव देवत्व एवं देवीत्व के द्वारा विकुर्वित होकर सेवन करते है परन्तु दूसरों को नहीं वे स्वरत कहलाते हैं। इसके सम्बन्ध का निदान करना षष्ठ निदान है।

७) ऊपर कहे गये इन छः निदानों के करने वाले भवान्तर में दुर्लभ बोधि होते हैं। इससे जो देव अमैथन हैं वे अरत कहलाते हैं। इस सम्बन्ध में निदान करना सप्तम निदान है।

(८) ऊपर कहे गये १ बहुरत २ स्वरत ३ अरत ये तीनों देव के भेद हैं। भवान्तर में मैं साध

Aho ! Shrutgyanam

को बहोराने वाला श्रावक बनूं ऐसी प्रार्थना करना अष्टम निदान है।

(९) व्रत की आकांक्षा से मैं दरिद्र श्रावक बनूं ऐसी प्रार्थना करना नवम निदान है।

ऊपर कहे गये नव नियाणों में अन्तिम तीन नियाण क्रम से सम्यक्त्व, देशविरति एवं सर्वविरति को देने वाले हैं, परन्तु मोक्ष देने वाले नहीं हैं। यह सारा विवेचन पाक्षिक सूत्र की वृत्ति में कहा है। दूसरे स्थान पर भी कहा है कि–

नेव सिद्धि इत्थि पुरिसे परप वियारे य स परियारे य।
अप्पसुख सड्ढदरिद्दे हुज्जा नवनियाणाइ त्ति॥"

शंका–राज्य आदि प्रार्थना के समान तीर्थङ्करत्व एवं चरमदेहित्व की प्रार्थना भी दुष्ट है कि नहीं?

समाधान—तीर्थङ्करत्वादि के लिये भी प्रार्थना न करना ऐसा भगवान श्री महावीर ने कहा है। निदान में तो समस्त वस्तुओं के विषय में भी अपवाद नहीं है साधुओं के लिये निदान का निषेध ही है। वृहत्कल्प वृत्ति में कहा है। इसी तीर्थङ्करत्वादि की प्रार्थना करना भी साधुओं के लिये युक्त नहीं है।

सर्व कर्म के क्षय से मेरा मोक्ष हो ऐसी भावना भी क्या निदान है? सत्यमेव यह भी निश्चय नय से निषिद्ध ही है। क्योंकि–"मोक्षे भवे च सर्वत्र निःस्पृहो मुनि सत्तमः।" अर्थात् उत्तम मुनि मोक्ष या संसार में सर्वत्र सर्वथा निःस्पृह होते हैं; ऐसा कहाहै। तथापि भावना में अपरिणत सत्व को अंगीकार करके व्यवहार से यह दुष्ट नहीं है।

Aho ! Shrutgyanam

आवश्यक बृहद्वृति के ध्यान शतक अधिकार में एवं योग शास्त्र की वृति में कहा है कि--"जयवीयराय" इत्यादि यह प्रणिधान निदान रूप नहीं है क्योंकि प्रायः यह आसक्ति-रहित अभिलाषा रूप है ।

यह सब अप्रमत्त संयत नाम के सप्तम गुणस्थान की प्राप्ति न हो वहां तक करना चाहिये । अप्रमत्त संयतादि को तो मोक्ष में भी अभिलाषा नहीं होती इस सम्बन्ध में और अधिक जानने के लिये पूजा पचाशक की टीका देखनी चाहिये ।

प्रश्न १४७—दूसरे पुरुष के समान तीर्थङ्करों के पुरुष चिन्हादि देखने में आते हैं कि नहीं ?

उत्तर— अत्यधिक गुप्त होने से गज एवं अश्वादि के समान देखने में तो प्रायः करके आते नहीं हैं । यहां प्रायः करके ऐसा कहने से गृहस्थरूप में साधारण तथा दृष्टि पथ में आने पर कोई दोष नहीं है ।

योगशास्त्र की वृत्ति के प्रथम प्रकाशमें कहा है कि–

स्वामिनः कुञ्जरस्येव मुष्कौ गूढौ समस्थितौ ।
अतिगूढं च पुंश्चिन्हं कुलीनस्येव वाजिनः ॥३०॥

सिद्धान्त में भी इस सम्बन्ध में क्या कहीं कुछ कहा गया है ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर में कहा है कि यह बात औपपातिक उपांग सूत्र की वृत्ति में कही गई है ।

यथाः—"वर तुरग सुजाय गुज्झं देसेति"—

श्रेष्ठ अश्व के समान जिनका गुह्य प्रदेश सुनिष्पन्न है । यह वीर प्रभु के वर्णन अधिकार में है ।

Aho ! Shrutgyanam

शंका—यदि ऐसा है तो कतिपय (दिगम्बर) अत्यन्त प्रगट गुह्य प्रदेश वाली जिन प्रतिमाएं कराते हैं वे वन्दनीय है कि नहीं ?

समाधान—प्रथम तो वे भगवन्त की प्रतिमाएं ही नहीं हैं। क्योंकि भगवन्त की प्रतिमाएं भगवन्त के समान अत्यन्त गुह्य प्रदेश वाली होनी चाहिये एवं उनके द्वारा बनवाई गई ये प्रतिमाएं तो साक्षात् गुह्य प्रदेश देखे जा सके, ऐसी है ऐसी स्थिति में कैसे वे वन्दनीय हो सकती है ?

वैसे उत्सूत्र वादियों एवं गृहस्थों द्वारा प्रतिष्ठापित चैत्य अवन्दनीय होते हैं, जैसा कि जिनपति सूरिजी ने प्रबोधोदय में कहा है।

यथा :—

"पौर्णिमासिकादिमत वर्त्तीनि चैत्यानि अवन्द्यान्येव अनधिकारिप्रतिष्ठापित्वात् दिगम्बरादि परिगृहीतवद् इत्यादि ।"

—पौर्णिमासिकादि मत में स्थित चैत्य अनधिकारियों द्वारा प्रतिष्ठापित होने से अवन्दनीय हैं जैसे दिगम्बरादि द्वारा परिगृहीत चैत्य अवन्दनीय होते हैं।

इस प्रकार स्वदर्शन मिथ्यादृष्टि चैत्यवासी आदि से ग्रहण कराई गई प्रतिमाएं भी वर्जनीय ही हैं।

"कूराभिग्गहिय महामिच्छादिट्ठीहि पावेहिं अहमाहमेहिं नामायरिय उवज्झाय साहुलिंगीहिं जिनघर मढ आवासो पकप्पिओ साय सीलेहिं ।"

Aho ! Shrutgyanam

इत्यादि महानिशीथ आदि आगम वचनों से—चैत्यवासियों का तथा अन्य का मिथ्यादृष्टित्व प्रतिपादित होता है।

शंका—उस प्रकार के बिम्बादि दर्शन से भी किसी को सम्यक्त्वादि की उत्पत्ति होती है तो उनको वन्दन करने के लिए जाने में क्या दोष है ?

समाधान—द्रव्य लिंगियों द्वारा ग्रहण कराये गये चैत्यों में बिम्बादि के दर्शन से कभी किसी को सम्यक्त्वादि रत्न की उत्पत्ति चाहे होती हो, तथापि "जइविहु समुप्पाओ कस्से वि" इत्यादि वचनों से कल्पभाष्य में निह्नव के समान उन चैत्यों का वर्जन करना कहा है। अतः विवेकी पुरुषों को वहां जाना उचित नहीं है। यह सारा प्रकरण प्रबोधोदय से संक्षिप्त करके यहां लिखा है। श्री वृहत्कल्पभाष्य की चूर्णि आदि के प्रथम खण्ड में तो विस्तार से दिया गया है अतः विशेषार्थियों को वहीं से जानना चाहिए।

शंका—जिस प्रकार निह्नव आदिकों से ग्रहण कराई गई प्रतिमाएं अवन्दनीय हैं उसी प्रकार उनके द्वारा रचित स्तोत्र प्रकरणादि सम्यक्‌दृष्टियों को अग्राह्य हैं कि ग्राह्य हैं ?

समाधान—उनके द्वारा रचित स्तोत्र प्रकरणादि अग्राह्य ही हैं। श्री महानिशीथ सूत्र के चतुर्थ अध्ययन में कहा है कि:-

जे भिक्खु वा भिक्खुणी वा परपाखंडीणं पसंसं करेज्जा जेआवि णिण्हगाणं पसंसं करेज्जा जेआवि निण्हगाणं अनुकूलं भासेज्जा जेआवि निण्हगाणं आपयणं पविसिज्जा जेआवि निण्हगाणं गंथं सत्थं पयक्खरं वा परूवेज्जा जेणं निण्हगाणं संतिए कायकिले साइनवे वा संजमेइ वा

Aho ! Shrutgyanam

णाणेइ वा विणाणेइ वा सुए वा पंडिच्चेइ वा अभिमुहमुद्ध परिसा मज्झगए सिलाहेज्जा से विआणं परिमाहम्मिएसु उववज्जेजा ? जहासुमतीति ।"

--जो भिक्षु अथवा भिक्षुणी पर पाखण्डियों की प्रशंसा करते हैं, जो निह्नवों की प्रशंसा करते हैं, उनके अनुकूल वचन बोलते हैं, उनके स्थान में प्रवेश करते हैं, उनके ग्रंथ शास्त्र, पद अथवा अक्षरमात्र की प्ररूपणा करते हैं, उनके पास काय-क्लेश आदि तप करते हैं, संयम लेते हैं, ज्ञान विज्ञान प्राप्त करते हैं, उनके श्रुत ज्ञान या पाण्डित्य का गुणगान करते हैं एवं सम्मुख बैठकर भोले मनुष्यों की सभा में उनकी विरुदावली (प्रशस्ति गान) करते हैं वे 'सुमति' के समान परम अधार्मिकत्व को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न १४८--मनक नामक अपने पुत्र के स्वर्ग में चले जाने पर श्री शय्यम्भवसूरि ने जो अश्रुपात किया था वह हर्ष जन्य था अथवा शोक जन्य ?

उत्तर-- वह अश्रुपात शोक जन्य था ऐसा कुछ महानुभाव कहते हैं, परन्तु यह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि श्रुतकेवली के समान उन महापुरुष को उस प्रकार के शोक की उत्पत्ति होना नितान्त असम्भव है। अहो ! इस बालक ने थोड़े ही समय में आराधना की। ऐसे विचार पूर्वक हर्ष से ही उनके अश्रुपात हुआ था।

श्री दशवैकालिक सूत्र की निर्युक्ति में कहा है कि--

"आणंद अंसुपायं का ही सज्जंभवा तहि थेरा ।
जसभद्दस्स य पुच्छा कहणा य वियारणा संघे ॥"

Aho ! Shrutgyanam

इसी प्रकार श्री दशवैकालिक सूत्र की वृहद्वृत्ति में भी कहा है कि :—अहो ! इस बालक ने अल्प समय में ही आराधना की इस कारण से ही श्री शय्यम्भवसूरि को हर्ष हुआ एवं हर्ष से ही उनके आंसू आये।

प्रश्न १४६—द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव इन चारों में कौन किससे सूक्ष्मतम हैं ?

उत्तर— समयात्मक काल सबसे सूक्ष्म है, क्योंकि एक बार आंख खोलने में असंख्यात समय होते हैं। काल से भी सूक्ष्म क्षेत्र है क्योंकि एक अंगुल श्रेणी मात्र क्षेत्र प्रदेशों को समय समय पर एक एक करके निकाला जाय तो असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल पूरा हो जाता है। क्षेत्र से सूक्ष्म द्रव्य हैं क्योंकि एक आकाश प्रदेश में अनन्तानन्त परमाणु आदि पुद्गल द्रव्य अवगाहित करके रहते हैं और द्रव्य से भी सूक्ष्मतम भाव शब्द से वाच्य पर्याय है, क्योंकि प्रत्येक परमाणु आदि द्रव्य में अनन्तानन्त पर्याय होते हैं।

जैसा कि आचाराङ्ग निर्युक्ति वृत्ति एवं लोकप्रकाश में कहा है कि—

निउणो य हवइ कालो तत्तो निउणयरं अ हवइ खित्तं।
अंगुल सेढी मित्ते ओसप्पिणीओ असंखिज्जा ॥

काल वृद्धौ द्रव्यभाव क्षेत्र वृद्धिरसंशयम्।
क्षेत्र वृद्धौ तु कालस्य भजना क्षेत्र सौक्ष्मतः ॥
द्रव्यपर्याययोर्वृद्धिरवश्यं क्षेत्रवृद्धितः ।

Aho ! Shrutgyanam

अत्र विशेषो विशेषश्च ज्ञेय आवश्यकादितः ॥

इति तृतीय सर्गे भावना अधिकारे ।

काल सूक्ष्म होता है और उससे सूक्ष्म क्षेत्र होता है। क्योंकि अंगुल श्रेणिमात्र क्षेत्र प्रदेशों को समय समय पर निकालने से असंख्यात उत्सर्पिणी काल पूरा हो जाता है। काल की वृद्धि में द्रव्य भाव एवं क्षेत्र की वृद्धि निश्चित रूप से होती है तथा क्षेत्र की वृद्धि में क्षेत्र की सूक्ष्मता के कारण काल की भजना होती है क्षेत्र की वृद्धि में द्रव्य एवं पर्याय की वृद्धि अवश्य होती है। इस सम्बन्ध में विशेष विवेचन आवश्यकादि सूत्र से जानना चाहिये।

प्रश्न १५०—केवली भगवन्त के भी तेरहवें गुणस्थानक के अन्त में सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति आदि शुक्ल ध्यान होता है ऐसा कहते हैं किन्तु ध्यान तो चित्त की एकाग्रता को कहा है और वह केवलियों के सम्भव नहीं है क्योंकि उनमें भावमन का अभाव होता है ऐसी स्थिति में शुक्ल ध्यान का कहना कैसे संगत हो सकता है ?

उत्तर— शास्त्रों में चित्त की एकाग्रतारूप ध्यान तो छद्मस्थ को आश्रितकर कहा है। केवली भगवान के तो गुणस्थान क्रमारोह सूत्र की वृत्ति में कहा है कि—काया की निश्चलता रूप ही ध्यान होता है, अतः कोई दोष नहीं।

छद्मस्थस्य यथा ध्यानं मनसःस्थैर्यमुच्यते ।
तथैव वपुषः स्थैर्यं ध्यान केवलिनो भवेत् ॥

Aho ! Shrutgyanam

जिस प्रकार छद्मस्थ के मन की एकाग्रता को ध्यान कहा वैसे ही केवली भगवान के शरीर की स्थिरता (काय निश्चलता) को ध्यान कहा है यह ध्यान लेशीकरण द्वारा होता है। इसके पश्चात् व शीघ्र अयोगिगुणस्थानक में जाता है।

आवश्यक भाष्य के अन्तर्गत ध्यान शतक में भी कहा है कि-

जह छउमत्थस्स मणो झाणं मन्न सुनिच्चलं संत।
तह केवलिणो काओ सुनिच्चलो भण्णइ झाणं ॥

—जिस प्रकार छद्मस्थ का अत्यन्त निश्चल मन ध्यान कहाता है, उसी प्रकार केवली भगवान् की अत्यन्त निश्चल हुई काया ध्यान कहाता है।

प्रश्न १५१—तत्त्वरूप अर्थ पर श्रद्धा करने को सम्यक्त्व कहते हैं। श्रद्धा अर्थात् यह वस्तु ऐसी ही है, ऐसा विश्वास होना यही विश्वास मन की अभिलाषा रूप है। इस प्रकार का विश्वास अपर्याप्त अवस्था में नहीं होता परन्तु सम्यक्त्व को तो अपर्याप्त अवस्था में भी माना है। क्योंकि उसकी उत्कृष्टस्थिति ६६ सागरोपम की कही है। ऐसी स्थिति में यह लक्षण कैसे घटित होता है?

उत्तर — तत्त्व रूप अर्थ पर श्रद्धा करना यह तो सम्यक्त्व का कार्य है एवं सम्यक्त्व तो मिथ्यात्व मोहनीय क्षय-उपशमादि से उत्पन्न हुए आत्मा का शुभ परिणाम रूप है और यह लक्षण तो मन रहित ऐसे सिद्ध भगवन्तों में भी व्याप्त रहता है। इसलिये ऊपर कहा हुआ दोष नहीं हो सकता है।

Aho ! Shrutgyanam

प्रश्न — अपने शास्त्रों में कहे हुए तत्त्व पर श्रद्धा रखने वाले परपाखण्डियों को जिस प्रकार आभिग्रहिक मिथ्यात्वी कहा है, उसी प्रकार अपने शास्त्रों में कहे हुए तत्त्व पर श्रद्धा रखने वाले जैनों को आभिग्रहिक मिथ्यात्वी क्यों नहीं कहा गया ?

उत्तर — पाखण्डी स्वशास्त्रनियन्त्रित (सीमित) ही विवेक रूप प्रकाश रखते हैं तथा पर पक्ष पर प्रतिक्षेप करने में दक्ष होते हैं। इसलिये उनको मिथ्यात्वी कहा है, परन्तु धर्म अधर्म के वाद से परीक्षा पूर्वक तत्त्व का विचार कर अपने द्वारा स्वीकृत अर्थ पर श्रद्धा रखने वाले जैनों को पर पक्ष तोड़ने में दक्षता रखने पर भी अभिग्रहिक मिथ्यात्व नहीं लगता है; क्योंकि उनका विवेकरूप प्रकाश स्वशास्त्र से नियन्त्रित नहीं होकर सकल शास्त्र गत होता है। जो जैन अपने कुलाचार से नाम के जैन होने पर भी आगम परीक्षा की अवहेलना करते हैं अर्थात् अपनी मान्यता को ही आगम मान्यता मानते हैं, वे भी अभिग्रहिक मिथ्यात्वी होते हैं, क्योंकि सम्यग् दृष्टि की आत्मा परीक्षा किये बिना पक्षपात करने वाली नहीं होती। श्री हरिभद्र सूरिजी ने कहा है कि—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु, ।
युक्तिमद् वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

—मुझे श्री वीर भगवान के ऊपर कोई पक्षपात नहीं एवं कपिल आदि के ऊपर कोई द्वेष नहीं। जिसका वचन युक्तियुक्त

Aho ! Shrutgyanam

है मेरे लिये तो वही स्वीकार करने योग्य है । यह सम्पूर्ण प्रकरण धर्म संग्रह प्रकरण के अनुसार जानना चाहिये ।

इस विवेचन से जैनों को चाहिये कि अभिग्रहिक मिथ्यात्व का निराकरण करके सम्यक्त्व का प्रतिपादन एवं स्वीकरण करे । इससे जैन अभिग्रहित मिथ्यात्वी नहीं होते अपितु सम्यक्त्वी होते हैं, यह सिद्ध किया है, परन्तु वह क्षायिक औपशमिक एवं क्षायोपशमिक यह त्रिविध सम्यक्त्व चारों ही गति में प्राप्त होता है या नहीं ? इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार है कि किन्हीं लघुकर्मी जीवों को प्राप्त होता है वह इस प्रकार कि (१) नरक गति में प्रथम तीन नारकी में तीन प्रकार का सम्यक्त्व रहता है, उसमें क्षायिक तो पारभविक ही होता है, परन्तु वह ताद्भविक नहीं होता क्योंकि मनुष्य के समान उसी भव में नवीन क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती । औपशमिक सम्यक्त्व उसी भव का होता है एवं क्षायोपशमिक सम्यक्त्व दोनों भव का होता है । शेष रही चार नारको में क्षायिक सम्यक्त्व होता ही नहीं है । क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व वाले वे चार नरक पृथ्वी में उत्पन्न नहीं होते दूसरे दो सम्यक्त्व होते हैं, यह पूर्वानुसार जानना चाहिये ।

२ देवगति में वैमानिक देवों के तो प्रथम तीन नारकी के तीन प्रकार का सम्यक्त्व होता है, परन्तु भवनपति व्यन्तर ज्योतिष्कों को क्षायिक सम्यक्त्व होता ही नहीं है, क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व वाली आत्मा उनमें उत्पन्न नहीं होती, दूसरे दोनों सम्यक्त्व पूर्वानुसार होते हैं । (३) मनुष्य दो प्रकार के होते हैं १. संख्यात वर्ष की आयु वाला एवं २ असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाला इनमें संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले को औपशमिक सम्यक्त्व ताद्भविक होता है तथा क्षायिक एवं क्षायोपश-

Aho ! Shrutgyanam

मिक उस तादभविक एवं पारभविक होते हैं और असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले मनुष्यों में औपशमिक तथा क्षायिक सम्यक्त्व प्रथम तीन प्रकार के नारकी एवं वैमानिक देव के समान समझना चाहिये । क्षायोपशमिक तो कर्मग्रन्थकार के अभिप्राय से तादभविक एवं सैद्धान्तिक अभिप्राय से पारभविक भी होता है। (४) पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च भी मनुष्य के समान दो प्रकार के होते हैं। इनमें असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यञ्चों को तीन सम्यक्त्व मनुष्य के समान कहे हैं। तथा असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों को तथा तिर्यञ्चस्त्रियों को क्षायिक सम्यक्त्व नहीं होगा। दूसरे दो सम्यक्त्व पूर्वानुसार होते ही हैं।

शेष एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक के तिर्यञ्चों को तीन में से एक भी सम्यक्त्व सम्भव नहीं है।

उपर्युक्त समस्त विवेचन प्रवचनोद्धार के १४९ वें द्वार में से उद्धृत कर संक्षेप में किया गया है । विस्तार पूर्वक जानने की इच्छा रखने वाले को उसकी वृहद्वृत्ति देखनी चाहिये।

इस प्रकरण में यह शंका होती है कि निश्चय नय के मत से तो संसार में एक धर्म है, दूसरे सम्यक्त्वादि तो धर्म के साधन हैं तो ऐसी स्थिति में जीव को धर्म की प्राप्ति कब होती है ?

इस शंका का समाधान इस प्रकार है कि–धर्म संग्रहणी में निश्चय नय के मत से शैलेशीकरण के अन्तिम समय में ही धर्म की प्राप्ति होती है, उसकी पूर्व अवस्था में तो धर्म की प्राप्ति के साधन ही है। कहा भी है कि:—

"सोउ भवक्खय हेऊ सेलेसी चरम समयभावी जो। सेसोपुण निच्छयओ तस्सेव पसाहगो भणिओ त्ति।"

Aho ! Shrutgyanam

श्री जिनलाभ सूरिजी आदि सद्गुरुओं की कृपा से श्री क्षमा कल्याण गणिजी रचित प्रश्नोत्तर सार्धशतक का उत्तरार्ध भाग परिपूर्ण हुआ।

किसी भी कारण से इस में कोई दोष रह गया हो तो विद्वज्जन इस में संशोधन कर लेवें।

प्रश्नोत्तर सार्धशतक का उत्तरार्ध भाग समाप्त ।

Aho ! Shrutgyanam

Aho ! Shrutgyanam